खालिद हुसैन
की पंजाबी कहानियाँ

घर में है बैराग

हिन्दी अनुवादः
दीपक 'आरसी'

घर में है बैराग

ख़ालिद हुसैन की अन्य पुस्तकें

पंजाबी

1. ते जेह्लम वगदा रेहा (कहानी संग्रैह्)
2. गोरी फ़सल दे सौदागर (कहानी संग्रैह्)
3. डूंह्गे पानियां दा दुक्ख (कहानी संग्रैह्)
4. बलदी बर्फ़ दा सेक (कहानी संग्रैह्)
5. सूलां दा सालन (कहानी संग्रैह्)
6. गवाची झांजर दी चीक (उपन्यासिका)
7. मेरे रंग दे अक्खर (लेख)
8. नूरी रिश्मां (जीवनी हज़रत मुहम्मद – बच्चों के लिए)
9. माटी कुदम करेंदी यार (आत्मकथा)

उर्दू

1. ठण्डी काँगड़ी का धुआँ (कहानी संग्रैह्)
2. इश्तिहारों वाली हवेली (कहानी संग्रैह्)
3. सत्तीसर का सूरज (कहानी संग्रैह्)
4. दश्त–ए–तलब (सम्पादन)

घर में है बैराग

मूल पंजाबी कहानियाँ

ख़ालिद हुसैन

अनुवाद

दीपक 'आरसी'

चेतना प्रकाशन
पंजाबी भवन, लुधियाना

Ghar Mein Hai Bairaag

by

A collection of selected Punjabi Short Stories of

Khalid Hussain ©

translated by

Deepak 'Aarsi'

ISBN : 978-93-5112-124-4

Rs. 350/-

2015

Printed and Bound In India

Published by

Chetna Parkashan

PUNJABI BHAWAN, **LUDHIANA** (Pb.) INDIA

Ph. 0161-2413613, 2404928, (M) 98152-98459, 98762-07774

Website: www.chetnaparkashan.com

E-mail: chetnaparkashan@gmail.com

Sub Off.: Qila Road, Opp. Bus Stand, KOTKAPURA (Pb.) INDIA

Ph.: 95011-45039

Printer : Aarna Printing Soloution Patiala

*

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ परि जाय।।

Khalid Hussain *(Retd. D. C.)*

Near Govt. High School,
Bathindi, Jammu (J&K)
Pincode - 181152
Mob : +91 94191-83485,
+91 72980-00099
e-mail : hussain.khalid47@gmail.com
website : www.khalidhussain.in

समर्पण

उन महान संतों

और सूफ़ियों

के नाम

जिनकी

आकाशवाणी की

ग्लोबल समाज

के लिए

कोई

महत्ता नहीं

विवरणिका

क्र.सं कहानी पृष्ठ सं

*****

ख़ालिद हुसैन : आस्था और सौहार्द का अनूठा क़िस्सागो

ख़ालिद हुसैन समकालीन पंजाबी साहित्यिक परिदृश्य में एक प्रतिष्ठित उपस्थिति हैं जो अपनी सतत् और सार्थक रचनाशीलता के कारण भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में चर्चित कहानीकार के रूप में पढ़े और सराहे जाते हैं। एक निहायत ही शालीन और संवेदनशील व्यक्ति जो मानवीय सरोकारों और जीवन-मूल्यों में निष्कंप आस्था और सौहार्दपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को गरिमा के साथ जीने के लिए जाने जाते हैं।

यों देखा जाए तो अपनी प्रत्येक कथा-रचना में कुछ न कुछ अनूठा और अद्वितीय रचने वाले ख़ालिद हुसैन ने अपनी चुंबकीय क़िस्सागोई, सुरमई उजाला बिखेरती भाषा के विन्यास, चरित्रों के चयन और उनके मार्मिक चरित्रांकन और उसके सामाजिक-साँस्कृतिक परिवेश को बारीकी से बुनने की विधा और शैली के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनकी अनेक कहानियाँ रोचकता की सीमाओं को लाँघकर हमारे सामने रूपक के रूप में खड़ी हो जाती हैं। और यह कहानीकार यथार्थ का अपने सृजन में निरूपण करते हुए जब उसकी जटिलताओं से उलझता है तब न केवल वह अपने पात्रों के अस्तित्व में सांकेतिक अर्थ भरता है बल्कि उन्हें एक रूपक का चरित्र भी बना डालता है। आप कई कहानियों में उनकी भाषा को चुटीला, लच्छेदार और आलंकारिक होते देखकर ख़ालिद हुसैन पर रूमानियत का प्रभाव रेखांकित कर सकते हैं। मैं इसे ख़लिद हुसैन की कथा-यात्रा में उनके व्यक्तित्व के विस्तार के रूप में देखता हूँ। यह उनकी भाषाई ऊर्जा है जो उनसे अनूठे मुहावरों और प्रसंगानुकूल कहावतों का प्रयोग संभव करा जाती है।

उनकी बातों में जादू है जो कई कहानियों में शिल्प के स्तर पर जादुई यथार्थवाद की ओर उन्हें प्रवृत्त कर देता है। उदाहारण के लिए 'सतीसर का सूर्य' जो वैसे भी ख़ालिद हुसैन की कहानियों में मील का पत्थर ही कही जाएगी उसमें पूतांसी कल्पना या गल्प का हैरान कर देने वाला अन्तर्गुंफन है। और उस पर क़िस्सागोई का जादू! उनके कहने की पहचान! यह कहानी उनके कहानीकार का अब तक के सफ़र का 'डिपार्चर' है। जादुई यथार्थवाद के प्रयोग की दृष्टि से उनकी कहानी 'न्याय-अन्याय' जैसी कई कहानियाँ उनके पास हैं।

अपनी आलंकारिक भाषा की ओट में अनेक कहानियों के 'नैरेटर' के रूप में कहानीकार स्वयं भी रोचक और दिलचस्प कथा-प्रसंगों के चटखारे लेते हुए दिखने के बावजूद बेबाकी और साफगोई से हिम्मत के साथ अपनी बात कह जाते हैं। उनकी यह हौसलामंदी जहाँ हम मुख्य रूप से उनकी उपर्युक्त कहानी 'सतीसर का सूर्य' में कश्मीर के निर्दोष बच्चों के मन में जुनून और मज़हबी कट्टरता-वाद से बन्दी बनाने के सन्दर्भ में, सँस्कृति और चौदह्वीं शताब्दी के संत कवि नुंदऋषि के मुँह से यह कहलवाना 'क्यों तुम लोगों ने अत्याचार और बर्बरियत के सामने घुटने टेक दिए?' बहुत बड़ी बात है, वहीं 'हलाला' जैसी बेबाक कहानी शरीअत की आड़ में नारी-विरोधी अनैतिक रस्म निभाने वाले मर्दाना समाज को बेपर्दा कर देती है। यह कहानी संयत स्वर में प्रतिवाद करने का साहस करती है। तीन बार 'तलाक' शब्द सुनकर राजां को जब फिर से पूर्व-पति नवाब की पत्नी बनने के लिए एक अन्य पुरुष के साथ हलाले का घूंट पीने के लिए तैयार किया जाता है तो उसकी यह चुप प्रतिक्रिया कि 'भेड़ों ने तो ऊन ही उतरवानी है, कोई उतार ले' कितनी मर्माहत और हृदय विदारक है। बिना किसी लुकाव-छिपाव के बात करने वाले कहानीकार ख़ालिद हुसैन अपनी रचनाधर्मिता को नई स्फूर्ति देते हैं। और वो भी सर्जनात्मकता की एक सहजता के साथ। जीवतंता और चाक्षुष्शता के साथ।

आज जबकि तेज़-रफ़्तार जीवन ने समय, जिज्ञासा और संवेदनशीलता को लील लिया है, ऐसे में ख़ालिद हुसैन की कहानियाँ अपनी समग्रता में बदली हुई परिस्थितियों के दबावों के बावजूद एक ऐसा परिदृश्य तैयार करती हैं जहाँ पाठक कथाकार के सरोकारों के मूल तक पहुँचता है। उनकी सोच, उनके बोध और नज़रिये से अवगत कराती है। देखा जाए तो हमारे समय और जीवन में साम्प्रदायिक विभेद, विखंडन, हिंसा और आतंक का जो तनाव बना हुआ है जिससे परस्पर सामुदायिक सह-अस्तित्व और सौहार्द पर ख़तरा बना हुआ है, ख़ालिद हुसैन की अधिकाँश कहानियाँ हमें उन्हीं के प्रति समझ और व्याकुलता से भर देती हैं। इस तरह मनुष्यता की स्वायत्तता उनके रचना-संसार के केंद्र में है।

एक पाठक के तौर पर हम साम्प्रदायिक उन्माद, हिंसा, देश-विभाजन की त्रासद स्थितियों, घर-मुहल्ले, गाँव-शहर छोड़कर बे-वतन और अजनबी जीवन जीने की विभीषिका झेल रहे हैं। 'इश्क़ मलंगी', 'बेडे की लंका', 'शादां बिल्ली जम्मू वाली' जैसी कई कहानियों के पात्रों को देखकर सन्न रह जाते हैं। देश-विभाजन पर अम्न पर जितनी भी चर्चित कहानियाँ सामने आई हैं। उस श्रेणी में ख़ालिद हुसैन की अनेक कहानियाँ रखी जा सकती हैं। अपनी ज़मीन, अपने अड़ोस-पड़ोस, सभ्यता-सँस्कृति, भांत-भांत के लोग, रीति-रिवाजों से बलात् बेदखल होने का दर्द द्रवित करता है।

विभाजन-पूर्व के जम्मू शहर में उर्दू-बाज़ार, जो आज राजेन्द्र बाज़ार के नाम से जाना जाता है, के कोठों, चौबारों, हवेलियों, छोटी-छोटी दुकानों की, गलियारों की ऐसी दिलचस्प और रोचक दुनिया को ख़ालिद हुसैन अपनी कई कहानियों में ऐसे खोलते जाते हैं कि उनके तमाम पात्र सजीवता और रसरंगता के साथ हमें अपनी दुनिया में शामिल कर लेते हैं। चाहे वो गामा नाई की दुकान पर अक्सर आने-जाने वाला काले ख़ान हो, तांगे वाला पठान हो, फ़िरोज़ा कसबी, जुलाहों की बस्ती की गुल्लां हो, अक्का, नूरां, बशीरा जैसे चरित्र हों। इस संसार में चरस, गांजा, अफीम, भांग और चंडू के कश खींचते पात्र देर तक और दूर

तक याद रहने वाले किरदार हैं। सआदत हसन मंटो के से कई पात्रों और परिस्थितियों की याद दिलाते से छोटे-छोटे लोग। सपने देखते लोग। देश-विभाजन और अब इधर जिहाद और अलगाववाद के नाम पर आतंकवाद, क्रॉस-फायरिंग, सीमा-पार से घुसपैठ कर आते आतंकवादियों को पनाह देने या न देने के चक्कर में पिसते लोग, शरणार्थी-शिविर में अपनी मातृभूमि के लिए तड़पते और बिलखते लोग। ख़ालिद हुसैन ऐसी भयावह वास्तविकताओं को, जिनसे हिन्दी का संसार लगभग अनजान बना बैठा है, पूरी रचनात्मकता के साथ एक-एक कर खोल देते हैं।

मैंने स्वयं ख़ालिद हुसैन की ऐसी कई कहानियों के माध्यम से विभाजन-पूर्व के जम्मू शहर को उसी तरह प्रत्यक्ष देखा जैसे 'इश्क़ मलंगी' कहानी में प्रसिद्ध गायिका मलका पुखराज के जीवन से जुड़ी कई जानकारियाँ 'साँग संग वेल' में भी नहीं हैं। यह जानना दिलचस्प है कि महाराजा हरिसिंह के राज्याश्रय से पूर्व मलका पुखराज इसी उर्दू-बाज़ार की एक रौनक़ थीं।

ख़ालिद हुसैन की प्रतिनिधि पंजाबी कहानियों को हिन्दी में अनूदित कर दीपक 'आरसी' ने श्रमसाध्य काम किया है। मुझे आशा है हिन्दी के पाठक ख़ालिद हुसैन के रचना-संसार से अवगत होकर उनकी केन्द्रीय संवेदना को सराहेंगे और उसे विस्तार भी देंगे।

ओ'रजू।

अग्नि शेखर (डॉ०)
भवानी नगर, जम्मू।

कहे हुसैन फ़क़ीर साईं का

दुल्ला भट्टी पंजाबी लोक गाथा का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है जो मुसलमान होते हुए भी एक हिन्दू युवती की इज़्ज़त बचाने के लिए मुग़ल साम्राज्य से जा टकराया था और उसकी इज़्ज़त बचाते-बचाते शहीद हो गया था। दुल्ला भट्टी की वीरता के लोक-गीत आज भी पाँच दरियाओं वाले पँजाब में गूँजते हैं। राजनीति और धार्मिक जुनून के कारण 1947 में देश का विभाजन हुआ। देश क्या बटा वास्तव में पँजाब की बंदर-बाँट हुई और पँजाब के साथ लगता जम्मू-कश्मीर का पँजाबी भाषी क्षेत्र भी विभाजित हो गया। राजनीति और धर्म ने दोनों देशों के मध्य ऐसी दीवारें खड़ी कर दीं कि पँजाबी विवश हो गया तथा पँजाबियत लज्जित हो गई। कवियों, साहित्यकारों तथा कलाकारों ने पारस्परिक प्रेमभाव तथा प्यार के सपने बुने, जिनको साकार करने की आज तक कोई युक्ति नहीं निकली। पाकिस्तान के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार तथा शायर फ़ख़्र-जमाँ ने कहा

साह्नूँ डाह्ढा लोड़ी दा ऐ अज इक दुल्ला भट्टी होर
भन्ने कींगरे दिल्ली दे ते भाजड़ पावे तख़्त लहौर

(हमें आज फिर एक दुल्ला भट्टी की परम आवश्यकता है जो दिल्ली के मीनार तोड़ दे और लाहौर के सिहांसन को मिटा दे)

ऐसा ही विचार उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर परवीन कुमार 'अश्क' ने इन दो शे'रों में बयान किया है।

ज़मीं को ऐ ख़ुदा वो ज़लज़ला दे
निशाँ तक सरहदों के जो मिटा दे
मुहब्बत में बदल जाए सियासत
ख़ुदा लाहौर दिल्ली से मिला दे

दोनों शायरों की पंक्तियाँ मेरी विचारधारा के अनुरूप हैं। मैं भी चाहता हूँ कि भारत तथा पाकिस्तान के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हों। सीमाएँ नाममात्र हों। पासपोर्ट और वीज़े की कोई समस्या न हो। धरती को काँटेदार तारें निःसन्देह छलनी करती रहें परन्तु लोगों के दिलों को आहत न किया जाए अपितु दिलों में प्रेम-पुष्पों की क्यारियाँ सजाई जाएँ ताकि मन-मन्दिर महकते रहें -- हमारे एक कवि, जो सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से आयु पर्यन्त राजनीति में सक्रिय रहे तथा भारत के प्रधान मंत्री भी रहे, ने कहा था हम मित्र तो बदल सकते हैं परन्तु पड़ोसी नहीं बदल सकते। यदि यही वास्तविकता है तो फिर हम मित्रता के लिए गम्भीरता से उपाय क्यों नहीं करते। प्रत्येक बात में राजनीति क्यों आड़े आ जाती है।

वेद, पुराण, उपनिषद, सामी पुस्तकों, सन्तों, ऋषियों-मुनियों की वाणी और सूफ़ियों का कलाम, सब मानव को मानव से प्रेम करना सिखाते हैं और बताते हैं कि मानव से प्रेम करना ही ईश्वर से प्रेम करना है परन्तु इन सुनहरी शिक्षाओं को केवल प्रत्यक्ष रूप में मानने वाले तथा धर्म का ढोल पीटने वाले लोग आज किस मार्ग पर चल निकले हैं। कौन सी धार्मिक आस्थाओं का समर्थन कर रहे है। यह सब देख कर ही हर बुद्धिजीवी का हृदय जलता है। आज का वातावरण संवेदनशील लोगों और सत्य के पुजारियों को ख़ून रुलाता है क्योंकि आज का मानव उन्नतिशील, विज्ञान की विद्याओं में निपुण और तकनीकी रूप में शिखर प्राप्त करने के उपरान्त भी अशिक्षा तथा अज्ञान में जी रहा है। वह धरती में अनाज के बदले बारूद उगाता है। आकाश से वर्षा के स्थान पर बारूद बरसाता है। आज राक्षसों ने दुनिया को विनाश तथा जीवन के भंवर में डुबो दिया है। फ़साद कराने वाले और शक्तिशाली, निरीह तथा पिछड़े हुओं को मृत्यु, आतंक, अपमान तथा त्रास की वेदी पर बलि चढ़ा रहे हैं। आज धर्म की मिथ्या व्याख्या हो रही है। धर्म की वास्तविक आत्मा को जागरूक करने के लिए कोई तैयार नहीं। घृणा तथा पाखण्ड के जाल में शान्ति बुरी तरह फँसी हुई है। न्याय भटक रहा है। प्रतिशोध की सैन्य टुकड़ियाँ चहुँ ओर

दनदना रही हैं। मृत्यु के शिकारी जीवन का आखेट करने हेतु हर समय घात लगाए बैठे रहते हैं। बुद्धि तथा ज्ञान, आतंक तथा वहशत के दास हो चुके हैं। कोई भी शक्ति को प्रेम के अर्पण नहीं करता ताकि वातावरण सुगंधित हो।

साम्राज्यवाद की बर्बरता, धरती पर गंदगी के अंबार लगा रही है। हर ओर शवों की दुर्गन्ध फैली हुई है। हमारा विश्व एक काँटेदार जंगल बन चुका है जिसमें स्वार्थी तथा दुष्प्रवृत्ति वाले लोगों ने विवश मानवों को नेज़ों पर लटकाया हुआ है। आज आत्म-प्रशंसा, घृणा, शत्रुता तथा उन्मादी राजनीति ने तबाही मचाई हुई है। राजधर्म नीलाम हो चुका है। धर्म का इससे घृणित अपमान और क्या होगा कि इसको लाभ उठाने वाले और दंगाई लोग जुनून के लिए उपयोग में लाते हैं। भगवान के मन्दिर तथा ख़ुदा के घर भय तथा त्रास के केन्द्र बन गए हैं। संकीर्ण और जुनूनी अपने आसुरी दृष्टिकोण का प्रगटावा अब खुल्लम-खुल्ला कर रहे हैं और जातीय घृणा फैलाते हैं। जब कि स्वयंभू लोकतंत्र, खोखला सेक्यूरलिज़्म तथा बेकार का कानून इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। ऐसे वातावरण में इन्सान कहाँ आश्रय ले। किस छत्रछाया में चैन की खोज करे। कौन से ईश्वर की अर्चना करे. .....परन्तु यह निश्चित है कि दर्शन चाहे कोई भी हो वह मानवी मन-मस्तिष्क पर बोझ नहीं बनना चाहिए और इसके लिए हमें अपने अतीत के उस उज्जवल युग में जाना होगा जब भारतीय जीवन में धार्मिक आस्था के रूढ़िवादी टकराव से उकता कर सहिष्णुता और तालमेल के मार्ग खोजने के लिए हिन्दू तथा मुसलमानों ने भक्ति-मत तथा सूफ़ी मत को गले लगा कर सामाजिक एकता, सुख तथा शान्ति और प्रेम के गीत गाए थे।

सन्तों तथा सूफ़ियों ने इन्सानों से गहन सहानुभूति, प्रेम तथा हृदय की पवित्रता का संदेश दिया। कश्मीर में भी ऋषि-मुनियों तथा सन्त-सूफ़ियों ने कट्टरपंथ तथा धार्मिक संकीर्णता पर चोट लगाई तथा शान्ति और भाईचारे का पाठ पढ़ाया। लला आरफ़ा तथा शेख नूर-उल-दीन वली (नुन्द ऋषि) इसका उदाहरण हैं।

पँजाब में बाबा फ़रीद, बाबा नानक से लेकर बुल्ले शाह तक सभी सूफ़ियों ने धरती-आकाश में ज्ञान तथा योग की सुगन्ध बिखेरी। "घर में है बैराग" में सम्मिलित अनेक कहानियाँ भाईचारे तथा प्रेम के इसी भाव को दर्शाती हैं। सुख-शान्ति के अनन्त संदेशों को प्रत्येक हृदय की धड़कन बनाने के लिए मैंने सादा शब्दों की भेंट अर्पण करने का प्रयास किया है। अपने लेखन में अध्यात्म का रंग भरने का प्रयत्न किया है। भाषा का तरन्नुम जगाने की कोशिश की है और ईश्वर से प्रार्थना की है कि हम सब को बुद्धि तथा ज्ञान प्रदान कर और हमारी आत्मा को आलोकित कर, क्योंकि शहीद सूफ़ी सरमद ने कहा है कि ज्ञान के प्रकाश के रथ पर सवार होकर ब्रह्माण्ड के निर्जन में यात्रा कर और ईश्वर के प्रेम में लीन हो जा। इसलिए हमें चाहिए कि त्रिशूल तथा खंजर, बन्दूक़ तथा बारूद को कब्रिस्तान में दफ़्न कर दें, श्मशान में जला दें और लेखनी से रचनात्मक संघर्ष करें। शर को लज्जित करें तथा जीवन को भलाई के जाम पिलाएँ।

मेरी कहानियों में आज के युग की त्रासदी है। देश के विभाजन के घाव हैं। बड़ी शक्तियों के निर्दयी षड्यन्त्रों की गाथाएँ हैं। इन कहानियों में भारत तथा पाकिस्तान की स्थायी अनबन के कारण कश्मीर में फैले विनाश तथा मृत्यु का ताण्डव मिलेगा। अनाथों एवं विधवाओं की आहें मिलेंगी। लुटी अस्मतों का चीत्कार मिलेगा। विपन्नता के किस्से मिलेंगे परन्तु एक साहित्यकार होने के नाते मेरे निज तथा मेरे अस्तित्व में भारत तथा पाकिस्तान दोनों गले मिलते दिखाई देंगे क्योंकि ये दोनों देश धरती की एक ही कोख से जन्मे हैं और यह बात राजनीति, धर्म, शक्ति तथा आतंक, सबको समझ लेनी चाहिए। उन्हें अपने गन्दे मन्सूबों तथा हथकण्डों से बाज़ आना चाहिए ताकि यह क्षेत्र शान्ति का केन्द्र बने। साम्राजीय शक्तियों को भी "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का फार्मूला त्याग कर विश्व को खुले वातावरण में जीने का अधिकार देना चाहिए। निरीह तथा आधीन जातियों को शक्ति के बलबूते पर दास बनाने का ढंग छोड़ देना चाहिए।

उर्दू, हिन्दी, डोगरी, पँजाबी आदि भाषाओं की गहन जानकारी रखने वाले अपने साथी दीपक 'आरसी' जो कि उर्दू तथा डोगरी भाषा के अच्छे शायर, लेखक तथा अनुवादक भी हैं, का धन्यवादी हूँ कि उन्होंने अथक परिश्रम से मेरी पँजाबी की चयनित कहानियों का हिन्दी अनुवाद बेहतर ढंग से करके मुझे हिन्दी साहित्य जगत से परिचित कराया। इसके अतिरिक्त मैं अपने प्रिय स्वामी अन्तर्नीरव जो कि पँजाबी तथा पहाड़ी के विलक्षण कवि हैं और कमल जी चौधरी जो सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि हैं, का भी धन्यवादी हूँ जिन्होंने पुस्तक की त्रुटियों की नोक-पलक संवरने में अपना अमूल्य योगदान दिया। अन्त में मैं अपने मित्र तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि तथा कहानीकार डॉ० अग्नि शेखर से बहुत प्रसन्न हूँ कि उन्होंने "घर में है बैराग" की भूमिका लिखना स्वीकार करके मेरा मान बढ़ाया।

ख़ालिद हुसैन

प्रयास का एक और पग

साहित्य डगर पर चलते हुए ग़ज़ल तथा कथा-रचना के अतिरिक्त यदि मेरा झुकाव किसी अन्य कार्य की ओर रहा है तो वह है अनुवाद। क्योंकि मेरी दृष्टि में साहित्य में अनुवाद ही एकमात्र वह माध्यम है जिसके द्वारा आप उस भाषा के मूल ग्रन्थ अथवा रचना का अध्ययन कर पाने में सफल हो सकते हैं जो आप पढ़ना तथा लिखना नहीं जानते। अनुवाद के द्वारा आप अन्य किसी भाषा के साहित्य की गहनता, स्तर, रोचकता तथा भाषा-शैली से सहजता से परिचित हो सकते हैं। यदि अनूदित साहित्य-ग्रन्थों अथवा रचनाओं का कोई अस्तित्व न होता तो हम केवल उसी भाषा के साहित्य से परिचित हो पाते जो भाषा हम पढ़ना अथवा लिखना जानते हैं। अनुवाद ने अन्य भाषाओं के साहित्य-पठन को हमारे लिए अति सुगम बना दिया है।

अपनी आरम्भिक यात्रा पर जब दृष्टि डालता हूँ तो विस्मित भी होता हूँ और प्रसन्न भी कि सम्भवतः मुझे इस प्रकार के कार्यों का निमित्त बनना था तभी तो भगवद् कृपा से बाल्यावस्था से ही मुझमें विभिन्न भाषाएँ सीखने की तीव्रेच्छा ने जन्म ले लिया था। जिसके परिणाम स्वरूप कठिन तथा विषम परिस्थितियों में भी मैं अन्य भाषाएँ सीखने के अवसर खोजने लगा। जहाँ से भी कुछ सीखना सम्भव हो पाता मैं कोई न कोई मार्ग निकाल लेता। और फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे अनेक भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करने से मुझे उर्दू, हिन्दी, पंजाबी, डोगरी के साथ-साथ थोड़ी बहुत सँस्कृत भाषा की जानकारी भी हुई। जिसका सबसे बड़ा लाभ मुझे यह पहुँचा कि इन भाषाओं के मूल साहित्य ग्रन्थों अथवा रचनाओं को पढ़ने के साथ-साथ अन्य भाषाओं के अनूदित

साहित्य का अध्ययन करना मेरे लिए सुगम हो गया। यही कारण मेरे लिए अनुवाद करने का भी मुख्य प्रेरणा स्रोत बना। परन्तु यह बात भी सत्य है कि यदि मुझे इन भाषाओं का कुछ भी ज्ञान न होता तो आज मैं भी इन भाषाओं में रचे गए साहित्य की सुन्दर, अनूठी तथा उत्कृष्ट कृतियों एवं रचनाओं के अध्ययन से वंचित रह जाता। आज मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि मैं इनके माध्यम से विभिन्न भाषाओं की अन्य विधाओं की श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध पुस्तकों के अनूदित साहित्य का अध्ययन तथा चिंतन-मनन कर पाने में सक्षम हुआ हूँ।

यदि अपने अनुवाद कार्य के आरम्भिक प्रयासों की बात करूँ तो सर्वप्रथम अपने एक साहित्यकार साथी की कविता के अनुवाद को पहला अपनी अनुवार्य कार्य की यात्रा को प्रथम पग कह सकता हूँ। अपने साहित्य-बँधुओं के प्रेरणादायक उत्साहवर्धन से अनुवाद करने में अधिक रुचि लेने लगा।

तत्पश्चात कहानियों का विधिवत अनुवाद सर्वप्रथम डोगरी भाषा के कवि तथा कहानीकार पंकज गुप्ता की एक कहानी का उस समय किया जब उन्हें देहरादून के किसी साहित्यिक समारोह में अनूदित कहानी पढ़ने के लिए जाना था। हिन्दी के वरिष्ठ कवि तथा कहानीकार डॉ० अग्निशेखर ने पंकज गुप्ता को विशेष रूप से उस कहानी का अनुवाद स्वयं न करके किसी अनुवादक से कराने का परामर्श दिया था और परिणाम स्वरूप मुझे उस कहानी का अनुवाद करने का अवसर मिला। मैं उस कहानी का अनुवाद करने में कहाँ तक सफल हो सका उसके लिए केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि देहरादून के साहित्यिक समारोह में उस अनुवाद को सराहा गया। उसके पश्चात् पंजाबी के प्रसिद्ध कथा लेखक स० हरभजन सिंह सागर तथा हरदीप सिंह दीप, उर्दू भाषा के शायर तथा कहानीकार बलराज बख़्शी तथा डोगरी के कहानीकार चमन पंथी आदि की कहानियों के अनुवाद भी किए जिनमें से कुछ एक कल्चरल अकादेमी के शीराज़ा अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं।

इसके अतिरिक्त उर्दू शायर तथा कहानीकार डॉ० प्रेमी

रूमानी का एक लेख जो कि 20-25 पन्नों पर आधारित था, का हिन्दी अनुवाद हमारा साहित्य के अंक में प्रकाशित हो चुका है।

अनुवाद के इन प्रयासों की अगली कड़ी उर्दू के जाने-माने कहानीकार, उपन्यासकार तथा नाटक लेखक आनन्द 'लहर' की दर्जनों कहानियों का हिन्दी, पंजाबी तथा डोगरी भाषाओं में किया गया अनुवाद है। इसके अतिरिक्त उनके उपन्यास 'यही सच है' का अनुवाद डोगरी में, उपन्यास 'नामदेव' का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त अख़्तर मोहि-उल-दीन, उमर मजीद तथा ठाकुर पुंछी की कुछ उर्दू कहानियों के अनुवाद कल्चरल अकादमी जम्मू के शीराज़ा कहानी के अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं। कल्चरल अकादेमी द्वारा आयोजित अनुवाद कार्यशालाओं में भी यदा-कदा भाग लेने के अवसर प्राप्त हुए हैं।

रही बात प्रस्तुत पुस्तक के अनुवाद की तो मैं उसे एक संयोग और अपनी कार्यक्षमता की परीक्षा ही मानता हूँ कि पहली बार मुझे एक साथ 40-50 कहानियों का अनुवाद करने का अवसर प्राप्त हुआ। हुआ यूँ कि भारत-पाक में समान रूप से प्रसिद्ध पंजाबी कहानीकार जनाब ख़ालिद हुसैन साहब का एक कहानी संग्रह 'बलदी बर्फ़ दा सेक' मुझे अपने एक साहित्यिक साथी से प्राप्त हुआ। सारी कहानियाँ पढ़ने पर उनमें से कुछ कहानियों का अनुवाद करने की मेरी इच्छा हुई। ऐसा भी नहीं कि मैं इससे पूर्व उनकी कहानियों से परिचित नहीं था। अनेक साहित्यिक समारोहों तथा कहानी-गोष्ठियों में मैंने कई कहानियाँ ख़ालिद साहिब की ज़ुबानी सुनी थीं। उनकी कहानियों में जो बातें मुझे प्रभावित कर गईं उनमें से एक थी उनकी भाषा पर अच्छी पकड़ और यथोचित सटीक शब्दों का प्रयोग और दूसरी स्थान-स्थान पर मुहावरों तथा लोकोक्तियों का जड़ाऊ प्रयोग।

मैंने ख़ालिद साहिब से अनुवाद हेतु अनुमति लेने के लिए सम्पर्क किया तो उन्होंने सहमति जताते हुए अपने एक-दो अन्य कहानी-संग्रह मुझे देते हुए मेरा उत्साह बढ़ाया और मुझे विश्वस्त किया कि अनुवाद करने के दौरान यदि मुझे किसी भी प्रकार की

शंका या कठिनाई आए तो वह उसका निवारण करके मेरी सहायता करेंगे।

अनुवाद करते बीच-बीच में कठिनाईयाँ तो बहुत आईं परन्तु जब-जब भी मैं इस संदर्भ में उनके पास जाता वह उन कठिनाईयों का हल सहजता से सुझा देते और निरंतर मेरा उत्साह बढ़ाते रहते। इसके साथ-साथ अपनी साहित्यिक यात्रा के अनुभवों, साथियों, मित्रों की चर्चा करते तो लगता कि एक साहित्यकार का व्यक्तित्व सही अर्थों में इस प्रकार का ही होना चाहिए जिसके हृदय में कहीं भी बैर तथा द्वेष के लिए कोई स्थान न हो। खुले दिल की खुली बातों से कौन होगा तो जो प्रभावित हुए बिना रह सके।

एक बात जिसे स्वीकार करने में मुझे कोई झिझक नहीं हो रही कि ख़ालिद साहिब की कहानियों में मुहावरों तथा लोकोक्तियों को मैंने वैसे का वैसा ही रहने दिया क्योंकि आवश्यक नहीं है कि मुहावरों आदि का सार्थक विकल्प आपको मिल ही जाए और अर्थ का अनर्थ करने से मैंने उचित यही समझा कि मुहावरों तथा लोकोक्तियों को बिल्कुल ही न छेड़ा जाए ताकि कहानी की सरसता मूल कहानी की भाँति बनी रहे। हाँ जहाँ कहीं सम्भव हो सका सरल ढंग से सही अर्थ देने का प्रयास भी किया है।

एक वर्ष से अधिक लम्बे अंतराल के कठिन परिश्रम से इस कार्य को पूर्ण कर पाने में सफल हुआ। इसमें कहाँ तक पूरा उतर पाया हूँ इसका निर्णय पाठकगण स्वयं कर सकते हैं। मेरे इस कार्य को करने का कारण यही था कि पंजाबी में रचित इन कहानियों को पंजाबी तथा डोगरी भाषा के साहित्यकार तो गोष्ठियों में सुनकर सहजता से समझ सकते हैं परन्तु हिन्दी भाषी नहीं। तो फिर हिन्दी कहानी का पाठक इन अनूठी और सुन्दर कहानियों से वंचित क्यों रहे। मेरा विश्वास है कि हिन्दी साहित्य जगत में भी इस पुस्तक का स्वागत वैसा ही होगा जैसा कि पंजाबी साहित्य में हुआ है। इस प्रकार हिन्दी जगत भी इन कहानियों से परिचित हो जाएगा और मेरा यह प्रयास सफल हो जाएगा। भविष्य में यदि सम्भव हो सका तो उनकी कुछ और कहानियों का अनुवाद और

भी करना चाहूँगा।

अंत में मैं ख़ालिद साहिब का धन्यवादी हूँ कि उन्होंने मुझे इस कार्य के लिए मुझे योग्य समझा तथा अपनी अनुमति देकर अपनी विशाल हृदयता का परिचय दिया। ऐसे कार्य में पूरा उतर पाना कदापि सम्भव नहीं होता इसलिए मुझसे भी अनेक त्रुटियाँ रह गई होंगी इसके लिए मैं उनसे तथा पाठकगणों से क्षमा चाहूँगा और प्रयास करूँगा कि यदि फिर कोई ऐसा दायित्व मुझ पर डाला गया तो और बेहतर करने का प्रयास करूँगा।

अब यदि मैं उन महानुभावों का धन्यवाद न करूँ जिनके कारण आज मैं इस प्रकार के कार्य करने का बीड़ा उठा सकने में सक्षम हुआ हूँ तो यह बहुत बड़ी दृष्टता होगा। मैं आभार प्रकट करता हूँ स्व० प्रेम सिंह जी का, भगवान उनको स्वर्ग में स्थान दे जो मुहल्ला मस्तगढ़ में हमारे घर के बिल्कुल सामने रहते थे और जिन्होंने मुझे आरम्भिक उर्दू भाषा से परिचित कराकर मुझ पर विशेष अनुकम्पा की। इसके अतिरिक्त अपने एक सहपाठी तथा मित्र बलबीर सिंह जिन्होंने आठवीं कक्षा में पढ़ते समय मुझे पंजाबी भाषा सिखाई। आज पंजाबी भाषा की जितनी भी थोड़ी-बहुत जानकारी मुझे है उसकी नींव उन्होंने ही डाली थी। इसके अतिरिक्त सुश्री सुषमा गुप्ता जो कि दूरदर्शन में कार्यरत हैं तथा सुश्री प्रतिभा पुरन्धि का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे जहाँ तक बन पड़ा सँस्कृत भाषा पढ़ाने की कृपा की जिससे यथा सामर्थ्य मैं भी थोड़ी-बहुत सँस्कृत भाषा पढ़ने तथा समझने में सफल हो गया।

पाठकगणों से विनम्र विनती है कि त्रुटियों से मुझे अवश्य अवगत कराएँ ताकि भविष्य में उनको न दोहराऊँ।

दीपक 'आरसी'
सम्पर्क : 9858667006

इश्क़ मलंगी

लाहौर में दाता दरबार के सामने पटरी पर कुछ महिलाएँ तथा पुरुष छोटे-छोटे पिंजरों में तोते और चिड़ियों को लिए ग्राहकों की प्रतीक्षा में रहते हैं। प्रायः आस्थावान दाता गंज बख़्श के मज़ार पर हाज़िरी देने के पश्चात् उनके पास आते हैं और पक्षियों का मोल चुका कर चिड़ियों और तोतों को पिंजरों से मुक्त करवाकर पुण्य कमाते हैं। यह दृश्य देखकर मुझे अपना मित्र गामा नाई स्मरण हो आया जिसकी दुकान जम्मू के उर्दू बाज़ार में थी और दुकान की छत पर उसने एक छोटा-सा चिड़िया-घर बनाया हुआ था जिसमें गामे नाई ने चिड़ियों और तोतों के अतिरिक्त बन्दर भी पाल रखे थे। वह बाल काटने के साथ-साथ तोतों और बंदरों को सिधाने और उन्हें करतब सिखाने में भी निपुण था। कई मदारी वाले उससे बंदर खरीद कर ले जाते और अपनी जीविका कमाते। एक बंदर गामे ने ऐसा सिधाया था कि बाल काटते या हजामत बनाते हुए भी वह उसके कन्धों पर चढ़ा रहता था। गामे को चरस वाले सिगरेट पीने की लत थी। वह चरस वाले सिगरेटों का धुआँ बंदर के नथुनों में डालता और इस प्रकार उसके साथ दिल्लगी करता रहता। कभी-कभी तो वह अपने पालतू बंदर को सिगरेट का एक-आध कश भी लगवा देता। इस प्रकार धीरे-धीरे गामा चरसी का बंदर चरस के धुएँ का आदी हो गया और वह इस नशे की खुमारी में मस्त रहता। दो-तीन बंदरों की सिखलाई गामे नाई ने इतने बढ़िया ढंग से की थी कि जो भी उन्हें खरीद कर ले जाता, वह बाद में पछताता क्योंकि आठ-दस दिनों के पश्चात् वह बंदर अपने मालिक को छोड़, वापस गामे के पास आ जाते। गामे

ने अपने पालतू बंदर का नाम लट्टू रखा हुआ था। लट्टू गामे की सिखलाई हुई कलाकारी का एक उत्तम नमूना था। वह कई बार साथ वाली दुकानों के भीतर चला जाता और दुकानदार से नज़र बचा कर चवन्नी, अठन्नी और रुपए का सिक्का मुँह में डाल लेता और दो-चार छलांगें मारता हुआ फिर अपनी दुकान पर आ जाता और पैसे गामे को दे देता। गामा नाई पैसे जेब में डाल लेता और ऐसे ही मौज मेला चलता रहता। एक बार गामा दो दिन के लिए किसी सम्बन्धी की शादी पर जग्हानू गाँव चला गया और दुकान अपने शागिर्द और लट्टू के हवाले कर गया। दो दिन चरस के सिगरेटों का धुआँ न मिलने के कारण लट्टू का सारा शरीर टूट रहा था और वह निढाल होकर दुकान के एक कोने में मरियल सा पड़ा रहा। गामे के वापिस आते ही वह कूद कर उसकी गोद में बैठ गया और उसकी जेब में हाथ डालने लगा। गामा सारी बात समझ गया। उसने चरस भरा सिगरेट सुलगाया और धुआँ लट्टू के मुँह पर फूँकने लगा। धुआँ सूंघने से उसे होश आने लगा। गामे ने सिगरेट के पाँच-सात लम्बे-लम्बे कश लिए और धुआँ लट्टू के नथुनों में डालने लगा। धुआँ भीतर जाते ही लट्टू चुस्त और दुरुस्त हो गया।

गामे नाई का एक घनिठ मित्र था, जिसका नाम काले ख़ान था। वह केवल नाम का काले ख़ान था अन्यथा वह तो गोरा चिट्टा, लम्बा और सुन्दर पठान था। वह एक कोचवान था और उसके पास अपना तांगा घोड़ा था। वह गुम्मट अड्डे से और कभी पंजतीर्थी से सवारियों को लेकर नहर या सतवारी के तीन-चार फेरे लगाता और फिर गामे की दुकान पर आ जाता। अपना तांगा और घोड़ा वह कभी मुहल्ला तालाब खटीकां में वज़ीर-ए-वज़ारत (डिप्टी कमीशनर) सरदार अकरम ख़ान दुर्रानी की हवेली के पास या फिर मुहल्ला जीवन शाह वाले चौक में खड़ा कर देता और घोड़े के आगे चारे वाला थैला रख कर स्वयं गामे की दुकान पर बैठ जाता। वह गामे की दुकान पर गप्पें मारने कम और आँखें सेंकने के लिए ज़्यादा बैठता था क्योंकि फ़िरोज़ा कसबी का चौबारा

गामी की दुकान के ठीक सामने था और काले ख़ान फ़िरोज़ा का आशिक़ था। वह उसके साथ आँख मटक्का करता रहता। काले ख़ान वैसे तो एक सीधा-सादा व्यक्ति था परन्तु उसकी आँखों में फ़िरोज़ा को प्राप्त करने के सपने नृत्य करते रहते। मैं भी दफ़्तर से काम से निवृत्त होते ही गामे की दुकान पर आ जाता और हम दोनों काले ख़ान का उपहास उपहास रहते।

उर्दू बाज़ार सन् सैंतालीस से पूर्व बड़ा रौनक़ वाला बाज़ार था। यहाँ कस्बियों और डेरे दारनियों के चौबारे थे और चौबारों के नीचे फूलों, इत्र, पान, सिगरेट, चाय, दूध-दही, मिठाई और निहारी की दुकानें थीं। शीशे-कंघे, परांदे, चूड़ियाँ, कंगन, झुमके और छल्ले की छाबड़ियाँ थीं। बर्फ़, कुल्फ़ी, शरबत, सोडा और नींबू पानी की रेहड़ियाँ थीं। अफ़ीम, चरस, गांजा और शराब बे-हिसाब मिलती थी। इस बाज़ार में मलका पुखराज, उसकी फूफियाँ नीलो और फीलो, ममेरी बहन ज़ुबैदा, भागो पेरनी की बेटी गौहर जान, इक़बाल बाली, ताजी, ज़ुमरद, सरदार बेगम और मोती जान अपने सौंदर्य के जलवे लुटातीं और मौज-मस्ती के रसिया नवयुवकों, ख़िज़ाब रंगे और मेंहदी रते आशिक़ों की जेबें हल्की करातीं। हर दिन शामें सजतीं, गाने-बजाने की महफ़िलें रतजगा करतीं, मोतिए, गुलाब और मोलसरी के फूलों की सुगन्ध दिलरुबाई करतीं। अल्हड़ जवानियों और सुरीली आवाज़ों का संगम क़यामत ढाता और मनचले फ़रिश्तों को लालायित करता।

यह शायद सन् चालीस की बात है कि पटियाला घराने के प्रसिद्ध गायक और शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता ख़ान साहिब उस्ताद आशिक़ अली ख़ान पटियाले से जम्मू आए थे। उन्होंने रेज़ीडेन्सी रोड पर बनी कश्मीर सोप फैक्ट्री की छत पर गीत संगीत की महफ़िल में शिरकत की और अपनी गायकी का कमाल दिखाया। उस्ताद आशिक़ अली ख़ान साहिब को सुनने के लिए मलका पुखराज, गौहर जान, सरदार बेगम और मोती जान भी आई थीं। गौहर जान और सरदार बेगम ने तो आस्था स्वरूप ख़ान साहिब के पाँव भी दबाए थे। वहाँ किसी ने ख़ान साहिब से फरमाईश की

कि वह कुन्दन लाल सहगल की राग गान्धारी में गाई हुई ठुमरी "झूलना झुलाओ री, अम्बुआ की डाली पे कोयल बोले" सुनाएँ। ख़ान साहिब हल्का सा मुस्कुराए और फिर उन्होंने गान्धारी आरम्भ किया और अपनी आवाज़ से महफ़िल को मस्त बना दिया और यह भीं बता दिया कि गान्धरी का वास्तविक स्वरूप क्या है और पटियाला घराने की लयकारी किसे कहते हैं? फिर उन्होंने एक दादरा सुनाया, बोल थे.....कहाँ गिरी रे मोरे माथे की बिन्दिया", महफ़िल समाप्त हुई। ख़ान साहिब का सम्मान किया गया। पुरुस्कार आदि भी प्रदान किए गए। शाल-दुशाले पेश किए गए कई रईस घरानों में उनकी दावतें भी हुईं। मलका पुखराज ने उनकी विधिवत शिष्यता ग्रहण की और फिर संगीत की दुनिया में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई।

परन्तु काले ख़ान को न तो संगीत की महफ़िलों में बैठने का शौक़ था और न ही कस्बियों संग रबाब बजाने का चाव। वह तो केवल फ़िरोज़ा का अल्ग़ोज़ा था। फ़िरोज़ा के लिए उसका प्रेम एक आलोकित शब्द था, आत्मा का वाद्य यंत्र था और हृदय की ध्वनि। वह फ़िरोज़ा के सिर पर इज़्ज़त की चादर डालना चाहता था, उसे अपना सहयात्री बनाना चाहता था और अपने स्वयं को उसके अस्तित्व में गुम करना चाहता था। जभी तो वह गामे नाई की दुकान पर बैठ कर अपनी आँखों को फ़िरोज़ा के चौबारे की परिक्रमा कराता रहता और मन्द स्वर में माहिये गाता रहता।

वैसे तो काले ख़ान कोरा अनपढ़ था परन्तु प्रेम-ग्रन्थ के शब्द उसके हृदय ने ख़ूब पढ़े थे। उस बेचारे की इच्छा थी कि फ़िरोज़ा प्रेम की गाजनी से उसके हृदय की पट्टी को लीप दे और मोह के अक्षर लिखे और उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे। फ़िरोज़ा के लिए उसने अपनी आँखों में लाज व शर्म का सुरमा डालकर मन के घोड़े की लगाम दृढ़ता से थामे रखी और उसे अनियंत्रित नहीं होने दिया। काले ख़ान फ़िरोज़ा के सौंदर्य का शैदाई था और कहता था कि अल्लाह मियाँ ने आशिक़ को इश्क़ और माशूक़ को सौंदर्य की पूंजी प्रदान की है। जब दोनों एक हो

जाएँ तो "कच्चे घड़े" भी पार लग जाते हैं। फ़िरोज़ा को देखते ही काले ख़ान की मन ऋतु में सरसों फूट पड़ती और दिल बाग़-ओ-बहार हो जाता। वह मन ही मन में फिरोज़ा को प्रेम-पीपल पर झूला झुलाता और गाता....."पींघ चुटेंदे दो जने नी ओए, आशक़ ते माशूक़ वे माहिया"। परन्तु दीपक का नाम लेने से भला अन्धकार मिटा भी है कभी। उसके लिए तो दीपक जलाना पड़ता है जो अभी तक जला ही नहीं था। काले ख़ान गामे की दुकान पर बैठ कर फ़िरोज़ा के दीद की ईद मनाता परन्तु बात करने से डरता था। गामा जानता था कि जब से काले ख़ान ने फ़िरोज़ा के साथ आँख लगाई है तब से उसकी आँख नहीं लगी और वह गुमसुम सा रहने लगा है परन्तु वह काले ख़ान को कुछ नहीं कहता, केवल इश्क़ नज़ारा देखता रहता। धीरे-धीरे फ़िरोज़ा को पता चल गया कि काले ख़ान नाम का कोई कोचवान गामे नाई की दुकान पर बैठ कर उसे ताकता रहता है। एक दिन उसने गामे को अपने चौबारे पर बुलाया और काले ख़ान के विषय में पूछताछ की। जब गामे ने बताया कि काले ख़ान एक सीधा-सादा व्यक्ति है और अपने दिल की सुरमादानी से उसके नयनों में इश्क़ का सुरमा डालना चाहता है और उसे अपना बनाना चाहता है तो फ़िरोज़ा के माथे पर शिकन पड़ गई। वह क्रोध से लाल-पीली हो गई और फुंकारने लगी.....

"वह कमीना और घटिया कोचवान मुझे प्राप्त करने के सपने ले रहा है। ज़ात का कोढ़ किरला और शहतीरी को जफ्फे। बस इस बात को यहीं समाप्त कर दो। किसी और के साथ बकवास मत करना। मेरे चौबारे पर रईसज़ादे और वडेरे आते हैं और दौलत लुटाते हैं। वह तांगे वाला मुझे क्या देगा। उसकी औक़ात ही क्या है, उसे समझा दे कि वह मेरे सपने देखना छोड़ दे और यहाँ से दफ़ा हो जाए वरना गुण्डों से इतना पिटवाऊँगी कि होश ठिकाने आ जाएँगे।" फिरोज़ा की बातें सुनकर गामे ने कहा था : फ़िरोज़ा बीबी! काले ख़ान तुम्हारा सच्चा आशिक़ है। वह तुम्हें दिल की दौलत दे सकता है। जान तुम्हारे नाम कर

सकता है। उसका इश्क़ अज़ान की भांति पवित्र है, उसे तुम्हारे सौंदर्य ने ठग लिया है, उसे तुम्हें देखने का चसका लग गया है, वह तड़प रहा है, उसका जीवन ख़ाक में न मिला, वरना उसके दिल की दहलीज़ को दीमक खा जाएगी और आँखों का कोठा टपक पड़ेगा। वह सर्द, गर्म मौसम में तुम्हारा साथ देगा। फ़िरोज़ा बीबी! यौवन के दिन चार, फिर नहीं मिलते यार, और जब तन तम्बूरे की तारें ढीली हो जाएँ तो आयु की साँसी उन्हें कस नहीं सकती। परन्तु काले ख़ान कड़ी दोपहरी में तुम्हारी घनी छाँव बनेगा और ढलती साँझ में तुम्हारा सहारा। बीबी! रूप-स्वरूप की माया का मान न कर। यह सब छल, फ़रेब है, परन्तु उसका प्रेम अम्बरी सेब है, मीठा और झरने की भांति पवित्र व निर्मल। फ़िरोज़ा! तुम्हारी दुनिया मिथ्या है, उसकी दुनिया सच है। और असत्य से बड़ा छल कोई नहीं जबकि सत्य से मीठा फल कोई नहीं। यह रईसज़ादे और वडेरे शरीरों के भूखे होते हैं, परन्तु काले ख़ान तुम्हारी आत्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। तुम्हें अपनाना चाहता है, इसलिए यह बेरुख़ी छोड़, सौंदर्य का गर्व न कर, यह मिट्टी में मिल जाना है शेष केवल ईश्वर का नाम रहना है।"

"गामे! मुझे शब्दों के फेर में न फँसा। शब्द पन्नों पर नृत्य करते भले लगते हैं, जीवन की कसौटी पर इनके कोई अर्थ नहीं होते। इश्क़, प्रेम, मुहब्बत की बातें करना कामी वृत्ति वाले मनुष्यों के चोंचले होते हैं, तुम ये स्वांग रचाना छोड़ दो और निकलो यहाँ से।" वह उलटा-सीधा बोलती रही, गामी सुनता रहा। उसका कोई तर्क स्वीकार नहीं हुआ। अन्त में वह पराजित होकर फ़िरोज़ा के चौबारे की सीढ़ियाँ उतर आया। कुछ देर पश्चात् काले ख़ान भी दुकान पर आ गया। गामी ने उसे फ़िरोज़ा के साथ हुई सारी बातचीत सुनाई और समझाने लगा, "काले ख़ान! तुम मेरी दुकान पर बैठ कर फिरोज़ा को ताकना छोड़ दो, वह बड़ी दुष्ट औरत है, तुम्हारी शक्ल से भी दुखी। वह तुम्हें गुण्डों से पिटवाना चाहती है। वह आग उगल रही थी और बावली कुतिया की भांति मुझ पर गुर्रा रही थी। इसलिए फ़िरोज़ा का विचार त्याग दो। तुम नहीं

जानते कि रंडी का शोर-शराबा अच्छा नहीं होता। तुम्हें फ़िरोज़ा के सिर पर इज़्ज़त की चादर सजाने का शौक़ चढ़ा है परन्तु यहाँ उर्दू बाज़ार के चौबारों की रीत निराली है। यहाँ नवयुवतियाँ स्वयं नंगे सिर रहती हैं परन्तु सारंगी को लिहाफ़ ओढ़ाती हैं ताकि साज़ आबाद रहें।

गामे नाई की बातें काले ख़ान के पल्ले नहीं पड़ीं। उसने अब तांगे के फेरे लगाने भी कम कर दिए थे और सारा-सारा दिन गामे की दुकान पर बैठा रहता और फ़िरोज़ा के चौबारे की ओर देखता रहता ताकि यार के दीदार हों। दुकान बंद होने के पश्चात् भी वह चबूतरे पर बैठा रहता। आप तो जानते हैं कि गाँव साँझ होते ही सो जाते हैं और फ़जर की अज़ान के साथ ही जाग उठते हैं परन्तु शहर रात को जागते हैं और दिन में सोते हैं, विशेष कर जम्मू के उर्दू बाज़ार के वासी। इसलिए जब तक उर्दू बाज़ार जागता, काले ख़ान भी जागता रहता और भोर के समय घर जाता, दुकानें खुलते ही वह फिर बाज़ार में आ जाता।

इश्क़ बला ने उसकी नींदे चुरा ली थीं। शीघ्र ही काले ख़ान की यह प्रेम कहानी मुहावरों की भांति प्रसिद्ध हो गई। हर ओर शोर मच गया, उसके दोस्त-मित्र उसे समझाने लगे....

"काले ख़ान! तुम्हारी करतूत सुनकर मेरी तो कमर ही टूट गई। मेरे यार! यह कौन से कीचड़ में फँस गए हो? तुम्हें क्या हो गया, क्या तुम्हारी मति भ्रष्ट हो गई है, ओए पागल! कंजरी को दिल दे बैठे हो। यह क्या कर बैठे हो, तूने किस बला पर हाथ डाला है। यहाँ जम्मू में भला लड़कियों की कोई कमी है। एक से बढ़कर एक सुन्दर, तुम जिस मुटियार पर उंगली रखते, उसी के साथ तुम्हारा निकाह पढ़वा देते।" सलीम पांडी बोल रहा था। अभी उसकी बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि शीदा कसाई कहने लगा.....

"तुम्हें यह कौन सा इश्क़ का जिन्न चिमड़ गया कि तुमने तांगा घोड़ा किराए पर दे दिया और खुद फ़िरोज़ा के चूल्हे की राख छान रहे हो, शर्म करो शर्म। इन कोठे वालियों के चक्करों में

न पड़ो, क्यों इस मोह की भूख को पाल रहे हो? यह भूख पालने योग्य नहीं है। क्यों टूट-फूट का शिकार हुए हो, होश करो, अक़्ल को नाखुन न मारो और दिल के तार खुरचने बंद करो। कामनाओं की बस्ती में केवल अन्धकार होता है। इसलिए चाहतों की गगरी फोड़ो और उसका विचार छोड़ो। साहस करो और तांगा पकड़ो। हम आज ही तुम्हारे लिए कोई लड़की ढूँढते हैं और तुम्हारी शादी कराते हैं, अपनी गृहस्थी बसाओ और मौज मनाओ।"

"शीदे यार! फ़िरोज़ा के लिए मेरे मन का पंछी फड़फड़ाता रहता है। परन्तु तुम लोग इश्क़ की रम्ज़ को क्या समझो। यह जो जीवन है ना, यह एक सूई है और इस सूई में इश्क़ का धागा कोई सोच समझ कर नहीं पिरोता। दूसरी बात यह है शीदे! इश्क़ माँगने से नहीं मिलता, यह तो आत्माओं पर अवतरित होता है और मेरी आत्मा भी फ़िरोज़ा के हृदय-द्वार पर दस्तक दे रही है, आगे मेरा नसीब। यदि मेरे भाग्य में बिछोड़े की सज़ाएँ है तो कोई कुछ नहीं कर सकता। मैंने अपनी पीड़ा का बोझ स्वयं सहन करना है। फिर तुम्हें तो ज्ञात होगा कि इश्क़ की मंज़िल को जाने वाले मार्ग कभी समाप्त नहीं होते। इन मार्गों पर चलने वाला एक राही यदि चला जाता है तो दूसरा उसका स्थान ले लेता है। मजनूं, फ़रहाद, पुन्नू, महीवाल, मिर्ज़ा और राँझा, सभी इसी मार्ग के राही थे। मैं भी इस मार्ग पर चल पड़ा हूँ, आगे मेरी क़िस्मत। तुम मेरी चिंता मत करो, वही होगा जो मन्जूर-ए-ख़ुदा होगा।"

एक दिन जब काले ख़ान की चाहत मुँह ज़ोर हुई तो उसने फ़िरोज़ा के चौबारे पर हाज़िरी देने की ठान ली। वह गामे नाई की दुकान से नीचे उतरा, सड़क पार की और चौबारे की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

"तुम! तुम क्या लेने आए हो यहाँ?" फ़िरोज़ा गरजी।

"मैं अपने दिल के कहने पर तुझसे प्रेम की भीख माँगने आया हूँ, मुझे अपने प्रेम का शरबत पिला। तुझे बिस्मिल्लाह का सवाब मिलेगा। फ़िरोज़ा! मेरे दिल की कुटिया में बड़ी सीलन है। तू मोह की अग्नि बाल ताकि मैं हो जाऊँ निहाल।"

"क्या बकवास कर रहा है, तुझे गामे नाई ने नहीं समझाया। तेरी बुद्धि क्या घास चरने गई है, क्यों मरने के लिए यहाँ आया है, सूर के बच्चे, तुझे इतनी मार पड़ेगी कि अपने पैरों पर चलने के क़ाबिल नहीं रहेगा। यह इश्क़-मुश्क़ के चोंचले छोड़ और दफ़ा हो जा यहाँ से। सारी मर्द ज़ात काम का कीड़ा होती है, इनका प्रेम दिखावा, धर्म दिखावा, यह बाहर से प्रेम की कसमें खाते हैं परन्तु भीतर सुलगते काम का लावा। मैं मर्दों के सब लच्छन समझती हूँ।

"फ़िरोज़ा! तुम चाहे मुझे गुण्डों से मरवाओ, चीलों और गिद्धों को मेरा माँस खिलाओ, कुत्तों को मेरी हड्डियाँ डालो, मैं फिर भी जीवित रहूँगा। मेरी कथा-कहानी जग में अमर गीत बनेगी क्योंकि मेरा प्रेम मेरा जुनून है और जुनून का कोई इलाज नहीं होता। फ़िरोज़ा! तुम्हारे बाज़ार में कौड़ियों के भाव ठहाके बिकते हैं। नयनों के इशारे बिकते हैं, शरीर के नज़ारे बिकते हैं, तुम भी तो शरीर बेचती हो, पर मैं ख़रीदार नहीं हूँ। यदि मैं काम का रोगी होता तो तेरा भोगी होता। परन्तु मैं तो तुम्हारे साथ निकाह के कलमे पढ़ना चाहता था और तुम्हें अपनाना चाहता था परन्तु तुम तो निर्लज्जता का चोला उतारना ही नहीं चाहतीं। याद रखो कि सदा बाग़ों में बुलबुलें नहीं बोला करतीं और न ही सदा बाग़ों में बहारें रहती हैं। यह सौंदर्य, यौवन, यारों की दिलदारियाँ, सब मक्कारियाँ हैं। मेरी बात पल्ले बाँध लो कि एक समय आएगा जब तुम्हारा दर्द बाँटने वाला कोई नहीं होगा। उस समय मेरा इश्क़ तुम्हारा सहारा बनेगा। इसलिए व्यर्थ तमाशे करना छोड़ो, आँख मैली न करो और मेरा हाथ थाम लो, मुझे सोच कर जवाब देना मैं फिर आऊँगा।"

"खबरदार! जो दोबारा यहाँ पैर रखा, हराम की औलाद, सूअर के बच्चे, तू जाता है या बुलाऊँ मुश्टण्डों को....फ़िरोज़ा की ऊँची आवाज़ें सुनकर एक भड़वा आया और उसने काले ख़ान को धक्के मार कर कोठे से बाहर निकाल दिया। वह बेचारा निराश, दुखी फिर गामे की दुकान पर आ बैठा। काले ख़ान को

देखकर हमने पूछा :

"फ़िरोज़ा के कोठे पर क्या लेने गए थे?"

"ज़ाहिर है, दरूद पढ़ने तो नहीं गया था, उसे अपना सीना चीर कर उसमें उसकी तस्वीर दिखाने गया था परन्तु फ़िरोज़ा की अक़्ल भी दूसरी औरतों की तरह उसकी एड़ी के नीचे निकली। उसकी आँखें भी कोरी हैं और दिल भी कोरा, उसने मुझे दिल का द्वार खोलने ही नहीं दिया।" काले ख़ान हमें सुना रहा था, उसकी पीड़ा उसके चेहरे पर स्पष्ट प्रतीत हो रही थी।

गामा बोला...."मैंने तुम को समझाया था कि उन तिलों से तेल नहीं निकलने वाला। क्यों पत्थर से सिर फोड़ रहे हो, पर तुम बाज़ ही नहीं आते। तुम को इश्क़ नाग ने डसा है और विष तुम्हारे शरीर में फैल चुका है। न जाने तुम्हें किस पीर-फ़क़ीर ने इश्क़ बूटी सुंघाई है कि तुमने अपने जीवन का मक़्सद फ़िरोज़ा को बना लिया। तुम क्यों नहीं समझते कि "औरतें दिखाएँ जितने रंग, एक ही लज़्ज़त एक ही ढंग", फिर वह चाहे फ़िरोज़ा हो, ज़ुबैदा हो, शकुन्तला हो या फिर रोज़ी। सुन काले ख़ान! नार सफ़ेद झूट है, बेवफ़ा मक्कार है और आग का अंगार है। इसलिए मेरी सुन और इस आग में जलने से बाज़ आ जा। फ़िरोज़ा को भूल जा और नए रिश्ते तलाश कर, शादी कर ले और अपना घर बसा। पर तू है कि मानता ही नहीं, इतना अपमान और फटकार खाने के बावजूद भी तुम्हारी आँखें भंवरे की भांति फ़िरोज़ा के चौबारे की ओर मंडराती रहती हैं।"

काले ख़ान गामे की बातें सुनता रहा फिर लम्बा साँस लेकर कहने लगा.....

"गामे यार! तुम तो शब्द गढ़ने में माहिर हो, तुम से भला कौन जीत सकता है परन्तु मैं अपने दिल का क्या करूँ?"

"काले ख़ान! क्यों कोल्हू के बैल की भांति एक ही खूंटे से बँधे घूम रहे हो। अपने आप पर दया करो, क्यों इस जन्म में दुख भोगने आए हो, मुझे तुम्हारे दुख का बड़ा कष्ट है, इसलिए मेरी बात मान ले, उस कमीनी ज़ात के लिए अपना जीवन बरबाद न

कर।"

"गामे! मुझे मेरे हाल पर छोड़ दे। मेरा इश्क़ मेरा रब है और मेरी फ़रियाद मेरे रब से है। मुर्शिद कहता है कि "रब्बा! मेरे हाल का मैह्रम तू, तू ही ताना, तू ही बाना, रोम रोम में तू।"

सूर्य प्रतिदिन उदय होता रहा और अस्त होता रहा, आस का दीपक जलता रहा परन्तु फ़िरोज़ा नहीं आई। काले ख़ान के मुँह से आहें निकलती रहीं और वह मलंग हो गया। इस इश्क़ मलंगी में उसे दुनिया की कोई ख़बर नहीं रही। उसे पता ही नहीं चला कि देश में कब आँधी चली? कब तूफ़ान आया और क्यों आया? धरती दो फाड़ क्यों हुई? इतना बड़ा भूकम्प कैसे आया कि जिसकी तीव्रता को नापना रिक्टर स्केल के बूते से बाहर हो गया, और कैसे इस भूकम्प ने मानवता को अन्धा कर दिया, लाखों लोगों की मारकाट हुई। करोड़ों अपने घरों से बेघर हुए। काले ख़ान चकित था कि यह कैसा विवाद था कि जिसे कोई हल नहीं कर सका, जबकि केवल एक कलमे का फ़र्क़ था वरना हिन्दू मुसलमान प्यार में ग़र्क़ था। शायद धर्म अपने अस्तित्व का बंदी होता है, जभी तो विनाश करता है। दंगाईयों ने क़हर ढाया, सब कुछ छीन लिया। हड़बड़ी मच गई, लोग..... साँसों के भूखे भाग गए। जुलाह्का मोहल्ला, दलपतियाँ मोहल्ला, पीर मिट्ठा, तालाब खटीकाँ, मुहल्ला अफ़्ग़ानां और उस्ताद मोहल्ले की बस्तियाँ ख़ाली हो गईं। तवी, उज्झ और बसन्तर की नदियों के पानी का रंग लाल हुआ। बच्चा सक्का की भांति चीलों, कौओं और गिद्धों को भी कुछ दिनों का राज मिला, कच्चा माँस खाने वाली यह मख़्लूक़ बड़ी प्रसन्न थी, क्योंकि उसे पहली बार भिन्न प्रकार का स्वादिष्ट माँस खाने को मिला था। शवों का व्यापार हो रहा था। शव आ रहे थे और शव जा रहे थे, लोगों की आवा-जाही लगी हुई थी। एक पल के निर्णय ने हमारी सभ्यता, हमारी सँस्कृति हमसे छीन ली। शताब्दियों का भाईचारा भेड़ियों ने चीर-फाड़ दिया। मार-काट और भागदौड़ का क्रम बहुत देर तक चलता रहा। फिर आँधी और तूफ़ान थम गया। जम्मू की ख़ाली बस्तियाँ नए लोगों ने आबाद

कीं। गामे और काले ख़ान का कोई समाचार नहीं मिला। फ़िरोज़ा, ज़ुबैदा, बाली, ताजी और गौहर जान, किसी का अता-पता नहीं चला। तबले, बाजे, घुँघरू, ढोलक, सारंगी, सितार सब बेकार हो गए, उर्दू बाज़ार उजड़ गया, रौनक़ें समाप्त हो गईं, पंछी उड़ गए।

उर्दू बाज़ार के वासियों ने शायद सीमा पार कोई नया बाज़ार बसा लिया हो, क्योंकि जहाँ गया बानिया वहाँ गया बाज़ार। कुछ दिनों बाद मुझे गामे नाई की कुशलता की सूचना मिल गई। उसने सियालकोट के मुहल्ला पूरण नगर में दुकान खोल ली थी और अन्य शौक़ भी वैसे ही रखे थे परन्तु काले ख़ान का कोई अता-पता नहीं चल रहा था कि वह जीवित भी है या मर चुका है। जम्मू फिर पहले की भांति रसने-बसने लगा। उर्दू बाज़ार, राजिन्दर बाज़ार बन गया। कस्बियों और डेरेदारनियों के चौबारों पर सरकार ने अधिकार कर लिया। शरणार्थियों के मकान, ज़मीनें और सम्पत्तियाँ वहाँ से आने वाले शरणार्थियों को अलाट कर दी गईं। लोकाई निःसन्देह बरबाद हुई परन्तु ख़ुदा की ख़ुदाई आबाद रही।

एक बार मैं भारत-पाकिस्तान क्रिकेट मैच देखने लाहौर गया और वहाँ बसे जम्मू के शरणार्थियों से मिला। सभी अपने साथ बीती भयाक्रांत कहानियाँ सुनाने लगे तथा जम्मू के विषय में पूछने लगे। अपने घरों से सम्बन्धित, मुहल्ले बाज़ारों से सम्बन्धित, गलियों और चौबारों के विषय में, दोस्त-मित्रों के विषय में, सम्बन्धियों के विषय में......बातें होती रहीं और आँखें भीगती रहीं। मुझे ऐसा लगा कि विभाजन की हृदय विदारक स्मृतियाँ अभी तीन-चार पीढ़ियों तक हमें चुभती रहेंगी। फिर मैंने काले ख़ान के विषय में पूछा परन्तु किसी को कुछ पता न था। हालांकि मेरा वीज़ा लाहौर तक का था, फिर भी मैं चुपचाप सियालकोट चला गया, ताकि काले ख़ान को तलाश कर सकूँ। गामा नाई मर चुका था और उसके स्थान पर उसका बेटा नाई की दुकान चला रहा था। वहाँ भी मैं जम्मू से गए लोगों को मिला। उर्दू बाज़ार के एक पान फ़रोश, जिसने सियालकोट दुर्ग के पास पान सिगरेट की

दुकान खोल ली थी, ने मुझे बताया कि काले ख़ान जीवित है और नारोवाल में रहता है। मैं नारोवाल जा पहुँचा और काले ख़ान को ढूँढने लगा। कुछ ही देर में काले ख़ान को मैंने एक सड़क पर पत्थर तोड़ते जा पकड़ा। उसको देखकर मेरे दिल को आघात लगा। वह खजूर का छुहारा बन चुका था। उसके बालों में चाँदी चमक रही थी। मुझे देखकर उसकी आँखों में प्रसन्नता नृत्य करने लगी। उसने बड़ी गर्मजोशी से मुझे गले लगाया। हम दोनों ने ख़ूब आँसू बहाए। जब मन हल्का हुआ तो मैंने पूछा -- "काले ख़ान! तुमने अपनी यह क्या हालत बना ली है? तुम्हारा तांगा घोड़ा कहाँ है? फ़िरोज़ा का कोई अता-पता? वह तुम्हें मिली या नहीं?"

बाबू! जहाँ गई फ़िरोज़ा वहाँ गया तांगा घोड़ा। मैंने उसे बहुत तलाश किया। सियालकोट, जेहलम, मीरपुर और लाहौर के शरणार्थी कैम्पों में ढूँढा। लाहौर की हीरा मंडी से लेकर रावलपिण्डी, पेशावर और कराची के मीना बाज़ारों में तलाश किया परन्तु उसका कोई पता नहीं चला। मैंने साहस नहीं छोड़ा और अपने प्रेम की गठरी को उठाए नगर-नगर, गाँव-गाँव घूमता रहा, नमाज़ें पढ़ता रहा, दुआएँ माँगता रहा परन्तु दुआएँ क़बूल भी हों यह ज़रूरी तो नहीं, बाबू! इस बुल्ले और दुल्ले के देश में आकर मुझे कोई सुख नहीं मिला। बस दुख मेरे पल्ले पड़ गया। दिलों के सौदे में मुझे बड़ा घाटा पड़ा। मैं तो रांझा बन गया परन्तु फ़िरोज़ा हीर न बन सकी और यह घाव मेरे भीतर सदा हरा रहेगा। मुझे तड़पाता रहेगा। अन्ततः मैंने अपने इश्क़ का जनाज़ा ख़ुद ही पढ़ा और नारोवाल आ गया। यहाँ पंज पीर की दरगाह के हुजरे (कोठरी) में रहता हूँ, दरगाह में झाड़ू फेरता हूँ, साफ़-सफ़ाई करता हूँ। अगरबत्तियाँ और मोमबत्तियाँ जलाता हूँ और जब मन बहुत दुखी हो जाए तो इस सड़क पर पत्थर तोड़ता रहता हूँ। परन्तु मेरी आँखें आज भी सोते-जागते फ़िरोज़ा के चौबारे की परिक्रमा करती रहती हैं।"

मैंने देखा कि काले ख़ान के भीतर आज भी इश्क़ की जोत जल रही थी। हम दोनों बहुत देर तक समय रूपी पुस्तक के पन्ने

पलटते रहे, वह अपने घाव कुरेदता रहा और मैं मरहम लगाने का प्रयास करता रहा। फिर मैंने काले ख़ान से वापिस लाहौर जाने की अनुमति माँगी। जब मैं जाने लगा तो उसने मुझे रोका और कहा. ....“बाबू! यह पत्थर तो मैं तोड़ लेता हूँ पर फ़िरोज़ा के दिल का पत्थर मुझसे टूट नहीं सका और इस बात का दुख मरते दम तक मेरे भीतर जीवित रहेगा।”

मैंने उसे गले लगाया, उसके आँसू पोंछे और वहाँ से चल पड़ा। वह दूर तक मुझे जाते देखता रहा। मैंने नारोवाल से लाहौर की बस पकड़ी और दूसरे दिन वाघा बार्डर पार करके जम्मू आ गया, परन्तु काले ख़ान के शब्द सारे रास्ते मेरा पीछा करते रहे. ....

“फ़िरोज़ा के दिल का पत्थर”

घृतकुमारी

कल रात जो तेज़ हवायें चलीं, जो तूफान आया, जो बिजली गिरी - क्या आप जानते हैं कि इसमें किस-किस का घर उजड़ गया? नहीं जानते? -- भला! आपको क्योंकर पता हो। यहाँ कौन किसी की खबर रखता है। यहाँ तो सभी अपने-अपने शीशमहलों में मस्त रहते हैं। ख़ैर -- आइये! मैं आपको बताऊँ कि कल रात की आँधी में जुलाहों की बस्ती का कौन-कौन सा घर उजड़ा। कहाँ-कहाँ बिजली गिरी। किस-किस की झोंपड़ी तबाह हुई। किन-किन मकानों की दीवारें गिरीं। मलबे के नीचे दब कर कौन-कौन मरा? साईं मंगला! हाँ! वही जो गंडा-तावीज़ देने का धंधा करता था और अल्लाह हू की फूँकें मारता था -- उसका तकिया जल गया -- और वह चंडू के कश लेता-लेता हमेशा के लिए अल्लाह हू हो गया -- आशा नाईन की झुग्गी, शीदे ठठेरे की झोंपड़ी, मिलखी राम की दुकान, गुलाम पाण्डी का कोठा -- सब ढेर हो गए और बिजली, जामी तरखान के मकान पर भी गिरी -- जिसके एक कमरे में गुल्लां सोई पड़ी थी। गुल्लां -- जामी तरखान की छोटी बहू, नसीरे की बीवी, जाजी की भावज -- जाजी की भावज पर बिजली गिरने से जामी का मकान जला नहीं, गिरा भी नहीं -- केवल कमरा कांप गया, जिसमें पड़ी एक चारपाई पर गुल्लां मस्त नींद में सोई हुई थी क्योंकि बिजली सीधी गुल्लां पर ही गिरी थी -- गुल्लां पर गिरने वाली बिजली से चारपाई की चूलें हिल गईं। आंगन में जामुन का पेड़ चीख़ा। परन्तु आन्धी और तूफ़ान के कारण धुंध बिखरी हुई थी। उसकी शां-शां करती चीख़ें, किसी ने नहीं सुनीं। बिजली अपना काम कर गई। गुल्लां की सारी काया झुलस गई।

गुल्लां एक अनाथ लड़की थी। उसके माँ-बाप, बहन-भाई सब जातीय दंगों में मर-खप चुके थे। किसी दूर के मामू के घर पली गुल्लां -- नमक, मिर्च, अचार के साथ-साथ बासी-सूखी रोटियाँ खाने और झिड़कियों-फटकारों और गालियों की लस्सी पीने के बावजूद भी जंगली फूल की तरह खूब खिली -- जब उसका यौवन मैले कपड़ों में अठखेलियाँ करने लगा और वह धरती पर तारे लुटाने लगी तो उसके मामू ने जामी तरखान के छोटे लड़के नसीरे के साथ नमकीन चाय और अरबी खजूरों पर गुल्लां का रिश्ता जोड़ दिया -- गुल्लां दुल्हन बन कर जुलाहों की बस्ती में आ गई। वह नए घर और नए वातावरण में आकर खुश थी। क्योंकि यहाँ उसे प्यार मिला था, परन्तु कभी-कभी उस प्यार की गर्मी को नसीरा शराबी बनकर ठंडा कर देता। जुलाहों की बस्ती में देसी शराब की सरकारी दुकान के अतिरिक्त अड़ोस-पड़ोस में अवैध शराब की कई भट्टियाँ होने के कारण वैसे तो सारा गाँव शराब का शौक़ीन था, परन्तु नसीरा जितना खुलकर रंदा फेरता, उतनी ही खुलकर शराब पीता।

गुल्लां के रोकने और टोकने पर उससे झगड़ा करने लगता और शराब के नशे और गुस्से में गालियों से भरी टोकरियाँ ख़ाली कर देता। इस प्रकार घर के मीठे वातावरण में फीकापन आ जाता। फिर सुहाग का लाल जोड़ा फटने के साथ-साथ गुल्लां भी ईंट का जवाब पत्थर से देने लगी। ऐसे ही गाली गलौच के काग लड़ते रहते। कभी-कभार दोनों में हाथापाई तक की नौबत आ जाती। थप्पड़, मुक्के और लातें खाकर गुल्लां रोने लगती और नसीरे को जी भर के बददुआएँ देती। नसीरे की माँ उसे पकड़ती। कभी उसे बुरा-भला कहती और कभी अपनी कोख को कोसती। पड़ोसी मुंडेरों पर चढ़कर तमाशा देखते। आख़िर गुल्लां का जेठ जाजी, नसीरे की अक़्ल ठिकाने लगाता और घर की अशान्ति को शान्त कर देता -- फिर न जाने गुल्लां की कौन सी बद्दुआ नसीरे पर असर कर गई कि वह सर्राफों के घर अलमारियाँ बनाने के लिए आरे पर लकड़ी क्या चराने गया कि चलती मशीन का

पटा टूटा और उसके भी टुकड़े कर गया। नसीरे की लाश को देखकर गुल्लां ने जो विलाप किया उससे सारी बस्ती का दिल दहल गया। वह छाती पीटने लगी, उसने सिर के बाल नोच डाले। वह अपने तीन साल के गुलज़ारे और एक साल के युसफ़े को बार-बार गले लगाती और उनकी यतीमी का मर्सिया पढ़ती जाती। लाश को नहलाने, कफ़न पहनाने और जनाज़ा ले जाने तक वह कई बार बेहोश हुई। औरतें उसे दिलासा देती जातीं, और खुद भी रोती जातीं। नसीरा अभी अठाईस साल का नहीं हुआ था कि हज़रत इज़राईल ने उसकी रूह क़ब्ज़ कर ली। नसीरे की बे-वक़्त मौत की वजह से उसके जनाज़े में सारे बस्ती वाले शामिल हुए। कलमा-ए-शहादत पढ़ने की आवाज़ों के साथ जनाज़ा निकला और मग़्फिरत की दुआ के साथ नसीरे को क़ब्र में दफना कर लोग घरों को वापिस आ गए। नसीरे की मौत के कुछ ही दिनों बाद उसकी बेचारी माँ भी अल्लाह को प्यारी हो गई और इस तरह घर की हकूमत पूरी तरह जाजी के हाथ आ गई।

गुल्लां कुछ देर के लिए जम सी गई। घर की चीज़ें, मकान के कमरे, कमरे की दीवारें, आँगन में लगा जामुन का पेड़ - सब के सब उसे अपनी तरह उदास लगते। कई बार उसकी आँखों के सामने नसीरे का चेहरा घूमने लगता जो उसके साथ बातें करता, उसे गालियाँ देता। उसे नसीरे का शराबीपन, गालियाँ, घूंसे, थप्पड़ - सारे रूप अच्छे लगने लगते। वह चाहती कि नसीरा उसके शरीर को नोचे लेकिन आँख झपकते ही गुल्लां अपनी असली हालत में आ जाती। ज़िंदगी की इस भीड़ में वह बाहर से तो सही सलामत दिखाई देती थी लेकिन अंदर से वह सारी की सारी टूटी हुई थी। वह दो बच्चों को क्या खिलाए, उनको कहाँ ले जाए, विधवा जवानी के दिन कैसे गुज़ारे। यह सोच-सोच कर उसके चेहरे की लकीरों में बल पड़ गए। वह चिंता की झाड़ियों में उलझ गई, उसकी आत्मा चिंतित हो गई। ऐसी ही दशा में जाजी उसे तसल्लियाँ देने लगा।

"गुल्लां! तू चिंता न कर। नसीरे के बच्चे मेरे बच्चे हैं। इस

घर पर तुम्हारा भी उतना ही हक़ है जितना कि मेरा। मैं कमाऊँगा, पहले तुम सब खाओगे फिर हम खाएँगे। जाजी के इस सहानुभूति के राग में कई सुर मिले हुए थे मगर गुल्लां जाती भी कहाँ। वह घर छोड़ कर दरबदर होना नहीं चाहती थी। इसलिए वह संयम रख कर बैठ गई। लेकिन जल्दी ही उसे अहसास हो गया कि उसकी हैसियत आटे में छान-बूरे से ज़्यादा नहीं। जाजी की जोरू हमीदां अधरंग की मारी काफी समय से पलंग पर पड़ी थी मगर उसकी ज़ुबान को तो अधरंग नहीं हुआ था। वह पलंग पर बैठी-बैठी भी आग उगलती रहती। सच पूछें तो उसकी ज़बान तालू के साथ लगती ही नहीं थी। जाजी की बेटी नीफ़ां भी कभी-कभी चाची पर जामुन की गुठलियाँ फैंकती रहती। वैसे मिट्टी के बर्तन आपस में खनकते रहते, टूटते रहते मगर जब जामुन के पेड़ के नीचे छाँव न रही और जामुन खाने में बिल्कुल मज़ा नहीं रहा तो गुल्लां ने अपना चूल्हा-चौका अलग कर लिया। वह सीने-पिरोने का काम जानती थी। इसके अतिरिक्त कुछ बड़े घरों में कपड़े और बर्तन साफ करके वह गुलज़ारे और यूसफ़े को पालने के साथ-साथ अपना पेट भी भरने लगी।

हमीदां के अधरंग ने जाजी की सारी शराफत भंग कर दी थी। वह कभी-कभी ज़रूरत के मुताबिक खुली चरागाहों में जाकर घास चर लिया करता था लेकिन जब से नसीरा नेक हूरों के हाथों शराब-ए-तहूर पीने जन्नत में चला गया था तब से जाजी का चंचल मन गुल्लां संग चंग बजाना चाहता था। उसके चरख़े पर अपना सूत कातना चाहता था। उसके साथ चादर बरदारी जैसा कोई रिश्ता कायम रखना चाहता था। वह धार्मिक मठाधीशों के ऐतराज़ उठाने पर गुल्लां के साथ निकाह करने को भी तैयार था। जाजी कई बार आँखों में खुमारी का रंग भर कर और सूखे होंठों पर चिकनी जीभ फेर कर गुल्लां को अपनी बात समझाने की कोशिश करता, गुल्लां उसकी आँखों और होंठों की मौन भाषा पढ़ कर चुप रहती - लेकिन एक दिन जब जाजी ने शराब के नशे में गुल्लां का हाथ पकड़ लिया और उससे अपने दिल की बात

साफ-साफ कह दी। तो गुल्लां ने घर में कोहराम मचा दिया। वह मुहल्ले वालों को सुना रही थी।

"जेठ बाप की जगह होता है, मैं इसकी बेटी की तरह हूँ। इसने ये बात कहने की हिम्मत कैसे की। ऐसी बात करते इसे शर्म नहीं आई। इतनी ही आग लगी है तो नीफ़ां से क्यों नहीं कर लेता शादी। छोटे भाई की विधवा पर बुरी नज़र रखता है। खुदा करे ये किसी गाड़ी के नीचे कट मरे....हरामी....बदमाश....साला।

गुल्लां को हंगामा करते देख जाजी घर से बाहर चला गया पर जुलाहों की बस्ती में यह बात फैल गई कि जाजी गुल्लां के साथ निकाह करना चाहता है। मुहल्ले की कुछ दुनिया देखी बुज़ुर्ग औरतों ने गुल्लां को समझाया कि वह जाजी की बात मान जाए ताकि घर की इज़्ज़त घर में ही रहे। लेकिन गुल्लां अपने शरीर को फिर सुलगते हुए तन्दूर में फैंकने के लिए तैयार नहीं थी। वह सिर्फ युसफे और गुलज़ारे के लिए जी रही थी नहीं तो उसकी आशाओं और कामनाओं का बसता शहर कब का खण्डहर बन चुका था। उसके दिल में आस के घुंघरू बजने कब के बंद हो चुके थें। दुनिया की हर चीज़ उसके लिए अर्थहीन हो गई थी। जाजी को यह विश्वास होने पर कि उसकी इच्छाओं के बादल जितनी मरज़ी बारिश बरसाएँ, गुल्लां के ठंडे जिस्म में फूल नहीं उग सकते। वह बाज़ की भांति अपने नाखुन तेज़ करने लगा ताकि अवसर मिलते ही वह जामुन के पेड़ पर बैठी हुई कबूतरी का शिकार कर सके - और कल सियाह रात को तेज़ आँधी में जो बिजली गिरी, वह इन्सानी बिजली - जाजी के रूप में सीधी गुल्लां पर गिरी थी जिससे गुल्लां का सारा शरीर झुलस गया - गुल्लां, जो मियाँ मिट्ठू की तरह अपने आपको इस घर के पिंजरे में सुरक्षित समझती थी, उसे पिंजरे में ही बिल्ली ने दबोच लिया। कई दिनों तक गुल्लां चूल्हे की लकड़ी की तरह सुलगती रही, जलती रही - फिर उसने जाजी से बदला लेने का फैसला कर लिया। उसके कुतरे पँख फिर उग आए। वह पिंजरे के सीखचों से बाहर निकल आई और अपने अंदर उगा हुआ धतूरा - जाजी को

खिलाने के लिए तैयार हो गई। जाजी की बेटी नीफ़ां शरअ़ मुहम्मदी के मुताबिक जवान हो चुकी थी उसके बदन पर वो सारे हथियार सज चुके थे जिनसे कोई भी व्यक्ति घायल हो सकता था। जभी तो जाजी ने शीदे ठठेरे के लड़के जीरे दरज़ी के साथ उसकी शादी कर दी – गुल्लां और नीफां में बस इतना ही अन्तर था जितना एक फूल और कली में होता है और जीरा पच्चीस साल का जवान गभरू एक उबलता दरिया – कली से संभाला नहीं गया, नीफ़ां का कोई भी हथियार जीरे को घायल नहीं कर सका।

शादी के बाद जीरा ससुराल आने-जाने लगा – और गुल्लां – नीफ़ां की पतंग काटने के लिए अपनी डोर पर मांझा चढ़ाने लगी – और एक दिन उसके कुर्ते से झांकती हुई नॉयलन की अंगिया ने नीफ़ां की पतंग को ऐसी ठिंगी मारी कि पतंग कटकर सीधी गुल्लां के क़दमों पर आ गिरी। लौंग के लश्कारे से जीरे के सारे शरीर में शरारे नाचने लगे। उसकी आँखों में प्यास के जुगनू झिलमिला उठे। बस फिर वह झिलमिलाते जुगनू गुल्लां ने बुझने नहीं दिए – इस प्रकार उबलता दरिया – सारे का सारा गुल्लां ने हज़्म कर लिया। नीफ़ां बेचारी को एक बूंद पानी भी पीने को नहीं मिला – कहते हैं कि औरत के लिए दिन लोहे का छल्ला होता है और रात सोने का झूमर लेकिन नीफ़ां के घोंसले पर क़ब्ज़ा जमाने के बाद गुल्लां के लिए दिन भी सोने की झांझर था और रात भी – जीरा उसके लिए सावन की मीठी फुहार बन गया, और वह रिमझिम फुहार में नहाने लगी – वो दोनों गुल्लू के वाड़े और शीतला मन्दिर में जाकर बेर खाते, तवी और नहर के ठंडे पानी में नहाते, बाहू, मुरालियां, सरूईसर और नागबनी की हवाओं में लहराते और कभी-कभार दिल पर जमी गुनाह की गर्द का एह्सास जागने पर वह पीर बाबा की दरगाह पर जाकर चिराग़ जलाते और झाड़ू देते ताकि गर्द साफ़ हो जाए।

नीफां की अम्मां हमीदां जीरे को गुल्लां के फूलों के साथ खेलते देखकर बड़ा तड़पी। वह अधरंग की मारी नीफ़ां को गुल्लां की चारपाई के नीचे रुलते देखकर खुद पलंग से ऐसी गिरी कि

उसकी ज़बान हमेशा के लिए तालू से जा लगी – जाजी ने जीरे को गुल्लां की चादर से बाहर निकालने के लिए बहुत ज़ोर लगाया। उसने जीरे को प्यार से समझाया, गुस्से से डांटा, मारा–पीटा लेकिन जीरा एक हठी बालक – फूल हाथ से छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। थक हार कर जाजी ने जीरे से कह दिया कि वह नीफ़ां को तलाक़ दे दे – जीरा तैयार हो गया लेकिन गुल्लां ने जीरे को तलाक़ देने नहीं दिया।

जाजी के लिए सारी कायनात बेजान हो गई। वह नीफ़ां की आँखों में चुप की ज़रदी देखकर जागरण की सूली चढ़ता रहा। मगर वह नीफ़ां को दर्द सहने और भूखा–प्यासा मरते कब तक देखता रहता – उसने नीफ़ां की मरुभूमि में हरियाली लाने का निश्चय कर लिया। उसने प्रण किया कि वो कली मसलने वालों को बरबाद कर देगा। उसने अपने अंदर रुके हुए लावे का ढकना उठाया और आँखों में अंगारे लेकर गुल्लां के सामने जा खड़ा हो गया परन्तु गुल्लां के सामने जलती आग का कोई बस नहीं चला। उसकी तीखी मुस्कान जाजी के सारे जिस्म को ठंडा कर गई। आँखों के अंगारे बुझ गए और दिल का दर्द आँसुओं में ढल गया। उसका रोआं–रोआं नीफ़ां के सुख की भीख माँगने लगा –

"मेरे जुर्म की सज़ा नीफ़ां को न दो। उस पर रहम करो वो तुम्हारी भी तो बेटी है और बेटी का घर माँ उजाड़ती नहीं। मुझे मुआफ़ कर दो। बख़्श दो जीरे को आज़ाद कर दो।"

जाजी को धतूरा खाते देखकर गुल्लां बहुत ख़ुश हुई। वह खिलखिला कर हँसने लगी। उसकी हँसी से जामी तरखान का मकान, मकान के अंदर लगा जामुन का पेड़, पेड़ पर बैठे पंछी – काँप उठे। जुलाहों की बस्ती में बिजली एक बार फिर कौंधी परन्तु अब की बार मकान नहीं गिरे। किसी झोंपड़ी पर गाज नहीं गिरी परन्तु गरजती बिजली की चमक में जाजी के अस्तित्व से धुआँ उठते सबने देखा।

बैडे की लंका

बैडे की लंका खड़ी है – बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं, भूंचालों और तूफानों के बावजूद भी यह कोई रावण की लंका नहीं, जिसे कोई अयोध्या का राम आ के ढहा जाए। ये तो बैडे की लंका है। दो कच्चे कमरे, एक पक्की बैठक और थोड़ा सा आंगन इस लंका की कुल दुनिया है। बैडे की लंका में जलवायु तेज़ गर्म और ज़्यादा सर्द ही रहती है। इसमें कभी मध्यम तापमान नहीं रहा। ये लंका उस महान बस्ती में खड़ी है जिसे कभी मुहल्ला उस्ताद ग़ौस मुहम्मद ख़ाँ कहते थे। पर समय के निर्दयी हाथों ने इस मुहल्ले की सारी आन-बान, स्वाभिमान और मान-सम्मान को मिटा कर रख दिया और इस मुहल्ले का नाम सिकुड़ कर केवल उस्ताद मुहल्ला रह गया।

इस लंका के दक्षिण-पश्चिम की ओर गाशाँ और जानाँ धोबिनों का कच्चा कोठा है, जिनका नाम अब ईश्वर की कृपा से दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो चुका है। बेगाँ और रोहलू धोबी के काई लगे खण्डहरों के लिए गाशाँ और जानाँ के थिरकते बदन सतूनों का काम दे रहे हैं, उत्तर-पश्चिम की ओर बिल्लो चमारिन की स्वतंत्र जागीर है जो कुछ सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करने के लिए प्रतिबद्ध है। इन सिद्धान्तों के अनुसार बिल्लो चमारिन अपना कारोबार कभी भी अपने अड़ोस-पड़ोस में नहीं चलाती। चाहे कितनी ही भुखमरी क्यों न हो, उसने हमेशा अपना कारोबाार उस्ताद मुहल्ले की सीमा से बाहर ही चलाया। गाशाँ और जानाँ की तरह नहीं कि मुहल्ले के पुराने ग़ाज़ियों और नए मुजाहिदों को एक ही पंक्ति में बिठा कर गुलाबी जश्न कराती फिरें।

पश्चिम की ओर काको सब्ज़ी वाली का कोठा है। काको

की ढलती जवानी की तरह उसके कोठे को भी दीमक लगी हुई है परन्तु अब तो काको की मोरनी भी मस्ती में नाचने लगी है और माँ की सिखलाई के दम पर आज कल वो ख़ुद अकेली उड़ानें भरती फिरती है। इसीलिए अब उन्हें किरपो चमार की ज़रूरत नहीं रही। जभी तो कुछ देर पहले माँ-बेटी ने उस बेचारे को मार-मार कर घर से निकाल दिया था। बैडे की लंका के आस-पास इस तरह के छोटे-छोटे और हमसाए, माँ जाये भी हैं पर उनकी प्रसिद्धि इतनी नहीं कि पब्लिसिटी के इस युग में उनकी बात की जाए।

बैडे की लंका की प्रसिद्धि कस्तूरी की भांति उन दिनों फैलनी शुरू हुई जब देश बंटा। सारे क्षेत्र में एक आँधी चली। लोग निर्धारित विभाजन रेखा के इधर-उधर भागने लगे। उस्ताद मुहल्ला भी ख़ाली होने लगा और ख़ाली मकानों में न जाने कहाँ-कहाँ की ईंटें और पत्थर जमा होते गए। बैडे के सभी रिश्तेदार मृत्यु से डरते और जीवन के लिए आश्रय ढूंढते उन क़ाफिलों में शामिल हो गए जो एक नए सफ़र को चल पड़े थे। नए जीवन की खोज में बैडे के माँ-बाप, बहन भाईयों ने उसे साथ चलने के लिए बड़ा ज़ोर लगाया, उसकी मिन्नतें की, पर बैडे ने अपनी लंका छोड़ने से साफ़ मना कर दिया। उसका दिल भी किसी सीता पर आया हुआ था। वह अपनी लंका में सीता को रानी बनाकर रखना चाहता था। लेकिन वह डरता था समाज की कच्ची-पक्की दीवारों से कि कहीं वो उसके कारण गिर न पड़ें। कहीं लाल ख़ून, सफ़ेद खून, सब्ज़ लहू, केसरी लहू उसके कारण बह न जाए। लेकिन उसे विश्वास था कि परिस्थितियाँ शीघ्र सुधर जाएँगी और वो सीता के घर से लेकर अपनी लंका तक के दुर्गम मार्ग को समतल बनाएगा - फिर उसका विश्वास सच्चाई बन गया। परिस्थितियाँ ठीक हो गईं। नीरस जीवन में फिर बहार आ गई परन्तु बैडे की लंका में सीता न आई। वो तो अपने कन्त की बाहों में समा गई थी। उसका सारा सौंदर्य राजा की जवानी में समा गया। वो पके आम की भांति राजा की झोली में गिर पड़ी। पका आम, शहद की

तरह मीठा, राजा सब कुछ भूल गया, एक बीवी और दो बच्चों को भी। उसे तो ताज़ा आम चूसने को मिल गया था। वो सीता को भगा कर ले गया - नई धरती, नए लोगों में - बैडे की लंका पर बिजली गिरी। दीवारें लरज़ीं, धरती फटने लगी पर लंका नहीं गिरी। बैडा मिस्र के फरऊन की तरह ग़र्क़ नहीं हुआ। वह तो बहुत सख़्त जान निकला। वह सब कुछ पी गया। भांग और शराब में घोल कर उसने एक नया जीवन ढूँढ लिया।

लंका में एक नई बहार आ गई। कुछ पुराने दोस्त, कुछ नए यार, न कोई सज्जन पुच्छन-हार। रावण की लंका में सोना ही सोना था पर बैडे की लंका में चरस, गांजा, चंडू, अफ़ीम, भांग, शराब - हर चीज़ शबाब पर थी। म्हीदू, शहीदू, शानी, ज़फ़रा, अक्का, नूरा, बशीरा......बैडे की लंका के चाँद-तारे दिन-रात. ...हाल मस्त, चाल मस्त। कड़वंज, मांग पत्ता, चुसला, ताश, पपलू, दाना, कसमई की चौकड़ियाँ जमती रहतीं, भांग और शराब के गिलास ख़ाली होते रहते। गांजा, चरस, चंडू के कश, अफ़ीम की गोलियाँ, लंका को मस्त बनाए रखतीं।

"गामी यार! ताजी की कुड़ी तो आग है आग...."

"हाँ भई! तुम ठीक कहते हो मगर तेज़ हवा के झोंके इस आग को ठंडा कर देंगे।"

"चौधरी की बहू आजकल शामे के साथ फँसी है।

"उस कबूतरी का क्या है, तू दाना डाल दे, तेरे दड़बे में आ जाएगी।"

".......शानी! तुम ने बूट डाला?"

"क़सम है रब की सबसे पहले।"

"एक बूट कम है भई, जिसने नहीं डाला, वो डाल दे, वरना मैं एक मोटी सी गाली दूँगा।"

कौन माई का लाल है जो हमें गाली दे। चीर कर न रख दूँ।"

"भाई ज़फ़रे! पाकिस्तान कहता है कि हम अफ़्ग़ानिस्तान की पसलियाँ तोड़ेंगे और अगर किसी ने बीच में कूदने की कोशिश की तो हम उसकी भी टाँगें तोड़ देंगे। भाई साहब! अब पाकिस्तान

पहले जैसा नहीं रहा। अब कोई हाथ लगा कर तो देखे।"

"ओए रहने दे यार, रहने दे कहीं सर मुंडवाते ही ओले न पडें।"

"सुना है यार! अमरीका ने चाँद की धरती पर पैर जमा लिये हैं।"

"बिल्कुल बकवास। भला ख़ुदा की ताक़त के साथ कौन लड़ सकता है।"

"लानत भेजो यार इन बेकार बातों पर। इनमें क्या रखा है तुम लोग भांग घोटो।"

बैडे की लंका के चाँद-तारे, बाहर की दुनिया की सभी बातों का गुलकन्द बनाकर खा जाते और भांग पीते रहते। इन चाँद-तारों का हिस्टरी शीट बना हुआ था और गुल्ली डंडा खेलने वाली उम्र से ही ये कभी पुलिस को आगे-आगे और कभी पीछे-पीछे चलाते फिरते। बैडे की लंका में चंडू, गांजे और चरस के बादलों में कभी-कभी गाशाँ, जानाँ, काको, देशो के नंगे साये भी लहराते हुए दिखाई पड़ते। आवाज़ें उभरती रहतीं, पत्ते चलते रहते, दाने गिरते रहते, नाल निकलती रहती - और सीधी गुल्लक में जमा हो जाती और जब गुल्लक अपना मुँह खोलती तो थानेदार से लेकर एस.पी.साहिब और सिटी जज साहिब सभी ख़ैरात पाते। ख़ैरात बिल्कुल इस्लामी ढंग से दी जाती क्योंकि मौलवी जी ने फरमाया था - "ख़ैरात एक हाथ से ऐसे दो कि तुम्हारे दूसरे हाथ को पता तक न चले" - और जब कभी इस निज़ाम का सिलसिला टूट जाता तो लंका में एक भूकम्प आ जाता। चहल-पहल ख़त्म हो जाती। खेल ख़राब हो जाते। भांग, शराब, चरस, गांजा, अफ़ीम -- बैडा, ज़फ़रा, नूरा, बशीरा, गामा -- शराबी, कबाबी, अफीमी, चरसी -- पुलिस, थप्पड़, मुक्के, शोर-शराबा, जामा तलाशी, गुल्लक, हथकड़ियाँ, थाना, अदालत, जेल और भूंचाल ख़त्म।

जेल से रिहा होने के बाद बैडे की हालत कई-कई रोज़ तक बहुत पतली रहती। उसे कई-कई दिन फाक़े लगते। मुहल्ले के

कई चौधरी हमदर्दी जताने और लंका को कौड़ियों के भाव खरीदने के लिए बैडे को जाल में फँसाने की कोशिश करते। लेकिन वो परों पर पानी नहीं पड़ने देता था। वो सब को एक ही जवाब देता।

"बैडे की लंका बिक नहीं सकती। बैडे की लंका खड़ी है और खड़ी ही रहेगी चाहे भूख-नंग बैडे को खा जाए।"

पर भूख उसे न खा सकी। वो भूख को खा जाता। एक लम्बे समय तक ऐसे ही चलता रहा। परन्तु फिर भी कहाँ तक। लोकतांत्रिक युग की लोकतंत्रीय सरकारें, नए-नए सपने दिखाती रहीं जिसकी फीकी व्याख्याएँ गुंणा के सवालों की तरह फैलती ही जातीं। और म्हीदे, शहीदे, नूरे, ज़फ़रे भाग के सवालों की भाँति सिकुड़ते ही जाते। बैडा भी दिन-ब-दिन सिकुड़ता गया। यौवन प्रौढ़ता के आगे हथियार डाल रहा था। उसके जीवन-गाड़ी के घोड़े अब ढीले पड़ने लगे थे -- जबकि पुलिस की मशीन के पुर्ज़े सख़्त होने लगे थे। अब पुलिस की नज़रों में कोई लिहाज़ नहीं रहा था। वो खा-पी कर भी समय-समय पर हमला कर देती। विभाजन की तरह सिकुड़ते-सिमटते लोग अपने शौक़ पूरे करने के लिए कोई नई कछार ढूँढने लगे। लंका में आवाज़ों का बेसुरा संगीत समाप्त हो गया। चंडू गांजे, चरस के बादल फटने लगे। गाशाँ, जानाँ, काको, देशो के साये मिटते गए और बैडा अपने अस्तित्व की काल कोठरी में गुम होता गया। वो कभी-कभी बाहर की दुनिया का भी चक्कर लगाता और बड़ा दुखी हो जाता -- वो देखता -- मुहल्ले के लगभग आधे मकानों पर सरकार ने क़ब्ज़ा कर लिया है। वो देखता -- बरसाती कीड़ों की तरह कई सच्चे-झूटे -- भाई, बेटे, मामे, चाचे, बेटियाँ, बहनें, मांसियाँ, फूफियाँ मकानों के वारिस पैदा हो गए थे जो सोने को मिट्टी के भाव बेचते थे। वह अधीर हो जाता लेकिन कुछ न कहता। उसका भी कई मकानों के साथ दूध और लहू का सम्बन्ध था मगर उसने अपनी लंका के सिवा किसी चीज़ की ओर कभी आँख उठा कर नहीं देखा। बैडे की उजड़ी हालत देखकर हनुमानों की फौज ने लंका का घेराव कर लिया था। नूरा, बशीरा, म्हीदू, शहीदू आहिस्ता-आहिस्ता घर

गृहस्थी के कंचे खेलने लग पड़े थे परन्तु बैडे ने ऐसा कोई खेल नहीं खेला। उसकी लंका उसकी दुनिया थी और वो अपनी दुनिया का बेताज बादशाह -- जो अब कई-कई रोज़ लंका से बाहर पैर नहीं रखता था। सीने में कई रोग दबाए हुए, आँखों में समाप्त न होने वाली आस का एक दीपक जलाए -- वो कमरे में टूटी-फूटी खटिया पर पड़ा रात और दिन को एक दूसरे के पीछे दौड़ते देखता रहता। उसकी हालत देखकर मुहल्ले के चौधरियों ने लंका में आना-जाना शुरू कर दिया। वो बैडे की ख़ैरियत पूछते उसे दवा-दारू के लिए पैसे देने लगते। उसके लिए दवाई लाते। वो तमाशा देखता रहता -- और फिर सबको एक ही जवाब देता -

"बैडे ने ख़ूब बदमाशी की है जी भर के जुआ खेला है। बैडे को ताश के बावन पत्तों की अच्छी तरह से पहचान है। आजकल बैडा जीवन का जुआ खेल रहा है और जीत अवश्य बैडे की होगी।

शाम को कभी-कभार बैडा अपनी लंका की छत पर बैठ कर दूर सामने सूरज को डूबते देखता रहता और सोचता -- "काश सूरज फिर उसी ओर से चढ़े और दौड़ता-दौड़ता उसकी गोद में आकर बैठ जाए। परन्तु सूरज पश्चिम से कभी नहीं उभरा। वह तो सदा पूरब से निकलता है -- और जब कभी पूरब और पश्चिम एक दूसरे से उलझने लगते हैं तो बैडा निराश हो जाता है। उसका चेहरा बेरंग हो जाता और आँखें बेनूर। मृत्यु की सी चुप्पी उसे घेर लेती। वह जो कभी मस्जिद नहीं गया था, रोज़ मस्जिद में जाता, नमाज़ उसे आती न थी, पर वो चुपचाप बैठा रहता और नमाज़ियों को सजदे करते देख कर दिल ही दिल में जाने कितने सजदे कर डालता। फिर वो अपने हाथ आकाश की तरफ फैला देता। आकाश जो आग बरसा रहा होता। आकाश जिसने प्रलय ढाई होती। और जब कभी पूरब और पश्चिम आपस में मिल बैठने का निर्णय करते तो बैडे के बेरंग चेहरे पर खुशियों के कई रंग चढ़ने लगते, आँखों में समाप्त न होने वाली आस का प्रकाश फिर चमकने लगता और मृत्यु की सी चुप्पी जीवन के मधुर

संगीत में फिर ढल जाती।

एक दिन बाग़ के पास काके की रेह्ड़ी के सामने मैं भुना हुआ माँस खा रहा था कि बैडा शराब के नशे में धुत, मेरे सामने खड़ा हो गया। मैंने उसे सलाम किया। उसने सलाम का कोई जवाब नहीं दिया। वो मुझे घूरता रहा और फिर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहने लगा,

"बेटा! तुम बैडे को नहीं जानते, तुम्हारी नानी बैडे को जानती थी। वह बैडे को बहुत चाहती थी। क्यों न चाहती, बैडा उसका बेटा था। तुम लोग पढ़-लिख कर बाबू बन गए हो मगर बैडा बाबू नहीं बना। वह शराबी, कबाबी, जुआरी, बदमाश बन गया। बैडे का यहाँ कोई नहीं। अगर कोई होता तो वह भी बाबू बनता। बैडे का यहाँ कोई बाजू नहीं इसीलिए तो सभी उसे कुचलना चाहते हैं।"

"भाई साहब! बात क्या हुई, आप इतने दुखी क्यों हैं?" मैंने पूछा।

"बेटा! बैडा दुखी नहीं होता। वह तो दुखों को पी जाने का आदी है। लेकिन मुहल्ले के इन मोमनों की करतूतें देखो। जंग में लोगों का नुक़्सान हुआ, सरकार की तरफ़ से उन्हें पैसे मिले जिनका नुक़्सान नहीं हुआ था। इन इज़्ज़तदार चौधरियों ने मुट्ठी गर्म करके उन्हें भी रक़म दिला दी। बैडे की भी आधी लंका ढह गई थी मगर उसका किसी ने नाम तक न लिया। कोई बात नहीं। बैडा अभी ज़िंदा है वह मरा नहीं। उसे किसी सहारे की ज़रूरत नहीं। बैडा ख़ुद अपनी गिरी हुई लंका फिर खड़ी करेगा।"

"मगर भाई साहब! आप अपना मकान बेच क्यों नहीं देते।"

"हरगिज़ नहीं। बैडे की लंका बिक नहीं सकती। ये लंका अमानत है। बैडा अमानत में ख़यानत नहीं कर सकता। बैडे के भाई-बहन, उनके बेटे-बेटियाँ, इस लंका के वारिस। जब वापस आएँगे तो क्या कहेंगे। यही ना कि बैडा कितना कमीना निकला। पेट की आग बुझाने के लिए लंका बेच दी। ये कभी नहीं हो सकता। बैडा लंका का रखवाला है। बैडा लंका बेच नहीं

सकता....”

भाई साहिब! आप किस दुनिया में रहते हैं। वह लोग तो अब यहाँ कभी नहीं आ सकते......।”

“बकवास बंद करो.....।” वह चिल्लाया.....उसने मेरा गिरेबान पकड़ लिया। मैंने देखा उसके शरीर का सारा लहू उसकी आँखों में उतर आया -- और फिर आँखों में उतरा हुआ लहू -- धीरे-धीरे अपनी रंगत बदलने लगा......उसने मुझे छोड़ दिया -- और चुपचाप अपनी लंका की तरफ चल पड़ा.......लेकिन मेरी क़मीज़ तारतार ......हो चुकी थी....

न्याय-अन्याय

मैं कहानी टुकड़ों में लिखना पसन्द करता हूँ। क्योंकि मैं पैबन्दकारी में माहिर हूँ। यह कहानी भी मैं टुकड़ों में बयान करने जा रहा हूँ। आप मेरा विश्वास करें कि ये टुकड़े सुन्दरता से जुड़ जाएँगे और कहानी बन जाएगी -- एक कहानी -- कई टुकड़े। छोटे-बड़े, अनावश्यक, आवश्यक -- टुकड़े -- और यह पहला टुकड़ा

एक नवयौवना -- भरे-भरे शरीर वाली। वक्षस्थल पर दो कच्ची नाशपातियाँ, अंग-प्रत्यंग में गुलाब की भीनी सुगंध। अपने अस्तित्व-वन को हरा होते देख रही यह लड़की -- एक दिन लहलहाते खेतों में हरे खीरे तोड़ने गई -- यहाँ तनिक रुक जाएँ क्योंकि इस पहले टुकड़े का दूसरा भाग अब यहाँ नहीं जुड़ेगा। इसलिए अब कहानी का दूसरा टुकड़ा पढ़िए।

एक लड़का यौवन-मद में मस्त। चिड़ियों का शिकारी एक शहमार। लड़की को खेत में जाते देखकर अपने बिल से निकला और लड़की के सामने कुण्डली मार कर खड़ा हो गया। वो कुछ बड़बड़ाया। फिर उसने गर्दन लम्बी की और लड़की को डसने के लिए मुँह खोला। लड़की ने बड़ी विनती की, शोर मचाया, अपने आपको बचाने का भरसक प्रयास किया। परन्तु साँप डंक मार गया। चिड़िया शिकार हो गई। लड़का हरे वन को नष्ट करके अपनी बड़ी हवेली में चला गया। और लड़की -- कि जिसके सांवले सौंदर्य को चार चाँद लगाने वाली नाक की नथनी उतर चुकी थी। कच्ची नाशपातियों पर स्थान-स्थान पर नख-दंत गड़े हुए थे और मोटी सुरमई आँखें, धुंधला कर पलकों में समा गई थीं -- हाँ! वह लड़की -- नोचे हुए शरीर को समेटे, आकाश का बोझ उठाए -- बोझिल क़दमों से रोती-बिलखती अपनी झोंपड़ी में चली आई --

लड़की को उजड़ा देखकर एक कोहराम मचा। झोंपड़ी में भूकम्प आया, मन-मस्तिष्क को धक्का लगा। झोंपड़ी का भूकम्प बस्ती में फैल गया -- बस्ती पीड़ा से कराहने लगी। फिर पीड़ा के दरिया में बाढ़ आ गई। बस्ती वाले अपना मानसिक संतुलन खो बैठे। वह हवेली वाले लड़के के विरुद्ध ज़ोरदार प्रदर्शन करने लगे। उन्होंने थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई। बात ऊँची कुर्सियों तक पहुँची, बस्ती में पुलिस आई, लड़की का बयान लिया गया। पुलिस ने उसकी तार-तार क़मीज़, फटी अंगिया, खून में रंगी सलवार अपने क़ब्ज़े में ले ली। और लड़की की नोची हुई काया निरीक्षण हेतु भेज दी गई। लड़के को गिरफ़्तार कर लिया गया -- गवाहों के बयान लिए गए, सबूत पूरे किए गए -- और भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अन्तर्गत चालान सैशन कोर्ट में पेश कर दिया गया --

और यह कहानी का तीसरा और महत्वपूर्ण टुकड़ा -- फ़ारूक़, सैशन कोर्ट का न्यायाधीश -- न्यायालय की कुर्सी पर बैठा इंसाफ का तराज़ू हाथ में लिए इंसाफ तोल रहा है। उसका दावा है कि उसने कुर्सी पर बैठे हुए कभी कम या अधिक तोल कर अपने अन्तस को लज्जित नहीं होने दिया। अपने आप को न्यायाधीश समझने वाला ये जज न्याय देने के लिए शहर में अति लोकप्रिय है। पाँच वक़्त का नमाज़ी, पाक-पवित्र, परहेज़गार, कम बोलने वाला, न्याय व सच्चाई की मूर्ति -- फ़ारूक़ -- चालान की मिस्ल हाथ में लिए पन्ने पलट रहा है -- फर्द जुर्म लगाई जाती है। अदालत का कमरा तमाशाईयों से भरा है। भूकम्प से प्रभावित झोंपड़ियों वाले, मसली-कुचली लड़की, लड़के के परिवार वाले, उनके दोस्त-मित्र, शहर के सम्माननीय व्यक्ति, वकील, पत्रकार, छायाकार, ऊँची सोसाइटी के परिचायक -- और सिपाहियों की पकड़ में अन्दर प्रविष्ट होने वाला लड़का, चिंतित, उतरा चेहरा, झुकी गर्दन, लज्जा की मूरत -- जज ने मुकद्दमे की कारवाई शुरू करने की घोषणा की। कमरे में सन्नाटा छा गया। वकील-ए-इस्तग़ासा ने बहस की शुरूआत की और लड़के के अपराध का ब्यौरा पढ़कर सुनाया। अपने बयान के प्रमाण में सरकारी वकील ने

न्यायालय को लड़की का पीड़ित शरीर दिखाया। खून से भरी सलवार, फटी क़मीज़ और टूटी अंगिया, गवाहों के साक्ष्य और डाक्टरी निरीक्षण की रिपोर्ट -- अदालत में प्रस्तुत की -- और अपनी कुर्सी पर जा बैठा।

जज ने आरोपी की ओर देखकर रौबदार आवाज़ में कहा,

आरोपी खड़ा होकर अपना नाम, बाप का नाम, उम्र, पेशे और रिहायश के बारे में अदालत के सवालों का जवाब दे।

यह हुक्म सुनकर आरोपी उठा, पुलिस के दो सिपाहियों ने उसको उस के कटघरे में पहुँचाया।

"मेरा नाम आफताब आलम ख़ाँ वल्द ख़ान बहादुर शान मुहम्मद ख़ाँ है। मेरी उम्र चौबीस वर्ष की है हम मुहल्ला नवाबाँ में रहते हैं और तिजारत हमारा पेशा है।"

जज ने कुछ मिनट तक मुक़द्दमे की मिस्ल का निरीक्षण किया और फिर आरोपी की ओर देखते हुए बोला,

"तुम पर आरोप है कि तुमने मरियम बीबी बेटी फ़क़ीर मुहम्मद उर्फ फक़ीरू निवासी बस्ती शेख़ाँ, उम्र 16 वर्ष से बलात्कार किया है। वकील-ए-इस्तग़ासा की ओर से पेश किए गए गवाहों के बयान, डाक्टरी रिपोर्ट और घटनास्थल से लिए गए अन्य सबूतों से साफ़ है कि तुमने मरियम बीबी पर आपराधिक आक्रमण करके उसका शील-भंग किया है। यह अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अन्तर्गत दण्डनीय है और इसमें तुम्हें दस वर्ष तक कैद-ए-बामुशक्कत की सज़ा हो सकती है। क्या तुम स्वीकार करते हो कि तुमने ये घिनौना अपराध किया है?"

"नहीं! मैंने कोई अपराध नहीं किया है।"

न्यायालय के कमरे में चहमगोईयाँ होने लगती हैं। जज मेज़ पर ज़ोर से हाथ मारता है और कहता है,

"ख़ामोश! ख़ामोश!" -- लोग चुप हो जाते हैं -- जज फिर सम्बोधित होता है --

"क्या तुम अपनी सफ़ाई में कुछ कहना चाहते हो?"

आफ़ताब का वकील अपनी कुर्सी से उठता है और जज

से कहता है,

"जनाब-ए-आला! मेरा मुवक्किल निर्दोष है। उस पर मिथ्या आरोप लगाया गया है। हम अपनी सफ़ाई पेश करना चाहते हैं और आप से न्याय के इच्छुक हैं।

न्यायालय का समय समाप्त हुआ चाहता है, मुक़द्दमा अगली पेशी तक स्थगित कर दिया गया है। इस में इस्तग़ासा के गवाह पेश होंगे। उनकी गवाहियां ली जाएँगी। वकील-ए-सफ़ाई उन पर जिरह करेगा -- और अगली पेशी बहुत दूर है, तीसरे महीने की आठवीं तारीख़ -- और ख़ान बहादुर शान मुहम्मद ख़ाँ ने अपने बेटे की ज़मानत करा ली है। वह वापिस हवेली में आ गया है।

इस बीच ख़ान बहादुर, बस्ती की रंग-बिरंगी भेड़-बकरियों में से कुछ काली भेड़ें ख़रीदने के प्रयास में लग गए हैं ताकि काली भेड़ों के माध्यम से मरियम बीबी और उसके बाप फ़कीरू के गले में धन-माला डालकर उनका मुँह बंद करा दिया जाए, क्योंकि ख़ान बहादुर की नज़र में मरियम की हैसियत किसी देहाती नोची या शहर के मेहंदी बाज़ार की पतरिया से अधिक नहीं है। वो अपने सुपुत्र के हाथों उसकी नथ उतराई की कीमत पाँच हज़ार तक देने को तैयार हैं। वो समझते हैं कि पाँच हज़ार रुपए झोंपड़ी का नक़्शा बदल देंगे। मरियम आसानी से बेगम बन जाएगी -- लेकिन मरियम के बाप ने धन की ऊँची सीढ़ी पर लटके ख़ान बहादुर के मुँह पर घृणा से थूकते हुए कह दिया है कि वो लोग लड़कियों की इज़्ज़त का सौदा नहीं किया करते -- ख़ान बहादुर के सभी प्रयास असफल होते हैं -- और मुक़द्दमे की तारीख़ आन पहुँची है।

आवाज़ लगती है -- "सरकार बनाम आफ़ताब आलम ख़ाँ -- हाज़िर है।"

दोनों पार्टियाँ अदालत में हाज़िर होती हैं -- कमरा खचाखच भरा है -- सरकारी वकील पहले मरियम फिर अन्य गवाहों को पेश करता है। सभी लगभग वही बयान जज के सामने

देते हैं जो वो लिखित रूप में दे चुके हैं -- मरियम अपने साथ बीती घटना को दोहराते हुए -- पहले तो लज्जाती है, हिचकिचाती है फिर रो पड़ती है। आँसू और भावनाएँ एकरूप हो जाती हैं। अन्दर की पीड़ा चेहरे पर उभर आती है। काँपती आवाज़ ऊँची होती है।

"जज साहिब! ये किस बात का बदला लिया इस बदमाश ने मुझसे, यहाँ कब तक औरत की इज़्ज़त लुटती रहेगी।"

रुंधे गले से एक आवाज़ उभरती है। ये मरियम का बाप फ़क़ीरू है जो जज से कह रहा है,

"मेरी इज़्ज़त की सफ़ेद चादर पर इस लुटेरे ने धब्बा लगाया है, जज साहिब! इस चादर को धो दें, मेरी इज़्ज़त को बहाल कर दें। आरोपी को सख़्त सज़ा दें। हमारे साथ इन्साफ़ करें। अल्लाह आपका इक़बाल बुलन्द रखेगा" -- करमदीन उर्फ़ करमू और हरीचन्द उर्फ़ हरिया ने अपने बयानों में कहा है कि उन्होंने छोटे ख़ाँ साहिब को अपनी आँखों से खेत से निकलते देखा है, इनके बाल बिखरे हुए थे। साँस फूला हुआ था, पतलून को गीली मिट्टी लगी हुई थी। गिरेबान फटा हुआ। बटन टूटे हुए थे और वह हवेली की तरफ जा रहे थे -- मरियम ने उन्हें रोते-बिलखते बताया था कि हवेली वालों के लड़के ने उसकी इज़्ज़त लूटी है। उसके कपड़े फटे हुए थे। ओढ़नी छलनी थी -- बाकी गवाहों ने भी पहले से लिखवाए बयानों को दोहराया।

वकील-ए-सफ़ाई ने मरियम और इस्तग़ासा के गवाहों से जिरह करते हुए बहुत से सवाल किए,

"मरियम बीबी! क्या तुम पूरे विश्वास के साथ कह रही हो कि तुम से मुँह काला करने वाला यही शख़्स था, जो कटघरे में खड़ा है और जिसका नाम आफ़ताब आलम ख़ान है। या वो कोई और था?"

"जी! यही कमीना था। इसी कुत्ते ने मेरे शरीर को नोचा और मेरी इज़्ज़त लूटी।"

"क्या उस वक़्त वहाँ कोई और भी था या तुम दोनों

अकेले थे?"

"जी मैं अकेली खेत में गई थी कि ये कलमुहां मुझ पर झपट पड़ा। उस वक्त वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं था। मैं बहुत चिल्लाई, रोई, पीटी, लेकिन मेरी आवाज़ किसी ने नहीं सुनी।"

"इसका मतलब यह हुआ कि घटना का गवाह कोई नहीं है फिर तुम किस तरह साबित कर सकती हो कि आफ़ताब आलम ने ही तुम्हारी इज़्ज़त लूटी है?" -- सरकारी वकील बीच में बोल पड़ता है।

"मेरा फ़ाज़िल दोस्त पीड़िता को व्यर्थ के सवालों में उलझा रहा है। जज साहिब! कोई भी लड़की, चाहे वो कुँवारी हो या शादीशुदा, जानबूझ कर बदनामी का कलंक अपने माथे पर नहीं लगा सकती क्या मरियम का नोचा हुआ शरीर, डाक्टरी रिपोर्ट, और आरोपी का पापी चेहरा प्रमाण के लिए पर्याप्त नहीं।" वकील-ए-सफ़ाई ने गवाहों से भी कई उलटे-सीधे सवाल पूछे। लेकिन सभी अपने अपने बयानों पर अड़े रहे -- उसके बाद वकील-ए-सफ़ाई ने अपने गवाहों को अदालत में पेश किया, जिनका कहना था कि घटना के दिन छोटे ख़ान साहिब पूरा दिन फैक्ट्री में थे। सरकारी वकील ने अपनी जिरह में आरोपी के गवाहों की पोल खोल कर रख दी। और अदालत का समय समाप्त हो गया -- गवाहों के बयान पूरे हो चुके थे, इसलिए मुकद्दमे के फैसले की तारीख़ चार दिन बाद निश्चित की गई।

मस्जिदों, ख़ानक़ाहों, मंदिरों, गुरुद्वारों और कलीसाओं के गुंबदों और मीनारों वाला यह शहर जिसमें बस्ती शेख़ाँ की झोंपड़ियाँ भी हैं, ख़ान बहादुरों और राय बहादुरों की हवेलियाँ भी हैं -- और एक पहाड़ी के आँचल में शाह बलूत के पेड़ों के झुंड में खड़ा जज फ़ारूक़ का बंगला भी है -- बंगले के लॉन में कुर्सी पर बैठा जज -- मरियम के मुक़द्दमे के बारे में सोच रहा है, जज को विश्वास है कि आफ़ताब आलम अपराधी है। उसने मासूम मरियम की इज़्ज़त लूटी है। जज ने फैसला कर लिया है कि वो पहले की भांति इस बार भी अदालत का मान बनाए रखेगा और

आरोपी आफ़ताब आलम को पीड़ादायक सज़ा देगा -- बाहर घण्टी बजती है। नौकर दरवाज़ा खोलता है। अन्दर आने वाले ड्राईंग रूम में बिठा दिए जाते हैं। नौकर लॉन में जज फ़ारूक़ को सूचित करता है कि उनसे तीन व्यक्ति मिलने के लिए आए हैं। जज उठता है और ड्राईंग रूम में आता है। आरोपी का बाप ख़ान बहादुर शान मुहम्मद ख़ान, सिटीज़न कौंसिल के चेयरमैन और क़ानूनसाज़ असैम्बली के माननीय सदस्य राय बहादुर दौलत राम और प्रसिद्ध सोशल वर्कर कामरेड अजीत सिंह जज से उठ कर हाथ मिलाते हैं। फ़ारूक़ उनके आने का कारण जानता है, फिर भी पूछता है, "कहिए! आपने कैसे कष्ट किया?" जवाब में राय बहादुर दौलत राम और कामरेड अजीत सिंह ख़ान बहादुर के लड़के की सिफ़ारिश करते हैं और उसे बा-इज़्ज़त बरी करने के लिए कहते हैं। क्योंकि यह ख़ान बहादुर की इज़्ज़त का सवाल है। इनके पुरखों की इज़्ज़त का सवाल, जिसके मिट्टी में मिलने की आशंका हो गई है।

"इस में सिफ़ारिश की कोई ज़रूरत नहीं। मैं पूरा इन्साफ़ करूँगा" -- राय बहादुर जज को ख़रीदने की कोशिश करता है, परन्तु व्यर्थ। कामरेड सिंह जज को धमकी देता है लेकिन बेकार। जज उन्हें चले जाने के लिए कह देता है -- बात ऊँची कुर्सियों तक पहुँचती है। जज पर दबाव बढ़ता जाता है। नेता, मंत्री, अधिकारी सिफ़ारिश करते हैं, गुण्डे बदमाश धमकियाँ देते हैं -- टेलिफोन की घंटियों का शोर बढ़ने लगता है -- आवाज़ें, बाढ़ की लहरों की तरह आक्रमणकारी होती जाती हैं।

जज उलझनों के जाल से बाहर निकलने के लिए नमाज़ पढ़ता है। कुरआन-ए-करीम की तिलावत करता है लेकिन बोझ हल्का नहीं होता। आत्मा पर छाए हुए घने बादल पिघलने का नाम नहीं लेते और मन की नदी में बहुत शोर है।

आज मुक़द्दमे का फैसला है। वकील-ए-इस्तग़ासा ने अच्छे ढंग से केस पेश किया है, तर्क मज़बूत हैं और फिर जज फ़ारूक़ की इन्साफ़ परवरी -- उसे विश्वास है कि फैसला उनके पक्ष में

होगा और आरोपी आफताब आलम को सज़ा हो जाएगी। सरकारी वकील ने मरियम, फक़ीरू, करमू और बस्ती वालों को विश्वास दिलाया है कि आफ़ताब आलम को सख़्त सज़ा मिलेगी। क्योंकि सारा केस उसके खिलाफ़ हो गया है -- अदालत के कमरे में तिल धरने को स्थान नहीं है, कमरे में शोर मचा है -- लेकिन जज के अन्दर प्रवेश करते और न्याय की कुर्सी पर बैठते ही शोर एकदम थम जाता है -- जज मुक़द्दमे का फ़ैसला सुनाने लगता है, उसकी आँखें मेज़ पर पड़े काग़ज़ पर झुक जाती हैं --

"डाक्टरी रिपोर्ट के मुताबिक़ ये साबित होता है कि मरियम बीबी बेटी फ़क़ीर मुहम्मद उर्फ़ फ़क़ीरू की इज़्ज़त लूटी गई है। मरियम और अन्य गवाहों के बयानों के अनुसार ये भी सच है कि मरियम की इज़्ज़त खेत में लूटी गई है लेकिन इस्तग़ासा ये प्रमाणित नहीं कर सका कि मरियम से बलात्कार आफ़ताब आलम ने किया है। क्योंकि घटनास्थल का कोई प्रत्यक्ष साक्षी नहीं है। लिहाज़ा अदालत आफ़ताब आलम को बाइज़्ज़त बरी करती है।"

फैसला सुनाने के बाद जज अपनी झुकी नज़रों को कोट की जेब में डाल कर कुर्सी से उठने लगता है।

पाठकगण! ज़रा रुकिए -- यहाँ कहानी ख़त्म नहीं होती, बल्कि यहाँ से कहानी का एक और टुकड़ा शुरु होता है जो कहानी को कलाईमेक्स पर ले जाता है और कहानी में जान पैदा करता है।

एक आवाज़ अदालत के कमरे में गूंजती है और बिखर जाती है --

"ठहरिए जज साहिब -- ठहरिए जज साहिब -- ठहरिए जज साहिब --"

सभी सकते में आ जाते हैं -- फिर मरियम की बलात्करित काया की पसली से एक नन्हे साए का जन्म होता है जो देखते-देखते फैल कर पूरी औरत के रूप में ढल जाता है। उसकी आँखें जज फ़ारूक़ के चेहरे पर अटक जाती हैं। ज़बान तेज़ और नुकीले दाँतों में जकड़ी जाती है -- लेकिन होंठ सुलगती आग का

धुआँ छोड़ते हैं और धुआँ आवाज़ का बहरूप लिए हुए है।

"ठहरिए जज साहिब! आप का नाम फ़ारूक़ है और मेरा -- जज साहिब मुझे पहचानिए मेरा नाम सिर्फ मरियम नहीं है। सीता है, द्रौपदी है, हर युग में मेरी इ़ज़्ज़त पर हमला हुआ है। मुझे रुसवा किया गया है मगर तब इन्साफ का तराजू कम और ज़्यादा नहीं तोलता था। तब न्याय -- बिक्रमाजीत था -- नौशेरवाँ था -- उमर फ़ारूक़ था -- लेकिन आज इन्साफ के तराजू में ज़ंग लग चुका है। आज वो सभी चेहरे मिट चुके हैं -- इतिहास ने कई करवटें बदली हैं -- और नया युग शुरू हुआ है -- पर मुझे दो सुन्दर और सम्मानजनक चेहरे अभी तक याद हैं। उनमें से सिर्फ एक चेहरे की छवि आपको दिखा रही हूँ -- ये बीते कल की बात है फ़ारूक़-ए-आज़म, न्याय की कुर्सी पर बैठा एक जज -- और मैं तब मरियम नहीं थी, सीता भी नहीं, द्रौपदी भी नहीं बल्कि एक यहूदी लड़की थी -- उन दिनों भी मेरी इ़ज़्ज़त लूटी गई थी। मुझसे बलात्कार किया गया था। याद है ना आपको -- मेरे हरे वन को नष्ट किया गया था -- और तबाह करने वाला कोई और नहीं था। हज़रत उमर का अपना ख़ून था उनका बेटा -- अबू शहमा, -- मेरे पास तब भी कोई प्रमाण नहीं था, घटनास्थल का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था। मगर मेरा बयान था। एक औरत का बयान -- जो कभी खुद को रुसवाई की अंधी खाईयों में ग़र्क़ नहीं कर सकती -- और फ़ारूक़-ए-आज़म ने मेरे बयान की पुष्टि करके जो ऐतिहासिक फ़ैसला सुनाया था, वो इन्सानी जीवन के लिए प्रकाश-स्तम्भ बनना चाहिए था लेकिन अफ़सोस -- वह फैसला तारीख़ की किताबों में दफ़्न कर दिया गया -- उन्होंने अपने बेटे को -- नहीं नहीं! -- एक अपराधी को सौ कोड़ों की सज़ा दी थी। अपराधी अभी साठ कोड़े भी न खा पाया था कि मर गया। हुक्म हुआ कि बाक़ी कोड़े मुजरिम की क़ब्र पर लगाए जाएँ।

सुलगते धुएँ की रहस्यमयी आवाज़ से अदालत के कमरे में एक गहरा शिगाफ़ पड़ गया और मरियम की पसली से जन्म लेने वाला साया मरियम को साथ लेकर उसमें समा गया -- और जज

फ़ारूक़ -- एक दीवालिए की भांति कुर्सी से उठा और रंगीन मीनारों वाले शहर में गुम हो गया।

पाठकगण! आप मौन क्यों हो गए। बताइए ना -- इन टुकड़ों की पैबन्दकारी से कहानी बनती है -- या नहीं?

✠ ✠ ● ✠ ✠

सतीसर का सूर्य

वह सूर्यवंशी सलर सेन का पुत्र था। सदरा और सालार का सूर्य। उसने जन्म लेते ही जगत की नश्वरता को देखकर माँ का दूध पीने से इन्कार कर दिया था परन्तु ललेश्वरी की गोद में बैठ कर उसे शान्ति मिली थी। ललेश्वरी उसकी धाय माँ थी जिसने उसे अपना दूध पिलाया था और उसमें प्रेम एवं मानवता की मिश्री घोल कर पिलाई थी। वह एक ऐसा चोर था जिसको उसके भाईयों ने चोरी करना सिखाना चाहा परन्तु वह जगत की सभी मूल्यवान वस्तुओं को त्याग कर प्रेम का आटा चोरी करके ले गया और अध्यात्म की छलनी में छान कर विवेक के तन्दूर में रोटियाँ पकाने लगा और लोगों को खिलाने लगा। वह एक ऐसा स्वच्छंद विचरण करने वाला था जिसकी खरमस्तियों से तंग आकर माँ सदरा ने उसे विवाह की बेड़ियों में जकड़ दिया था परन्तु वह बेड़ियाँ तोड़कर और सब कुछ त्याग कर ईश्वरीय ज्ञान की खोज में एक गुफा के भीतर जा बैठा और बारह वर्षों तक कर्मयोग के चर्खे पर कर्मों का सूत कातता रहा। यौवन नार उसे अपनी सुन्दरता का गुलकन्द खिलाने तथा वासना के जाल में फंसाने के लिए उस गुफा में गई तो थी परन्तु फ़क़ीरी-चोगा पहन कर बाहर निकली।

उसका नाम नूर था। वह प्रेम और अनुभूति की चटाई पर बैठ कर लोगों के मन में प्रकाश की किरणें पहुँचाता था। उसकी प्रेम दृष्टि दोष नहीं देखती थी। वह प्रेम का बीज मंत्र पढ़ता रहता और लोगों से कहता कि ईश्वर ही सारी सृष्टि का रचयिता तथा अधिपति है। इसलिए ईश्वर को अपनी निजी सम्पत्ति न बनाओ और ईश्वर के नाम पर धरती पर फ़साद न करो। उसका कहना था कि अपने भीतर पवित्रता और नेकी का पौधा उगाओ ताकि

वह प्रेम सागर रूपी मन को तरंगित करे और सच्चे ईश्वर का साक्षात्कार कराए। वह कहता कि अपने मन आंगन को प्रेम और नेकी के झाड़ू से बुहारते रहो और मन के मक्के एवं शिवाले को ज़मज़म और गंगाजल से धोते रहो ताकि घृणा तथा बुराई तुमसे कोसों दूर रहे। वह समझाता कि अपने मन को नियन्त्रण में रखो और कामनाओं के श्वान को मान-सम्मान तथा स्वाभिमान बेच कर मत पालो अपितु उसे भूखा मार दो। वह बंदा ईश्वर का था और सेवक सबका था। वह सूफी दरवेश था, जो मस्जिद में बैठकर शँख बजाता और मन्दिर में बैठकर नमाज़ अदा करता। वह अपनी माँ ललेश्वरी की गोद में बैठकर अनुभूति के खेल खेलता रहता। दोनों ने मिलकर अपने वाखों और श्लोकों से अमन, शान्ति, एकता और मैत्रीभाव की ज्योति जगाई थी। वह लोगों के मन पर राज करता था और लोग उसे प्रेम से नुंद ऋषि कहते थे क्योंकि वह रांझा सबका सांझा था।

उसका मान-सम्मान, आस्था तथा प्रसिद्धि वहाँ के असुर को कांटे की भांति चुभती थी। वह उससे घृणा करता था। शत्रुता एवं द्वेष की अग्नि ने उस असुर को जलाकर रख दिया था। वह नूर का प्रकाश मिटाना चाहता था। वह गंगाजल और ज़मज़म को लड़ाना चाहता था। उसका नाम हाकिम था। धरती पर राज करने वाला हाकिम। प्रजा को गुलाम बनाने वाला हाकिम। अपने साम्राज्य के मद में चूर रहने वाला हाकिम। उन दोनों का प्रायः आमना-सामना होता। एक ओर वैभव का गर्व था और दूसरी ओर दरिद्रता और संतोष था। नूर कहता था कि हाकिम लोगों के दिलों पर शासन करे, उनके शरीरों पर नहीं। वह हाकिम को शिक्षा देता कि मानव का शिकार अनुग्रह के बाण से करे। प्रेम और दया से उनका हृदय जीते। अत्याचार से नहीं, क्योंकि अत्याचार एक रोग है और दया इस रोग का निदान है। नूर उसे नसीहत करता कि वह अपनी आत्मकथा में से "मैं" शब्द बाहर निकाल दे अन्यथा द्वेष तथा घृणा की अग्नि में जल कर भस्म हो जाएगा। वह कहता कि यह "मैं" पतन और विनाश लाता है। शक्कर जैसे मीठे जीवन में

विष घोल देता है। मनुष्य को तेज़ाब में नहलाता है। यह शब्द अस्तित्व और आनन्द का शत्रु है परन्तु उस असुर ने नूर की एक न सुनी। उसका कहना था कि उसकी आत्मकथा में सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र "मैं" ही है। उसे अपने भीतर से कैसे बाहर निकाला जा सकता है। हाकिम ने नूर को सुक़रात तथा मन्सूर समझा और उसकी बातों को मिथ्या सिद्ध करने लगा। वह उसके प्रवचन सुन-सुनकर अधीर हो गया और उसने नूर को पाठ पढ़ाने का निर्णय लिया। वह उसके साथ युद्ध करके उसका अस्तित्व मिटाना चाहता था। उसे सूली पर लटकाना चाहता था। भला! हाकिम और उसका साम्राज्य अपने विद्रोही को कैसे सहन कर सकता था। हाकिम ने अपनी आपबीती के महत्त्वपूर्ण पात्र "मैं" को अपने साथ मिलाया और एक सैन्य-दल तैयार किया और रणभूमि में उसे ललकारा। हाकिम के साथ अभिमान, क्रोध, घृणा, वैरभाव, आतंक तथा शक्ति जैसे शस्त्र थे और नूर के साथ दरिद्रता, साधुता, प्रेमभाव, प्रीत, सन्मार्ग एवं अनुभूति जैसे संगी साथी थे। हाकिम के पास अहंकार की कटार थी और नूर के पास बुद्धि तथा सूझबूझ की तलवार थी। वह अध्यात्म का झण्डा लेकर आसुरी शक्तियों की ओर बढ़ा। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। फिर लोगों ने देखा कि हाकिम के सारे शस्त्र टूट गए और दरिद्रता युद्ध में विजयी हुई। "मैं" का अहंकार चकनाचूर हो गया और क्रोध टूट गया परन्तु हाकिम ने पराजय नहीं मानी। उसका कहना था कि सरदारी कभी पराजित नहीं हो सकती। साम्राज्य कभी समाप्त नहीं हो सकता। उसने अपनी चाल बदली। राजनीति की ढाल बदली और धीरे-धीरे पुनः अपनी सेना तैयार करने लगा। उसने अधर्मी धर्मात्माओं और कट्टर मुल्लाओं को अपने साथ मिलाया। उनके समक्ष धन-सम्पत्ति का ढेर लगाया और उनके हाथों में धर्म-कड़ियां दे दीं ताकि निर्दोष बच्चों के मन-मस्तिष्कों को बंदी बनाया जा सके। उनके भीतर जुनून और कट्टरवाद की पौध लगाई जाए। शब्दों के सम्मोहन से उन्हें अज्ञानी बनाया जाए। अमन, शांति और मैत्रीभाव जैसे शब्दों को व्यर्थ बनाया जाए। धीरे-धीरे

जुनून, संकीर्णता और कट्टरवाद की पौध ने अपनी जड़ें पकड़ लीं। धार्मिक जुनून फैलने लगा। काम, क्रोध तथा लोभ अपने आकार बढ़ाने लगे। आँधी चलने लगी। सुनामी लहरें उठनें लगीं। धरती काँपने लगी। हर ओर कंटीली झाड़ियाँ उगने लगीं। धर्म तथा राजनीति ने मन में घृणा का विष भर दिया। दरिद्रता एवं साधुता अन्तिम श्वास लेने लगी। साधु-सन्तों के मठ उजड़ने लगे। लोग "अल्लाह-ईश्वर तेरो नाम" को छोड़ कर बारूद की अर्चना करने लगे। वेद, ग्रन्थ, पुराण और सामी पुस्तकें दफ़्न कर दी गईं। नए ग्रन्थ लिखे जाने लगे। जिहाद और फसाद का दर्शन परवान चढ़ने लगा। घरों, सड़कों और खेतों में बम बोए गए। छल और धोखे की दुकानें मन्दिरों और मस्जिदों में सजाई गईं। हाकिम प्रसन्न था। फिर उसने पूरी तैयारी के साथ युद्ध का शंखनाद किया। युद्धभूमि रक्त-रंजित हो गई। प्रेम, एकता, अमन, शान्ति, अनुभूति और अध्यात्म सब पराजित हो गए। साधुता, दरिद्रता और संतोष की गर्दन मरोड़ दी गई। शालीनता, सत्य तथा वरदान की अर्थी निकाल दी गई। लोग साम्राज्य की शक्ति के समक्ष नतमस्तक हो गए। जीवन के पैरों में छाले पड़ गए। हताशा एवं आतंक ने मानवता का चोला तार-तार कर दिया। हर ओर जुनूनी घास के घने जंगल उग गए। सौहार्द तथा प्रेम के सम्बन्ध अग्नि एवं लहू में भस्म हो गए। समय ऐसा आया कि भाई, भाई से डरने लगा। संदेह तथा घृणा ने भाईयों में रेखा खींच दी। सत्य और प्रेम की पूंजी, धर्म और राजनीति के मर्तबानों में बंद कर दी गईं। फिर मान-सम्मान और शालीनता की पगड़ी भी धूल में मिल गई। स्त्रियाँ चौराहों पर निर्वस्त्र की गईं। लोगों ने गुंडों की सरदारी देखी। शालीनों की विवशता देखी। ज्ञानी एवं बुद्धिमान घास के भाव तोले गए। सुष्टि का विनाश कुछ भय तथा खौफ़ ने किया और कुछ क्लाशिनकोफ़ ने। धरती बाँझ हो गई। वहशी जानवरों ने स्त्री की कोख को लूट का माल समझा। बच्चेदानियाँ लहूलहान हो गईं। उन्होंने बच्चे पालने छोड़ दिए। बच्चों के झूले टूट गए। लोरियाँ जम गईं। आँसू सूख गए। इच्छाओं के घरौंदे टूट गए।

शक्ति और आतंक ने इतने दुःख दिए कि घरों की छतों ने किसी को छाया नहीं दी। आँगन ख़ाली हो गए। धर्म और राजनीति का वह दमन-चक्र चला कि प्रकृति लज्जित हो गई। सारी प्रार्थनाएँ अन्धी हो गईं। बारूद ने जीवन तथा मृत्यु के मध्य की दूरी मिटा दी। व्यभिचार और अनाचार सामान्य बात हो गई। निर्लज्जता सड़कों पर नृत्य करने लगी। लोग घरों को छोड़ कर चले गए। उन घरों को जहाँ उनका अतीत रहता था। घरों ने अपने निवासियों को बहुत रोका कि वह अपने अतीत को छोड़ कर न जाएँ। उस अतीत को जिस पर उन्हें गर्व था। जो उनका परिचायक था। परन्तु वह मृत्यु तथा आतंक को अपनी आँखों के समक्ष नृत्य करते देखकर भाग गए, क़ाफ़िलों की सूरत में। उन्होंने पराई धरती पर डेरे जमा लिए। उनकी पहचान पराई सभ्यता में गुम होने लगी। सामाजिक और साँस्कृतिक क्रान्ति ऐसे ही आती है। वर्षा की बूंदें झरने पी लेते हैं। झरने नदियों में मिल जाते हैं। नदियाँ दरियाओं में और दरिया अपने आपको समुद्र के हवाले कर देते हैं। यही प्रकृति का विधान है। उनके जाने के पश्चात् शक्ति और आतंक का जुनून अधिक गहन हो गया। लोग धार्मिक जुनून और आतंकवाद के दास बन गए। बुद्धि के अन्धों ने एक दूसरे के गले काटे। पापी केवल पाप के हुए न माई के न बाप के हुए। घरों में प्रतिदिन शोक आसन बिछने लगे। बारूद के खेल में मकान जले। मन्दिर, मस्जिद और ख़ानक़ाहें जलीं। सन्त-फ़क़ीरों के हुजरे जले और एक दिन इस बारूद के खेल में नुन्द ऋषि का मज़ार भी जल गया। उसका आबाद चरार भी जल गया। आग और धुएँ से सारी धरती काली हो गई। ख़ैर-ओ-बरकत सवाली हो गई। चुप के सन्नाटे ने सतीसर को घेर लिया। ख़ुशियाँ, भाग्य रूठ गए। दया के दरिया सूख गए। दिन शोक में डूब गए और रातें पीड़ा के प्रकोप में। हर घर का शोक हर हृदय का रोग बन गया। शक्ति और आतंक ने अपनी भूख मिटाई। लहू के प्यालों ने राक्षसों की प्यास बुझाई।

फिर ऐसा हुआ कि दो हयूले मज़ार के काले धूएँ से बाहर निकले और देखते ही देखते अदृश्य हो गए। लोगों की आँखें उन

ह्यूलों को अदृश्य होते देखकर पत्थर हो गईं। ये दृश्य देखकर साधु-सन्तों की समाधियाँ चीख़ उठीं। सूफ़ी दरवेशों की क़ब्रें काँपीं। ऐसे लगा जैसे नुन्द ऋषि अपनी धाय-माँ को साथ लेकर इस अभागिन धरती को छोड़ कर कहीं चला गया है। शायद अपने पुरखों के देश में। सूफ़ी-सन्तों की दुनिया में हलचल मच गई। सन्त अपने मठों से और सूफ़ी, दरवेश खण्डर हुई ख़ानक़ाहों से बाहर निकल आए। उन्होंने मरगन के मैदान में सभा की और निर्णय लिया कि माँ-बेटे को वापिस लाया जाए ताकि अत्याचार के विरुद्ध मिलकर लड़ाई लड़ी जाए और सतीसर को आज़ाद कराया जाए। शक्ति और आतंक के प्रकोप से, जुनून और आतंकवाद की लानत से। निर्दोष बच्चों को जुनूनी मुल्लाओं और कट्टरपंथी धर्मात्माओं की क़ैद से छुड़ाया जाए। उनके अन्दर की गन्दगी को धोया जाए। उनको दोबारा आध्यात्मिक पाठशालाओं में लाया जाए और गुड़ और शक्कर का शरबत पिलाकर उनके दिलों और दिमाग़ों से घृणा का विष बाहर निकाला जाए। उन्हें बताया जाए कि प्रेम ही मानवता है। प्रेम केवल प्रेम को जन्म देता है जबकि घृणा आसुरी वृत्ति को जन्म देती है। उन्हें समझाया जाए कि तर्कों से ही रास्ता निकलता है। भ्रमित बच्चों को अपनी सभ्यता, अपनी धरोहर, अपनी संस्कृति के विषय में बताया जाए। उनके मस्तिष्क में यह बात डाली जाए कि चिनारों और देवदारों को काटकर छाँव नहीं मिल सकती। ऋषि-मुनियों ने निर्णय किया कि लोगों को सत्ता की स्वायत्तता तथा आतंक के रोग से मुक्त कराया जाए। पूरे दृढ़ निश्चय और निर्भयता के साथ अपनी सभ्यता और सँस्कृति की नाव को डूबने से बचाया जाए। "मैं" का सिर काट दिया जाए और मुक्ति के रथ पर सवार होकर हृदय की धड़कनों को शान्ति प्रदान की जाए ताकि मानवता की बेलें हरी रहें और इस युद्ध का नेतृत्व सतीसर का सूरज नुन्द ऋषि ही कर सकता है। सभी ने निर्णय किया कि मुर्शिद को मनाने और उसे आदर-सम्मान के साथ वापस लाने के लिए हरी पर्वत के चन्द्रवंशी हम्ज़ा मख़्दूम और उसकी बहन चक्रेश्वरी के अतिरिक्त नुन्द ऋषि के चार यार

और शिष्य ऐश मुक़ाम के ऋषि ज़ैना सिंह (ज़ैनदीन), बम्मह जूह के बम्म साध (बाम दीन), तरसर के ऋषि वुतर (नसर दीन) और वाढवन के ऋषि लदी रैना (लतीफ़ दीन) को भेजा जाए। ऋषि-मुनियों का ये काफ़िला मरगन से नीचे उतरा और अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए चल पड़ा। भण्डार कोट के मुक़ाम पर चन्द्रभागा के किनारे खड़े गोवर्धन सर के वाली बाप-बेटों शाह फ़रीद-उल-दीन, शाह असरार-उल-दीन और शाह अख़्यार-उल-दीन ने उनका स्वागत किया और उन्हें बड़े सम्मान के साथ चौगान के मैदान में लाए। ज्ञान और योग के जाम पिए गए। आध्यात्मिकता के दस्तरख़्वानों पर दुखों की रोटी, पीड़ा के सालन के साथ खाई गई और सृष्टि की भलाई के लिए दुआ माँगी गई। फिर सतीसर की तबाही और बरबादी के अतिरिक्त जनता की लाचारी के बारे में बातचीत हुई। ऋषि-मुनियों ने बताया :

"उनका मुर्शिद अपने शरीर पर सात रंगों का चोला पहने घूमता था परन्तु उस चोले को आग की लपटों ने जला डाला। राक्षसों ने नुन्द ऋषि को अपनी ओर से नंगा कर दिया था परन्तु वह नंगा नहीं हुआ था। उसके शरीर पर पाकी और क़लन्दरी का पहनावा था जो कोई भी न उतार सका। क्रूर शक्ति और आतंक सतीसर का अस्तित्व समाप्त करना चाहते हैं पर हम ऐसा नहीं होने देंगे। हमें सूली पर तो लटकाया जा सकता है। हमारा सिर धड़ से तो अलग किया जा सकता है परन्तु सच और हक़ को झुकाया नहीं जा सकता। हम बाहरी आस्थाओं और राजनैतिक रीतियों के पाबन्द नहीं हैं। हम मस्त मौला हैं। हमारे पास फ़क़ीरी का चोला है। दरवेशी की दौलत है। सूफ़ियों की रम्ज़ है। और ईश्वरीय प्रेम की मस्ती है। हम मन की माला पर ईश्वरीय प्रेम का जाप करते हैं। हमारे मन आलोकित हैं। हमारे भीतर प्रेम के दीपक जलते हैं। हम कैसे "मैं" से हार सकते हैं। हम कश्यप पीर की सन्तान हैं। हम राक्षसों के विरुद्ध युद्ध जीतेंगे। हम शैतानी शक्तियों को समाप्त कर के दम लेंगे। इसलिए हम अपने मुर्शिद की खोज में आपकी शरण में आए हैं। हमें हमारा मुर्शिद ढूँढ दें।

हम विछोह की पीड़ा से बेहाल हुए हैं। हमारा मुर्शिद प्यारा तलाश कर दें। शायद वह अपने पुरखों के देश काठवार में कहीं धूनी रमाए बैठा है। हमारी सहायता करें।"

ऋषि-मुनियों की बातें सुनकर शाह फ़रीद-उल-दीन और शाह असरार विस्मित हो गए और कहने लगे, "भला नुन्द ऋषि अपनी धाय-माँ को लेकर यहाँ क्यों आता? उसके पास तो सतीसर की बादशाही है। वह तो जनता के दिलों पर राज करता है। वह यहाँ क्या लेने आएगा। आप नुन्द ऋषि को निशात के उन पत्थरों में ढूँढो जहाँ वासु गुप्त को शैव दर्शन का ज्ञान मिला था। खीरभवानी के चिनारों, मार्तण्ड के मन्दिरों, शारदा मठ और मटन भवन में खोजो। डल, गंगबल, मानस बल, वुल्लर और कौसर सर के पानियों में ढूँढो। वैरीनाग और नागबल के नागों से मालूम करो। बुलबुल शाह की कम्बली और शाह हमदान के कलस में देखो। खेत खलिहानों और केसर-क्यारियों में जाओ। अपनी भाषा और सँस्कृति में तलाशो। लोकगीतों और श्लोकों की लय में अनुभव करो। दिलों की धड़कनों और श्वासों की गरमाहट में अनुभव करो। सेबों और बादामों के बाग़ों में जाओ। रंग-बिरंगे फूलों को सूँघो। बर्फ़ से ढके शिखरों की सुन्दरता में खोजो। तुम्हारा मुर्शिद तुम्हें अवश्य मिल जाएगा।"

काठवार के राजाओं की बात सुनकर ऋषि-मुनि वापिस मुड़े। मरगन के मैदान में सारी ख़ल्क़त उनके स्वागत के लिए खड़ी थी। सच्चाई, प्रेम, प्रीत, शान्ति, मैत्रीभाव और भलाई के दीपक जलाए हुए। सम्मान और विश्वास के साथ बेद के वृक्ष की सुगन्धित टहनियों को हिलाते हुए उनके बीच सतीसर का ताजदार नुन्द ऋषि आध्यात्मिकता की पताका लिए जनता से सम्बोधित था।

"तुम लोग अपनी सभ्यता और सँस्कृति को भूल चुके थे। तुमने ईर्ष्या और द्वेष का मैला चोला पहन लिया था। तुम लोगों को लोभ, मोह, छल, कपट तथा अहंकार का रोग लग गया था। तुम्हें ईश्वर स्मरण नहीं रहा था। तुम्हारे ईमान की गर्मी शीतल पड़ चुकी थी। तुम्हारे भीतर गन्दगी के कारण पूरी धरती में दुर्गन्ध

फैल चुकी थी। तुम लोगों ने जो बोया वही काटा। तुमने निःसन्देह अपने भालों पर तिलक और मेहराबें सजाई थीं परन्तु तुम्हारा अन्तस भ्रष्ट था। तुम्हारे दिलों और दिमागों की सफ़ाई के लिए एक ऐसे रंगसाज़ की आवश्यकता थी जो तुम्हारे काले परिधान श्वेत कर देता। तुम लोग ज्ञान के गीत भूल चुके थे। तुम लोगों ने ईश्वरीय प्रेम का सिमरन तज दिया था। इसलिए तो तुम लोग संकट और अपमान के दलदल में धँस गए। क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि यदि तुम जीना चाहते तो तुम्हें बादलों की गरज और बिजली की कड़क को सहना होगा। कड़ी दोपहर में फैले अन्धकार की चक्की के पाटों में से गुज़रना होगा। जीवन के पर्वत का बोझ अपने कन्धों पर उठाना होगा और एक ही ग्रास में मनों विष भी पीना होगा। फिर तुम कैसे क्रूर सत्ता और आतंक के जाल में फँस गए। क्यों तुम लोगों ने अत्याचार और बरबरियत के समक्ष घुटने टेक दिए?.....परन्तु अब तुम्हारे दिलों और दिमाग़ों से इन जुनूनी पाखण्डियों के जादू का नशा उतर चुका है। अब तुम लोगों ने बहुत संकट झेल लिए हैं। तुम नरक के चूल्हे में सूखी लकड़ी की भांति जले हो। पीड़ा के दिन, भय और दरिंदगी की लम्बी रातें सहन कर चुके हो। तुम अग्नि का दरिया लाँघ चुके हो। तुम लोगों ने क्रूर शक्ति तथा आतंक के साम्राज्य को रद्द कर दिया है। इसलिए चलो आगे बढ़ो और "मैं" के विरुद्ध एकजुट होकर लड़ाई करो। अत्याचार के ज्वालामुखी को शीतल कर दो। सतीसर को जुनून, घृणा, पाखण्ड और अहंकार की प्रवृत्ति से मुक्त कराओ। अपनी सभ्यता और सँस्कृति को बचाओ। अपनी परम्परा को जीवित रखने के लिए बुराई को मिटा दो।"

और फिर पूरी क़ौम अध्यात्म के झण्डे तले मती गावरन की ओर चल पड़ी ताकि सतीसर का सारा अपवित्र जल खादनियार से बाहर निकाल दिया जाए।

नोट : कहानी में प्रस्तुत कुछ पात्रों और स्थानों से सम्बन्धित स्पष्टीकरण :-

१. नुन्द ऋषि : चौदह्वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कश्मीरी दरवेश और सूफ़ी शायर। पूरा नाम शेख़ नूर-उल-दीन वली।
२. सलर सेन : किश्तवाड़ के हिन्दू राजपूत राजा और नुन्द ऋषि के आदरणीय पिता जी।
३. ललेश्वरी अथवा लल्ला माँ : शैव योगिनी, शैवमत की प्रचारक, कश्मीरी भाषा की कवयित्री, महान आध्यात्मिक विभूति, सन् 1324 में पाम्पोर, कश्मीर में जन्मीं, नुन्द ऋषि की धाय माँ।
४. हम्ज़ा मख़्दूम : चन्द्रवंशी हिन्दू राजपूत, जिन्होंने इसलाम क़बूल किया। दरगाह हरी पर्वत (क़श्मीर) की ढलवान में है।
५. चक्रेश्वरी : हिन्दू देवी, जिसका मन्दिर हरी पर्वत पहाड़ी पर है।
६. सतीसर – कश्मीर का पुराना नाम।
७. कश्यप पीर – वह ऋषि जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उसने कश्मीर की झील का पानी बारामूला के स्थान ख़ादनियार (पहाड़ी को काटकर) से बाहर निकाला था और आबादी बसाई थी।
८. चन्द्रभागा – दरिया-ए-चिनाब का पुराना नाम।
९. मरगन – पीर पंचाल सिलसिले का वह पहाड़, जिसके एक ओर ज़िला किश्तवाड़ है और दूसरी ओर वादी कश्मीर।
१०. गोवर्धन सर और काठवार : किश्तवाड़ के पुराने नाम।
११. शारदा पीठ – कश्मीर का पुराने युग का विश्वविद्यालय। शारदा टीटोवाल के सामने और दरिया-ए-किशन गंगा (नीलम) के पार है और इस क्षेत्र को तहसील का दर्जा मिला है, जो नीलम ज़िले का भाग है।
१२. मार्तण्ड, मटन भवन, खीर भवानी। कश्मीरी पण्डितों के ऐतिहासिक पवित्र मन्दिर और स्थान।
१३. मती गावरन – मरगन की दूसरी ओर अनन्त नाग ज़िला का पहला गाँव।

''शादाँ बिल्ली जम्मू वाली''

चक्रदार सीढ़ियाँ चढ़कर उसकी टूटी-फूटी, पलस्तर उखड़ी और सीलन भरी कोठरी के भीतर क़दम रखते ही मन को गहरा आघात हुआ। छत पर पड़ी लकड़ी की कड़ियाँ अपनी आयु व्यतीत कर चुकी थीं और अन्दर से खोखली हो चुकी थीं। उनमें कड़-कड़ की आवाज़ आ रही थी। कमरे के एक कोने में चारपाई पर पड़ी गदली उम्र की शादाँ बिल्ली दमे के दलदल में फँसी तस्बीह पढ़ रही थी और ग़फ़ूरा पहलवान चाय बना रहा था। दीनता, दुःख तथा विवशता ओढ़ने वाले इन दिनों में अपनी वृद्धावस्था के छीछड़े शादाँ बिल्ली को खिलाने के लिए मैं उसकी कोठरी में आया था ताकि मुँह मारी, खजल ख़्वारी और आवारगी के दिनों की राख को कुरेद सकूँ। क्योंकि मैं आज भी अपनी मन मस्ती में रहना पसन्द करता था जभी तो नामुराद दिल का सफ़र मुझे शादाँ बिल्ली की कोठरी की ओर ले आया था जहाँ मैले मकौड़ों तथा भूरी चींटियों ने डेरे जमाए हुए थे।

शादाँ बिल्ली कभी जम्मू के मुहल्ला जीवन शाह की सुन्दर, सुरीली तथा मठीली गायिका थी। उसके संगीत का सुर मण्डल और आवाज़ का जलतरंग हृदय के भीतर घंटियाँ बजाना आरम्भ कर देता था। उसके कमल कटोरे और काजल काले नयन, देखने वालों के लिए तीर, तलवार, खंजर और कटार थे। उसके दाँतों पर चढ़ा दँदासा, मोतियों जड़ा था। वह गोरी, तन कोरी नारी, गन्ने की गंडेरियों की भांति मठियारी थी। उसके कुँवारे ठट्ठे सुनने वालों के लिए बताशे थे। मैंने कई बार उसकी गंडेरियों का रस चूसने का प्रयास किया परन्तु वह अपने तन के वस्त्रों पर धब्बा लगवाने के लिए तैयार नहीं हुई। वह तो सुर भक्तन थी। उसे सुर

की पहचान और रागों का ज्ञान था। गाना उसका शौक़ भी था और जीविका का साधन भी। सुर में सजी उसकी ठुमरियाँ, काफ़ियाँ, गीत, ग़ज़लें, दादरे और ख़्याल, कमाल थे। वाद्यों को सुर में करने के लिए साज़िन्दे....तानपूरे, सितार, सारंगी, सरोद, ढोलक और तबलों की खिंचाई, कसाई, रगड़ाई और ठुकाई करते रहते थे और रौनक़ मेला लगा रहता।

शादाँ बिल्ली एक सच्ची, सुच्ची और सजीली नार थी। उसने कभी उर्दू बाज़ार की कस्बियों की भांति नाज़, नख़रे नहीं दिखाए। वह कोई रंडी नहीं थी कि चलते सिक्के की भांति चलती रहे। कभी ग्राहक के सिर पर बैठे और कभी उसके पैरों में। शादाँ बिल्ली ने कभी किसी घर का दूध नहीं पिया। वह एक असील डेरेदारनी नसीबो की बेटी थी जो जागीरदार सरदार ख़ान की रखैल थी और रखैल तो शुद्ध सरसों का तेल होती है। इस कड़वे तेल ने सरदार ख़ान के नथुनों से ख़ूब पानी निचोड़ा था और आँखों को धुँआ दिया था। सरदार ख़ान नसीबो के रंग-रूप का मारा था। उसे अपनी तड़पन का दारू नसीबो के कोठे पर ही मिलता था क्योंकि पक्की रंगत और कच्ची संगत वाले गभरू जवान, गोरी शक्लों के आशिक़ होते हैं और शीघ्र ही इस कीचड़ में लिथड़े जाते हैं। ऐसे आशिक़ रंडी के कुत्ते के मुँह पर लगे शहद को भी चाटने के लिए तैयार रहते हैं। दुंबे और नील का चर्बीला माँस खाने वाले ये आशिक़ क़द-काठ निकालते ही आवारागर्दी की जूतियाँ पैरों में पहन लेते हैं और स्थान-स्थान पर व्यभिचार की धूल उड़ाते रहते हैं। उम्र के पक्के रंगों में रंगी नसीबो बड़े गुण-ज्ञान वाली महिला थी। ख़ानदानी, व्यापारी तथा शौक़ीन लोगों की ख़ूब पहचान रखती थी। इसलिए उसने खुशी-खुशी सरदार ख़ान की रखैल बनना स्वीकार कर लिया। भला शरीर में उबलता लहू हो और जेब में खनकता माल हो तो शौक़ की कलियाँ स्वयं खिलने लगती हैं और शरीर में रंगीनी नृत्य करने लगती है। और सरदार ख़ान के पास न तो दौलत की कमी थी और न ही शौक़ के स्वाद की। ऊपर से नसीबो सियालकोट के मुहल्ला राम तलाई

से जम्मू आई थी और सियालकोटियों के विषय में तो यह कथन प्रसिद्ध है कि सियालकोटी.....बोटी....। सरदार ख़ान नसीबो की उतरन का उपयोग करने लगा। यौवन की तरंग में रंगी नसीबो जागीरदार सरदार ख़ान के साथ दिलदारियाँ करती। हास-परिहास तथा नाज़-नख़रे करती रहती। वह जानती थी कि यौवन, कोई सदा बहार उपवन नहीं होता। इसलिए वह सरदार ख़ान की दौलत ऐंठने में लगी रहती। सरदार ख़ान इश्क़ मुश्क वाला गभरू था। शीघ्र ही उसके छल के जाल में आ गया। वह नसीबो की सभी आवश्यकताएँ पूरी करता परन्तु उसकी केवल एक ही शर्त थी, और वह यह कि नसीबो अपने शरीर का नमक किसी और को चखने नहीं देगी, परन्तु सरदार ख़ान को कौन समझाता कि पानी की मछलियाँ सारे मछुआरों के लिए होती हैं, किसी विशेष व्यक्ति के लिए नहीं। उसे कौन बताता कि कोठा चाहे फकीर का हो या डेरेदारनी का, दोनों का लक्ष्य लोगों का मन बहलाना होता है। जभी तो कोठे और चौबारे बड़े बे-ऐतबारे होते हैं। इन कोठों में बे-ग़ैरती, बदलिहाज़ी तथा माया जाल के जुगनू जलते-बुझते रहते हैं -- ईश्वर जाने नसीबो ने किस कबूतर का चोगा चुगा था कि उसके पैर भारी हो गए तथा पेट बाहर निकल आया। उसने शादाँ बिल्ली को जन्म दिया। उसे विश्वास था कि यह उपहार सरदार ख़ान का ही दिया हुआ है। फिर भी जन्म देने के उपरान्त नसीबो ने बाप का ख़ाना ख़ाली रखा था ताकि कोई शादाँ पर अपना अधिकार न जता सके। नसीबो को भरोसा था कि आने वाले कल को शादाँ उसके कोठे पर चाँद की भांति चमकेगी तथा सूर्य की भांति उजाला करेगी और उसकी वृद्धावस्था का सहारा बनेगी। इसलिए नसीबो शादाँ के पालन-पोषण में कोई कसर नहीं रखना चाहती थी। शादाँ को सुर-संगीत की शिक्षा दी जाने लगी। इन्दौर, ग्वालियर, शाम चौरासी और पटियाला घराने के गुणी उस्ताद उसे सुरों का सतरंगी झूला झुलाते। उसे संगीत कला की बारीकियाँ समझाते। रागों का ज्ञान देते। शादाँ भी मन लगाकर सीखने लगी और धीरे-धीरे अपनी पहचान बनाने लगी। कभी-कभी वह अपनी

माँ नसीबो के साथ भी मुजरे में संगत करने लगती।

फिर वह समय आ गया जब नसीबो सुर से बेसुरी होना आरम्भ हो गई। उसकी आवाज़ की कोयल ने कूकना बंद कर दिया। वह नसीबो जो अपने आशिक़ों के लिए मिसरी की डली थी, आज उसके खेत की गिरदावरी लगाने के लिए कोई पटवारी तैयार नहीं होता था। सभी उससे कतराने लगे थे। अब उसकी आयु चावलों में कंकर चुनने की हो गई थी और शादाँ बिल्ली की आयु, शरीर पर उबटन मलने, हाथों और पाँव में मेंहदी लगाने, तिल्लेदार परांदे सजाने, गोटे-किनारी वाले दुपट्टे ओढ़ने और हार-सिंगार करने की। पकी पीली नसीबो की काया भी अब पके पपीते की भांति थुलथुलाने लगी थी। उसने अपनी और पराई आग बहुत सेंक ली थी और नरक के तीनों द्वार पार कर आई थी। जभी तो कभी-कभी पलंग पर बैठे अपनी मौज में वह कोई लोक गीत गाती रहती जैसे :

वग वग तवी देआ पानियां तेरे शैह्र बिच मौजां मानियां।
बोल मिट्टी देआ बावेआ, तेरे दुक्खां कलेजा साड़ेया

या फिर मिट्टी दे खडौने घड़ी पल दे परोह्ने

समय की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह चुपचाप व्यतीत हो जाता है और अतीत का भाग बन जाता है। नसीबो भी अतीत का हिस्सा बन चुकी थी और ये खिलौना अब पल भर का अतिथि था। फिर एक दिन वह धूल के ग़ुबार में गुम हो गई और चौबारे की चौधराहट शादाँ बिल्ली के हाथ आ गई। सुर-संगीत की सभाएँ पुनः सजने लगीं। वादक और वाद्य फिर से बजने लगे। आवाज़ का जलतरंग फिर यौवन पर आ गया। हृदय के घौंसले में सुरीले पंछी दोबारा चहचहाने लगे तथा रौनक़ें बढ़ने लगीं -- इस रंगारगी मेले में गुढ़ा सलाथिया का एक सिरफिरा, अड़ियल और सड़ियल युवक गजे सिंह चाड़क भी शादाँ बिल्ली के चौबारे पर आने लगा। वह चढ़ती जवानी के मद में शादाँ पर अपना अधिकार जतलाने लगा।

वह भद्दा राजपूत, कुनाली में मूत था। इसलिए शादाँ

बिल्ली को अपनी सम्पत्ति समझने लगा और उस पर हुक्म चलाने लगा कि वह उसके अतिरिक्त किसी अन्य के लिए नहीं गाएगी। वह किसी को भी शादाँ के चौबारे पर चढ़ने नहीं देता था। वह हर किसी के साथ लड़ने-झगड़ने लगता। मार-कुटाई करने लगता। कई बार उसे पुलिस पकड़ कर भी ले गई परन्तु फिर भी वह बाज़ नहीं आता था। वह शादाँ बिल्ली से कहता

"यह चौबारा निःसन्देह तुम्हारी जागीर है परन्तु तुम मेरी जागीर हो। मेरी सोहनी, मेरी सस्सी और मेरी हीर हो" -- गजे सिंह चाड़क अनोखा सिरफिरा व्यक्ति था। बस यूँ कह लें कि पल में फिटकरी और पल में बताशा। वह उसे ताने देता। उसका उपहास उड़ाता। झाड़-फटकार करता और शराब के नशे में गालियाँ बकता रहता। शादाँ बिल्ली बहुत दुखी तथा असहाय हो चुकी थी। उसका जीवन अजीर्ण बन चुका था। चाहे हर स्त्री के यौवन के अंगों को मनभावन पुरुष के संग की आवश्यकता होती है ताकि उसकी रंगत निखरे परन्तु गजू चाड़क जेसे कठोर स्वभाव वाले व्यक्ति को शादाँ एक क्षण के लिए भी सहन नहीं कर सकती थी। गजे सिंह चाड़क के शरीर में वासना का कुत्ता सड़ रहा था। उसकी दृष्टि मलिन तथा पतित थी तथा यह बात शादाँ को कदापि स्वीकार्य नहीं थी। वह किसी भी दशा में गजू चाड़क जैसे मनहूस व्यक्ति के मटके की खट्टी छाछ नहीं पी सकती थी। रूप सौन्दर्य की स्वामिनी शादाँ अपना अपमान सहन नहीं कर सकती थी। वह नहीं चाहती थी कि वर्षा से बचे और परनाले के नीचे बैठ जाए। इसलिए उसने गजू चाड़क को खरी-खरी सुना डाली। भला सन्तोष तथा उत्पीड़न में दबी हुई भावना कड़वाहटों का ही पोषण करती है। वह कहने लगी :

"तुम मेरे लिए न तीन में हो और न तेरह में। अपना मुँह देखो। न शक्ल न अक्ल। ख़बरदार जो फिर कभी मेरे चौबारे की ड्योढ़ी पार की। यदि फिर कभी यहाँ आए तो ग़फूरे पहलवान से तुम्हारी टाँगें तुड़वा दूँगी। वह तुम्हारी गर्दन के मनके तोड़ डालेगा और तुम सदा के लिए अपाहिज बन के चारपाई पर पड़े-पड़े,

मरते, सड़ते रहोगे। जाओ, अपने घर का स्वर्ग संभालो और बाहर के नरक से दूर रहो। चलो दफ़ा हो जाओ यहाँ से।"

ग़फूरा पहलवान शादाँ बिल्ली का मौन शैदाई था और उसकी आवाज़ का दीवाना। वह सदा शादाँ बिल्ली को "सुर की सरकार" कह कर बुलाता और उसका हर आदेश मानता। ग़फूरा पहलवान, मालिक के आगे सालिक था। सालिक के आगे बालक था और बालक के सामने चाकर बनकर शादाँ बिल्ली की सेवा करता था ताकि उसका रांझा राज़ी रहे। उसे किसी प्रतिकार की आवश्यकता नहीं थी। वह तो शादाँ के चौबारे की सरदल का अर्दल था। ग़फूरे के मन के सिंहासन पर शादाँ बिल्ली के सुर-मण्डल का राज था परन्तु गजे सिंह भी चाड़कों का बिगड़ा हुआ पूत था, वह किसी भी मूल्य पर शादाँ बिल्ली को छोड़ने के लिए तैयार न था। वह समझता था कि काली रात की काली चादर में हर वस्तु काली होती है और एक न एक दिन वह भी शादाँ की काली चादर स्वयं पर ओढ़ लेगा परन्तु भ्रम पालने से भला क्या अन्तर पड़ता है। भ्रम-भेदों का तो कोई ईलाज नहीं होता।

फिर ऐसा हुआ कि शादाँ बिल्ली के जीवन-भवन में एक भूकम्प आ गया। उसे मन पसन्द माही मिल गया। जिसका नाम यूसुफ़ था और जो यूसुफ़ की भांति ही बहुत सुन्दर था और जिसके चेहरे पर आँख टिकती ही नहीं थी....फिसल-फिसल जाती थी। शीघ्र ही यूसुफ़ शादाँ बिल्ली के मन का रबाब बन गया, उसका सरगम। वह स्वयं भी अच्छा गायक था और सुरों के सरोवर में ही पला बढ़ा था। दोनों का शौक़ सांझा था। अन्तर केवल इतना था कि यूसुफ़ केवल सूफ़ियाना कलाम ही गाता था जबकि शादाँ बिल्ली को ग्राहकों की पसन्द का ध्यान रखना पड़ता और हर प्रकार की गायकी का नज़राना पेश करना पड़ता। यूसुफ़ की संगत के कारण शादाँ को बाबा 'फ़रीद', 'शाह हुसैन', 'सुल्तान बाहु', 'वारिस शाह', 'बुल्ले शाह' और मियाँ मुहम्मद बख़्श जैसे सूफ़ियों का कलाम ज़ुबानी याद हो गया था। इन सूफ़ी शायरों का कलाम सुनकर और गा कर शादाँ बिल्ली को

आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त होती। उसकी आत्मा की मटकी सूखी पड़ी थी परन्तु उसे कुएँ की खोज नहीं करनी पड़ी बल्कि कुआँ तो स्वयं उसके पास चलकर आया था.....यूसुफ़ के रूप में। जिसके कारण शादाँ सस्सी की भांति जल-थल हो गई थी। अब उसके दिमाग़ को दिल की रखवाली नहीं करनी पड़ती थी। वह अब बहुत प्रसन्न थी -- परन्तु गजे सिंह चाड़क शादाँ बिल्ली का पीछा नहीं छोड़ रहा था। वह प्रायः उसे तंग करता रहता। वह बुद्धि का मोटा और व्यवहार का खोटा था तथा पराये फट्टे में टाँग फँसाने से बाज़ नहीं आता था। अहंकार, क्रोध तथा वैभव के मद में चूर वह कई बार जेल भी जाता। जेल में ही उसे शादाँ बिल्ली और यूसुफ़ के सम्बन्धों का समाचार मिल चुका था -- जब वह जेल से बाहर आया तो उसकी खोपड़ी की कोठरी में लपटें भड़क रही थीं। वह सीधा शादाँ बिल्ली के चौबारे पर गया जहाँ शादाँ और यूसुफ़ संगीत का अभ्यास कर रहे थे। गजू चाड़क ने चाकू से यूसुफ़ का फेफड़ा फाड़ दिया। यूसुफ़ गंभीर घायलावस्था में फड़फड़ाने लगा और धीरे-धीरे उसकी फड़फड़ाहट समाप्त हो गई। वह मर गया। यूसुफ़ को मृत्यु की गोद में जाते देखकर ग़फ़ूरे पहलवान से रहा न गया। उसने टोके के एक ही वार से गजे सिंह चाड़क की गर्दन धड़ से अलग कर दी और यूसुफ़ का हिसाब बराबर कर दिया। ग़फ़ूरा पहलवान भी पठान का पूत था। पल में वली और पल में भूत था। वह टोका लेकर स्वयं थाने में चला गया और सारा हाल बयान किया। मुन्शी ने परचा काटा और ग़फ़ूरे को हवालात में बंद कर दिया। ग़फ़ूरा पहलवान दिल-गुर्दे का इतना पक्का था कि दुख-तकलीफ़ें भी उसके गले पड़ने पर लज्जित हो जातीं। उसका जीवन तो शादाँ बिल्ली की बन्दगी था। इसलिए उसे कोई पछतावा नहीं था -- मैं उन दिनों सिटी थाने का थानेदार था और सारे केस की तफ़्तीश स्वयं ही कर रहा था। तब तफ़्तीश के विषय में मुझे कई बार शादाँ बिल्ली के चौबारे में जाना पड़ता। तफ़्तीश के दौरान ही नसीबो और अपने आप से सम्बन्धित कहानी शादाँ ने मुझे स्वयं सुनाई थी। उसका सौंदर्य और सुरीली आवाज़ पर मैं भी

मर मिटा था। मैंने कई बार शादाँ पर डोरे डालने का जतन किया परन्तु वह सदा मुझे क़दम आगे बढ़ाने से रोक देती -- तफ़्तीश पूरी करने के उपरान्त ग़फ़ूरे पहलवान का चालान अदालत में पेश किया गया। ग़फ़ूरे ने पहली ही पेशी में अपना अपराध क़बूल कर लिया और उसे दस वर्ष की सज़ा हो गई। ग़फ़ूरा चुपचाप जेल चला गया। शादाँ बिल्ली की दुनिया उजड़ गई। उसे यूसुफ़ की मृत्यु का बड़ा दुःख था, क्योंकि दोनों के दिल मिले थे और दिलों के मिलने से प्यार की कोंपलें फूटती हैं और यह कोंपलें शादाँ बिल्ली के भीतर एक फुलवाड़ी बन चुकी थीं, जिसकी पत्तियाँ उसके दिल में हरी थीं। टोने-टोटके, धमकियाँ, मार-कुटाई और मरन-मारण से इश्क़ का जिन्न कभी नहीं निकलता.... परन्तु यह बात गजू चाड़क को कौन समझाता। वह और यूसुफ़ .....एक ठीकरा और दूसरा चाँदी का कटोरा, कोई मेल ही नहीं था। गजू चाड़क की करतूत शादाँ बिल्ली की दुनिया उजाड़ चुकी थी। चाहे उसके हाथ भी मृत्यु ही आई थी -- शादाँ ग़फ़ूरे पहलवान से मिलने जेल जाती। उसके लिए खाना पका कर ले जाती। फल ले जाती। ईद के कपड़े सिलवा के देती। वह ग़फ़ूरे का पूरा ध्यान रखती। वह उसे यह अनुभव नहीं होने देती थी कि उसका कोई नहीं क्योंकि ग़फ़ूरा पहलवान ही अब उसकी कुल पूंजी था।

मैं प्रायः शादाँ बिल्ली के चौबारे पर जाता। मैंने देखा कि शादाँ के हृदय और चौबारे के सारे दीपक बुझ चुके थे। साज़ बे-आवाज़ हो चुके थे। यद्यपि यौवन की धूप अभी तक उसके आँगन से पूरी तरह हटी नहीं थी और न ही उसके सिर के बालों में चाँदी की कोई तार दिख रही थी, फिर भी उसका हृदय बुझता जा रहा था। तत्पश्चात् मेरा स्थानांतरण भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होता रहा। कभी पुंछ, कभी मुज़फ़्फ़र आबाद, कभी गिलगित्त तथा कभी लद्दाख -- मेरी पुलिस की सारी नौकरी घर से बाहर ही गुज़री। मेरी पत्नी ने सभी पारिवारिक दायित्व बख़ूबी संभाले। बच्चों को पढ़ाया-लिखाया, रोज़गार के योग्य बनाया। दोनों बेटियों के लिए अच्छे रिश्ते तलाश किए। एक सुघड़ पत्नी की भांति उसने परिवार

तथा सम्बन्धियों में मेरा मान रखा। मेरी अन्तिम पोस्टिंग अनन्त नाग में हुई थी, जहाँ से मैं ज़िला पुलिस कमीशनर के पद से सेवानिवृत्त हुआ तथा अपने घर जम्मू वापिस आ गया। बच्चे सब ब्याहे गए थे। कुछ नौकरी में थे तो कुछ व्यवसाय करते थे। कोई विदेशी बन गया था तो कोई स्वदेशी। सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त थे। सरकारी नौकरी से मुक्त होने के तीन वर्ष पश्चात् मेरी पत्नी भी स्वर्ग सिधार गई और मैं अकेला पूरे मकान में भूत बनकर रह गया। अकेलेपन के वातावरण से बाहर निकलने के लिए ही मैं शादाँ बिल्ली के चौबारे की ओर गया था परन्तु वहाँ पहुँच कर पता चला कि शादाँ बिल्ली ने चौबारा कब का बेच दिया था और पास में ही एक छोटी सी कुटिया ख़रीद कर उसमें रह रही थी। और जब मैं चक्रदार सीढ़ियाँ चढ़कर उसकी कोठरी में प्रविष्ट हुआ तो वह नमाज़ पढ़ कर फ़ारिग़ हुई थी और तस्बीह पढ़ रही थी। शादाँ बिल्ली का यह रूप देखकर मैं अचम्भित रह गया। उसका पूरा शरीर कपड़ों में ढका हुआ था, केवल मुँह नंगा था। वह पाँच वक़्त की नमाज़िन हो गई थी। उसे देखकर मेरे भीतर की सारी उमंगें समाप्त हो गई थीं। मैंने उसे इस नए रूप के विषय में पूछा। चौबारे को बेचने और इस सीलन वाली कोठरी में रहने का कारण पूछा। शादाँ बिल्ली ने अपनी माँ नसीबो के बोल दोहराते हुए कहा - "मिट्टी दे खडौने...... घड़ी पल दे परोह्ने।"

फिर कहने लगी, "थानेदारा! मन मुराद मुरशिद और आशिक़ नसीब से ही मिलता है। मुझे मिला था परन्तु भाग्य ने साथ नहीं निभाया।"

"परन्तु तुमने गाना क्यों छोड़ दिया। अपना फ़न, अपनी कला किसी और को क्यों नहीं सिखाई?"

मैं पुरानी देग़ची थी। मुझे क़लई कराने का कोई शौक़ नहीं था। मेरा भीतर खण्डहर हो चुका था। प्रवृत्तियों को पवित्र, निर्मल बनाने के लिए सफ़ाई और सुथराई की आवश्यकता थी और मुझे ज्ञान के प्रकाश की। इसलिए गाना बजाना बंद कर दिया। साज़ नष्ट कर दिए। केवल सूफ़ियों के कलाम को ज्ञान, ध्यान की

दुनिया खोजने के लिए पढ़ना आरम्भ किया। क़लन्दरी रम्ज़ों को जब समझने का प्रयास किया तो पता चला कि मानवी शरीर के भीतर एक दुनिया समाई हुई है। हर सूफ़ी अपने शरीर के भीतर कोठे और कमरे बनाते रहते हैं। आभा तथा सौंदर्य वाले सूफ़ी राज, ताज और समाज की परवाह नहीं करते। बस मौला साईं की दरगाह के अन्दर अध्यात्म की सतरंगी मधुशाला में मस्ती की मदिरा पीते रहते हैं। नमाज़, रोज़ा, ज़कात, और पूजा-पाठ सब बाहरी रूप हैं परन्तु ईश्वरीय इश्क़ सूफ़ियों के अन्तर्मन को आलोकित कर देता है। फिर मैंने अपनी जीवन डगर को सच्चे प्रेम की ओर मोड़ दिया। सच्चे प्रेम ने मुझे पवित्र और निर्मल कर दिया और अब....अल्लाह् हू दा आवाज़ा आवे, कुल्ली नीं फ़क़ीर दे विच्च्वों।"

थानेदारा! दरवेशी और फ़क़ीरी सूई के सुराख़ में से ऊँट निकालने वाली बात है। इस का ज्ञान मुझे सूफ़ियों का कलाम पढ़ कर हुआ। ग़फ़ूरे पहलवान ने भी जेल के भीतर ही सूफ़ी चोला पहन लिया था और अल्लाह साईं के संग लौ लगा ली थी। स्वयं को अवगुण हारा कहने वाला ग़फ़ूरा पहलवान अब गुणवान हो गया था। उसकी "सुर की सरकार".....अब केवल उसके लिए गाती है। इस फ़क़ीरी चोले ने हम दोनों को एक कर दिया है। अब हमारा भिन्न कोई भी अस्तित्व नहीं है।"

शादाँ की बातें सुनकर मेरे अन्तर्मन में एक जोत जगने लगी। मैंने शादाँ भक्तिन की आँखों में आँखें डाल कर देखा तो मुझे उसकी आँखों में राब्या बसरी की मस्ती दिखाई दी। लल्ल आरिफ़ा के वाखों का धमाल दिखाई दिया और मीरा बाई के भजनों का त्याग, जिस कोठरी को मैं सीलन वाली कहता था, उसमें फैली लोबान की आध्यात्मिक सुगन्ध से मैं निहाल हो गया और आजकल.....

"साँसों की माला पे सिमरूँ मैं पी का नाम।"

दीवारों में छिपी वासना

प्रत्येक व्यक्ति दीवारों का आश्रित है। दीवारें -- सम्बन्धों के मध्य खड़ी करने के लिए -- कुंठाओं की मृगतृष्णाओं में सुरक्षा सहित उड़ान भरने के लिए। दीवारें, लक्ष्य पूरा करने के पश्चात् दंभी स्वभाव की शांति हेतु -- और दीवारें -- बसन्त ऋतु को गूंगे और अंधे पतझड़ से बचाने के लिए -- दीवारें -- ओस के बिन्दुओं के बचाव के लिए जो हाथ लगते ही अपना नवयौवन गंवा बैठते हैं -- यदि बसन्त ऋतु को दीवार का सहारा न मिले तो उसका भी वही परिणाम होगा जो आज उस औरत का हुआ है जिसके निष्क्रिय शरीर को कौओं ने बुरी तरह नोच डाला है। उसने बड़ी कठिनाई से कौओं को अपने जिस्म से उड़ाया है। लेकिन कौए फिर कौए हैं। वो लावारिस जिस्म को देख कर चीलों और गिद्धों को भी खाने का निमंत्रण दे देते हैं। यही कारण है कि वह औरत भी एक दीवार की मोहताज है। बहुत अधिक मोहताज -- स्वभाव ईश्वर की ओर से दिया गया मनुष्य के लिए वरदान है -- इसीलिए स्वभाव परिवर्तित नहीं हुआ करता। माँस को नोचना -- कौओं का स्वभाव है और दीवार की कामना करना हर औरत का स्वभाव -- अम्माँ-हव्वा के सफ़र से लेकर उस औरत के सफ़र तक स्वभाव की अनुकम्पाओं की कई कड़ियाँ हैं -- उन कड़ियों में उलझ कर वह औरत भी मुरादों की मंज़िल से कोसों दूर रही है। पंचतंत्र में है,

"एक ख़ूंख़ार शेर बूढ़ा होने पर गले में माला डाल कर संयमी बन गया और जंगल के एक कोने में बैठ कर ईश्वर की अर्चना करने लगा। जब कोई अकेला-दुकेला जानवर शेर का आशीर्वाद प्राप्त करने आता तो वो उसे एक ही झपट्टे में मार कर

अपना ग्रास बना डालता। एक बार एक बिल्ली ने शेर के स्वाँग का भेद खोल दिया। वह घूमती-घामती उधर से गुज़री कि अचानक उसे एक कुएँ से हड्डियों की दुर्गन्ध आई। उसने जब कुएँ में झांका तो उसे शेर की करतूत का पता चल गया।"

यह कथा तो बहुत प्राचीन है परन्तु शब्द नवीन हैं, उनमें शताब्दियों पुराने परिधान की गन्ध नहीं है, संयम की आड़ में बूढ़े शेर आज भी शिकार खेलते हैं। और वो बूढ़ा फ़नकार जिसने इस औरत को सबसे पहले शिकार बनाने के लिए अपने कमाल के तरकश से मनमोहक तीर चलाया तो वो सीधा उसके सीने में धँस गया।

"तुम बहुत सुन्दर हो। होनहार हो। योग्य हो। हर विषय पर खुल कर बात कर सकती हो। तुम्हारा अध्ययन गहन है। आज की युवा पीढ़ी में इस बात की बहुत कमी है। विशेष कर लड़कियों में बी.ए, एम.ए और पी.एच.डी की डिग्री होते हुए भी आज की पीढ़ी सही ढंग से बातचीत नहीं कर सकती। किसी भी विषय पर बात करें आप नौजवान लड़कियों को कोरा ही पाएँगे -- ऐसे माहौल में तुम जैसी लड़की को देखकर बहुत ख़ुशी होती है। यह तुम्हारी योग्यता का ही परिणाम है कि आज तुम ऊँचे सरकारी पद पर विराजमान हो।"

"जी धन्यवाद!" वास्तव में वातावरण का भी बहुत हस्तक्षेप होता है। मेरे पिता -- देश के जाने-माने वकील थे। उन्हें साहित्य, दर्शन और इतिहास में विशेष रुचि थी -- मैं बचपन से ही स्कूली किताबों के साथ-साथ वो किताबें भी पढ़ लिया करती थी जो मेरे पिता पढ़ने के लिए लाते थे। उनकी निजी लाईब्रेरी में दो हज़ार से अधिक पुस्तकें हैं -- मेरे भाई एक प्रसिद्ध इन्जीनियर हैं। देश की दुर्गम सड़कें इन्हीं की देखरेख में बनी हुई हैं। उसके अतिरिक्त वह एक कुशल आर्किटेक्ट हैं। हमारे शहर के गगन चुंबी भवनों में से कम से कम एक चौथाई के नक़्शे उन्होंने बनाए हैं -- मुझे इतिहास और दर्शन में अत्यधिक रुचि है।"

वह बातें कर रही थी -- बूढ़े कलाकार की पारखी दृष्टि

उसके शरीर के एक-एक कोण को टटोल रही है। उसकी आँखों के अंदर छिपी हुई भूख, तड़प, कामना, पलकों पे आ जाती है और कभी-कभी पलकों से बाहर भी झांक लेती है।

"इस सरकारी पद पर मैं प्रतिभा, योग्यता और परिश्रम से नियुक्त हुई हूँ। मैंने प्रतिस्पर्धा में भाग लेकर पहला स्थान पाया -- बाक़ी आपका उत्साह बढ़ाने के लिए धन्यवाद। हाँ! आपके बेटे का केस स्वीकृति के लिए भेजा है। हमने सिफ़ारिश कर दी है कि आपका बेटा आन्तों का कुशल डॉक्टर है और आगे की पढ़ाई के लिए अमरीका जाना चाहता है। क्योंकि हमें उसकी इच्छा का दमन नहीं करना चाहिए बल्कि उसे जाने की अनुमति देनी चाहिए ताकि वापस आने के बाद वह अपने देशवासियों की भली प्रकार सेवा कर सके।"

"मिस नाज़िया! इससे मिलो यह मेरा बेटा है। डॉक्टर हिन्दाल हैदर। कल इसका जन्म-दिन है। हम तुम्हें आमन्त्रित करने आए हैं। कल रात तुम डिनर हमारे यहाँ ही करोगी। मैंने अपने घर का एड्रेस तो तुम्हें बता ही दिया है।"

"लेकिन............।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। मैंने अपने बेटे से तुम्हारा कई बार ज़िक्र किया है। यह भी तुमसे मिलना चाहता था -- इसलिए यह भी साथ चला आया.. ....इसी तरह रिश्ते बढ़ते हैं -- हाँ! तुम अपने बड़े भाई इन्जीनियर साहिब को भी साथ लेती आना।"

रिश्ते बढ़ते गए। अन्ततः एक दिन बूढ़े फ़नकार का चलाया हुआ तीर ठीक निशाने पर जा लगा।

"मिस नाज़िया, हम चाहते हैं कि तुम सदा के लिए हमारे पास आ जाओ। मेरा बेटा तुमसे शादी करना चाहता है वह तुम्हें बहुत पसन्द करता है। दिल-ओ-जान से चाहता है। मेरी पसन्द भी सिर्फ तुम ही हो -- तुम इससे कई बार मिल चुकी हो। इसकी इच्छा है कि वह अमरीका जाने से पहले ही शादी करे -- तुम्हारी क्या मरज़ी है।"

"मुझे तो कोई ऐतराज़ नहीं लेकिन इस मामले में आप मेरे भैया से बात कर लें।"

"मिस नाज़िया -- मिसेज़ नाज़िया हिन्दाल हैदर बन गई -- बूढ़ा फ़नकार बेहद खुश है, उसमें नई जवानी आ गई है। उसके अंदर डूब चुकी चंचलताओं को पँख लग गए हैं और पँख, मन-पिंजरे में फड़फड़ाने लगते हैं। वह हर रात को नाज़िया और हैदर के बैड रूम में झांकता रहता है। उन सुराख़ों से जो दिखाई नहीं देते -- नाज़िया और हैदर उसके लिए सन्तुष्टि का सामान पैदा करते रहते हैं। वह नाज़िया के शरीर के कोणों की कहानी पढ़ता रहता है और फिर अपने बदन का मनों बोझ लेकर बैड रूम में आ जाता है और बिस्तर के फीके सफ़र पर चलता हुआ करवटें बदलता रहता है -- अब हर रोज़ उसके तन की मरुभूमि में बवंडर उठते हैं, जिन्हें हर रात वह राख में ठंडा करता है।

फिर डॉक्टर हिन्दाल हैदर आगे की पढ़ाई के लिए अमरीका चला गया और नाज़िया अपने दफ़्तर के बाद घर में बूढ़े फ़नकार के साथ रहने लगी -- और फिर एक रात -- नाज़िया के तपते बैसाख को बूढ़ा फनकार अपने वासना से भरे वनवास में उठाकर ले गया -- वो अपने हाथों में, अपनी बाहों में चाँद को पकड़ने का जतन करने लगा। परन्तु चाँद उसकी उंगलियों से फिसल जाता। बार-बार की फिसलन से चाँद नीचे गिर गया और बूढ़े फनकार की मुट्ठी में आ गया। वह बोला,

"वह मकान जिसकी छत पर बर्फ़ पड़ी हो, उसके अंदर भी आग जलती है।"

बिस्तर के फीके सफ़र की यात्रा सफल हुई -- अलाव रौशन हुआ और फिर अन्धे कुएँ में जाकर बिखर गया -- नाज़िया की तपती काया को आँखों का सावन रिमझिम से ठंडा करने लगा। और फिर उसने बूढे फनकार के सुसज्जित ड्राईंग-रूम से निकल कर बार-रूम तक जाने में कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं की। फिर भी वह सुलगती रही। उबलती रही और बिखरती

रही -- बूढ़ा फनकार किसी और तस्वीर को मुकम्मल करने में मगन हो गया और नाज़िया जलती तन्हाई को आती-जाती ऋतुओं में गुम करने लगी -- परन्तु सूरज, चाँद, सितारे पी जाने के उपरान्त भी वह प्यासी रही -- बूढ़े फनकार ने उसे व्यभिचार के घोड़े पर सवार करके अपने घर से रवाना कर दिया -- नाज़िया परम्परा से नहीं टकराई। उसने समाज की व्यर्थ रीतियों को ताक पर रखकर सुलगती वीरानी को अपना नशेमन बना लिया -- और फिर उसके नशेमन पर आए दिन बवंडर हमले करते रहे। वह हर हमला सहती रही। दुःख एक पल का भी हो तो सदियों लम्बा हो जाता है और जब दुःख बड़ा हो तब तो युगों में फैलने लगता है। युगों में फैले पीड़ा के दरिया की लहरों को शान्त करने के लिए वह एक दीवार का सहारा ढूँढने लगी ताकि वह दुर्ग में बंद हो जाए और हज़ारों सिरों वाले और हथियारों से लैस पिशाच पल-पल उसका पीछा न कर सकें। परन्तु उसे हर बार -- कच्ची दीवारों से ही वास्ता पड़ता जो लक्ष्य पूर्ण होने के पश्चात् स्वयं ही गिर जातीं -- और -- उसके नशेमन के आंगन में फिर से रस्ते बनने लगते -- एक दृढ़ दीवार की इच्छा में वह आज भी भटक रही है, तन की मरुभूमि लिए -- और इस मरुभूमि के लिए दिखाई देने वाला हर नख़्लिस्तान एक मृगतृष्णा है --

प्रत्याशा का कैदी

मैं एक बंदी हूँ। काल कोठरी में बंद -- और कारावास के ये लम्बे दिन भिन्न-भिन्न वृत्तों के घेरे में धीरे-धीरे चक्कर काटते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक चिंताएँ, कभी निराशा कभी दुख -- कभी पीड़ा -- तथा वृत्तों में चक्कर काटने के बाद मन बहुत अशान्त हो जाता है। अत्यन्त तीव्रता के साथ एक प्रतीक्षा लगी रहती है -- कि अब कोई आए -- अपना अथवा पराया, मित्र अथवा शत्रु, कोई वार्तालाप हो -- परन्तु किस के साथ। इस काल कोठरी की दीवारों के साथ अथवा अपने बंदी साथियों के साथ -- जो मेरी ही भांति इस कारागृह में बंद कर दिए गए हैं, पशुओं के समान। हम तो पशुओं की ही सन्तान हैं। इन मानव सदृश भेड़-बकरियों की, जो कौड़ियों के भाव खरीदे गए थे। यह अति प्राचीन कथा है। परन्तु क्या हुआ? -- हमारा स्वभाव अभी भी नहीं बदला --

यह कारागृह किसी निमर्म शासक का शोक मना रहा है सामने ऊँची पहाड़ी पर बना दुर्ग -- तलवार के युगों का संरक्षक आज के युग पर रो रहा है। यह कारागृह एक अनोखा जगत है यहाँ जीवन का अस्तित्व है न मृत्यु का। यहाँ वह जीते जागते लोग -- जो हँसते, रोते, प्यार करते तथा लड़ते हैं -- सब अलिफ़ लैला की गाथा बन जाते हैं तथा उस गाथा की एक कहानी मैं भी हूँ -- मैं आरोपी हूँ -- हत्या का -- मुझ पर आरोप है कि मैंने हत्या की है परन्तु मुझे स्वीकार नहीं। एक बार नहीं सौ बार इन्कार है। मैंने कोई हत्या नहीं की है। यदि मैंने हत्या की है तो वह शव कहाँ है, जिसकी हत्या मेरे हाथों हुई! परन्तु जो स्वयं एक गला-सड़ा शव हो वह हत्या किस प्रकार सिद्ध

कर सकता है -- मुझ पर हत्या का अभियोग चल रहा है। एक वर्ष बीत चुका है। क्या हुआ -- फौजदारी तथा सिविल मुकदमों को तो कई-कई वर्ष लग जाते हैं। अभी तो दावा करने वालों की कहानी समाप्त नहीं हुई। इस वातावरण में मेरी बारी ईश्वर जाने कब आए। ऐसे लगता है जैसे समय का अपना कोई मूल्य नहीं। अपना कोई अस्तित्व ही नहीं। बस मात्र यह दिन-रात -- बार-बार इस ग्लोब पर घूमते रहते हैं। यदि समय अपनी वास्तविकता खो बैठे तो फिर सब कुछ समाप्त हो जाएगा परन्तु समय अपनी वास्तविकता नहीं बदलता। वह तो कड़वे-मीठे तथ्यों की एक लम्बी यात्रा है। काँटों और फूलों से भरी हुई। परन्तु मेरे मार्ग में काँटे ही काँटे उगते रहे। यहाँ फूल कभी नहीं उग सकते -- क्या पता -- कभी उग भी जाएँ। लाला के फूल, लाल कटोरों की भांति -- ईरानी काव्य के मनभावन फूल। शेक्सपियर की जूलियट कहती है कि आने वाले समय में हमारे सभी दुःख बड़े मधुर वार्तालाप का साधन बनेंगे। इसलिए जो रात बीत जाती है वह अतीत में खो जाती है। केवल आने वाला दिन जीवित है। उसकी आस जीवित है उस आस का गीत जीवित है। उस आने वाले दिन का उत्सव मनाओ, प्रेम तथा मित्रता की पूंजी को खर्च करके वह दिन, वह समय -- जब आत्माओं की हत्या नहीं होगी -- और मुझ पर आरोप है हत्या का परन्तु मैं हत्यारा नहीं -- दावा करने वालों ने अपराध सिद्ध करने हेतु अनेक साक्ष्य प्रस्तुत क़िए हैं। उनका कहना है कि मैंने एक शव की हत्या की है। उसका शीश काटा है तथा उसके मस्तिष्क में कीट भर दिए हैं। उसके दिल पर हुई प्लास्टिक सर्जरी को खण्ड-खण्ड कर दिया है। भला शव की हत्या कैसे हो सकती है। यह सब असत्य है परन्तु यहाँ असत्य, सत्य बन जाता है तथा सत्य, असत्य। इसलिए मैं बहुत दुखी हूँ। एक पीड़ा -- एक कष्ट में जी रहा हूँ। पशुओं की पीड़ा का निदान मृत्यु है क्योंकि मूक जीव अपने एकाकीपन की पीड़ा व्यक्त नहीं कर सकते। परन्तु मनुष्य तो पीड़ा को लेकर जीता है। कई वर्षों तक, शताब्दियों तक, पीढ़ी-दर-पीढ़ी। उसकी

पीड़ा का निदान मृत्यु नहीं -- जीवन है और जीवन संघर्ष का नाम है। परन्तु संघर्ष हमारे लिए कोई अन्य करे हम नहीं कर सकते। हम लुंडी मस्जिद के नमाज़ी हैं और गूँगे की भांति स्वप्न देखकर मन ही मन में पछताने वाले -- और संघर्ष रहित जीवन -- इस कारागृह में बड़ा बोर लगता है। इसलिए बोरियत मिटाने के लिए चैख़ोव, फ्रॉयड, मोपसाँ, गगोल, सोमरसेट माम, मंटो, कृष्ण, बेदी और न जाने किस-किस दुष्ट को पढ़ना पड़ता है। काफ़्का की डायरी पढ़कर -- बहुत कुछ याद आ जाता है। मुग़ल बागों में खिले फूल, वह शामें जो अमीरा कदल से लेकर काफ़ी हाऊस तक बिखरी हुई हैं। बादाम-वारी की कलियाँ, डल के रंग-बिरंगे शिकारे, बुलीवार्ड की अल्हड़ सड़क, उन पर चलते-चलते जीवन को सुन्दर बनाने की योजनाएँ ब्रॉडवे तथा ख़य्याम में देखी फ़िल्में सनफ़्लॉवर, रेड बीच, डॉक्टर ज़ेवागो, हन्डर्ड राईफ़ल्ज़, अचानक, उपहार, गर्म हवा, कोशिश, घर और अनगिनत फ़िल्में। जेहलम का बंड, गुलमर्ग का हरा मैदान, फ़िरोज़पुर नाले का पानी, युसमर्ग के वन -- वर्ड्स वर्थ की कविता, किसी पुराने पापी की श्वेत दाढ़ी की भाँति चमक रही ऊँची पहाड़ियों पर बर्फ़ -- बहुत देर तक स्मृति -- साँप बनकर मेरे मन मस्तिष्क पर लोटती रहती है -- फिर सब कुछ बदला हुआ लगने लगता है। दोपहर का सूर्य, चिंतित धूल में सना, व्यर्थ-सा, चरम की गर्मी परन्तु जब हवा सरसराती है तो जेल के अढ़ाई वृक्ष उसकी लय पर धीरे-धीरे नृत्य करने लगते हैं। काल कोठरी में बैठे -- कई दृश्य उभरते हैं, हवा में लहराते हैं -- और बिखर जाते हैं। फिर हर दृश्य कारागृह बन जाता है। वह कारागृह, जिसमें, मैं बंद हूँ, हत्या के आरोप में, हत्या एक शव की, एक धड़ से सिर अलग करने की, दिल की प्लास्टिक सर्जरी तोड़ने की -- यहाँ आने से पूर्व भी मुझ पर आरोप लगते रहते थे। गलियों-बाज़ारों में, खेतों-खलिहानों में, मशीनों की चिमनियों में धुआँ फैलाने के आरोप तथा कभी-कभी यह आरोप कड़ियों की झनकार बनकर अपने अस्तित्व का गहरा आभास दिलाते रहते थे परन्तु मैं हर समय आरोपों की बाढ़ से

ठीक-ठाक निकल जाता परन्तु अब तो आरोप हत्या का है -- और हत्या का दण्ड मृत्यु है -- मृत्यु -- फाँसी का फंदा या फायरिंग स्कवॉड की एक गोली -- और हत्या का यह आरोप दिन-रात -- मेरे मन मस्तिष्क में गूंजता रहता है, डसता रहता है। फिर भी इस चिंता के वातावरण में मन का मौसम कभी ठीक हो जाता है -- फिर रात का चन्द्रमा, आकाश की रेशमी चादर पर अंग-अंग लहराती चाँदनी, कोयल की कूक बहुत अच्छी लगती है और कीट्स का कहा याद आ जाता है कि वास्तविकता सुन्दरता है और सुन्दरता वास्तविकता। इस समय सुन्दरता की वास्तविकता मन को कारागृह से बहुत दूर ले जाती है -- दीवारों और आबनूस के पेड़ों की सुगन्ध में। नदियों के मधुर संगीत में, फिर मन यह नहीं मानता कि मैं कारागृह में हूँ, हत्या के आरोप में -- काल कोठरी में। काश मेरी काल कोठरी पर गाज गिरे, एक भयानक आवाज़ आए, हज़रत याकूब के बेटों की आवाज़ से भी भयानक -- वह आवाज़ जिससे चट्टानें और सहस्रों टन भारी हिमखण्ड लुढ़क जाएँ। पहाड़ों की नींवें हिल जाएँ -- परन्तु हमारे लोगों के निर्जीव अस्तित्व -- पहाड़ों से भी अधिक भारी हैं। इनको शायद कोई अणुबम भी नहीं हिला सकता।

मैं प्रतिदिन प्रभात बेला में जागता हूँ। चिड़ियों की चहचहाहट, फूलों के साथ छेड़-छाड़, हवा का सन्तूर बजना -- फिर सूर्य दुर्ग की ऊँची दीवारों से बाहर निकल आता है -- कारागृह जाग उठता है और मन फिर खिन्न हो जाता है। किसी अपने की स्मृति बहुत सताती है -- और जब अपना कोई भेंट करने वाला आ जाए तो बड़ी प्रसन्नता होती है मिलकर। परन्तु भेंट के पश्चात एकाकीपन का आभास और भी गहन हो जाता है। आँखें कुछ ढूँढती हैं। कुछ खोया हुआ। फिर लम्बी और बेरंग रातें और उजड़े दिन खाने को आते हैं -- फिर यह कारागृह, जेल की ऊँची दीवारें, पहरेदार, वर्दियाँ, सींखचे -- वृत्त चक्कर काटते रहते हैं

कल मेरा वकील आया था, अभियोग से सम्बन्धित बातें करता रहा। कुछ पन्नों पर हस्ताक्षर करवा कर ले गया। जाते-

जाते कान में धीरे से कह गया -- "हवाओं का चलना बंद कर दिया गया है। दरियाओं का बहना, नदियों का मचलना, फूलों का खिलना, पक्षियों का उड़ना -- सब बंद कर दिया गया है।" - और मेरे मस्तिष्क में बड़ी देर तक हत्या गूंजती रही -- हत्या -- प्रकृति के प्रदान किए हुए अधिकारों की हत्या, परन्तु वह कोई हत्या नहीं कर सकता। वह तो आलम पनाह है, हत्यारे तो हम हैं -- इस कारागृह के बंदी --

कारागृह में निराशाएँ तथा दुर्भाग्य अनेक हैं -- परन्तु जीने के लिए, हँसने के लिए, मन बहलाने के लिए -- लता और तलअ़त के पुराने फ़िल्मी गाने, मेंहदी हसन, गुलाम अली, ताहिरा सैयद के गीत और ग़ज़लें, शौकत और यूनस की आवाज़ों में सैफ़-उल-मलूक और सस्सी, हाशिम के दोहे सुनने को मिल जाते हैं। कल ताहिरा सैयद बच्चों की एक लोरी गा रही थी -- "अल्लाह-अल्लाह करेआ करो, ख़ाली दम न भरेआ करो" -- और मुझे लगा कि मैं एक बालक, लहरों की भांति चंचल और फूलों सा कोमल ताहिरा सैयद की गोद में बैठा, लोरी की मस्त आवाज़ में डूबा, सो रहा हूँ -- कि सोते हुए बालक को रेशमा की लोचदार आवाज़ ने जगा दिया।

" -- हाय ओ रब्बा नेइयों लगदा दिल मेरा -- "

कभी-कभी कोई अच्छा ड्रामा भी सुनने को मिल जाता है। कुछ दिन हुए -- फिलस्तीनी मुजाहिदों की उपलब्धियों पर एक ड्रामा प्रसारित हुआ। कहानी, संवाद, आवाज़ें, हर दृष्टिकोण से एक बढ़िया ड्रामा था। यहूदियों की नृशंसता की कथा -- जो कभी स्वयं भी निर्दोष उत्पीड़ित हुआ करते थे -- और उनके हाथों फिलस्तीनियों के नरसंहार की गाथा -- परन्तु हमारे यहाँ -- नरसंहार नहीं होता, हत्या के आरोप लगते हैं -- यहाँ गूँगे गुड़ खाकर सो जाते हैं --

कल एक बड़ा साया हमारे कारागृह में प्रविष्ट हुआ। कई छोटे-छोटे साये अपने साथ लिए उसने सारे कारागृह का निरीक्षण किया। मेरी काल कोठरी की ओर संकेत करके वह कहने लगा --

"इस काल कोठरी में, मैं भी चार वर्ष तक बंद रहा हूँ -- फिर वह बड़ा साया बंदियों के साथ वार्तालाप करने लगा। ठीक उसी प्रकार -- जिस प्रकार कारावास के दिनों में, उसके साथ उस समय के सायों ने किया होगा --

"तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं?" -- कारागृह में भला क्या कष्ट हो सकता है। कारागृह तो विश्राम-गृह होता है

फिर वह बंदियों से अलग-अलग पूछने लगा

"तुम किस अपराध में यहाँ आए?"

"चोरी के अपराध में।"

"तुम?"

"धारा 307 के अपराध में।"

"तुम्हारा क्या अपराध है?" -- उसने मुझसे पूछा।

"मेरा कोई अपराध नहीं। मैंने कोई अपराध नहीं किया है।"

"फिर तुम यहाँ किस प्रकार आए?"

"मुझ पर आरोप है कि मैंने हत्या की है एक शव की। भला तुम ही कहो कि शव की हत्या किस प्रकार की जा सकती है? कभी कोई मृत जीव की भी हत्या कर सकता है? मैंने कोई हत्या नहीं की है। मैं हत्यारा नहीं। मैं शवों का व्यापारी नहीं। चलते-फिरते शवों का। मैं तो जीवन चाहता हूँ -- हत्या नहीं -- परन्तु तुम भी तो इस काल कोठरी में चार वर्ष तक बंद रहे थे। तुम्हारा क्या अपराध था? क्या तुमने भी कोई हत्या की थी?"

बात सुनते ही वह छोटे सायों की ओर देखने लगा, जो मुझे खा जाने वाली दृष्टि से घूर रहे थे -- फिर कारागृह का मुख्य द्वार खुला -- और वह बड़ा साया तेज़-तेज़ क़दम भरता बाहर चला गया -- मेरे प्रश्न का उत्तर दिए बिना -- उनके जाने के पश्चात सिपाहियों ने लोहे का फाटक बंद कर दिया। परन्तु मेरा प्रश्न -- मेरा प्रश्न -- लोहे का फाटक चीर कर उसका पीछा कर रहा है -- एक वृत्त बनकर उसके आगे-पीछे चक्कर काट रहा है -- और चक्कर काटता रहेगा।

बाबा टिक्की

फिरंगी मुहल्ले की छोटी मस्जिद के ठीक सामने बरगद वाले चौराहे के समीप बाबा टिक्की की दुकान हुआ करती थी। दुकान अच्छी-ख़ासी परन्तु अन्दर माल बहुत कम। बस बच्चों के लिए टिक्कियाँ, इमली, पापड़, चने, मूँगफली, दाल-सेवियाँ, कंचे, कुल्फियाँ -- या फिर किरयाने का छोटा-मोटा सामान। गर्मियों के दिनों में -- बर्फ़, सोडे की बोतलें, गोंद कतीरा, मलिंगां के बीजों का शरबत और बाबा टिक्की की पतली आवाज़ -- "पियो ते जियो"।

यह दुकान बाबा टिक्की के बड़े भाई बाबा हाकिम ने खोली थी -- उन दिनों चौधरी हाकिम दीन के बड़े ठाठ हुआ करते थे। मुहकम दीन उर्फ़ बाबा टिक्की उन दिनों हाकिम दीन के साथ ही रहता था। हाकिम दुकान पर बैठता, छोटी-मोटी चीज़ें बेचता और साथ-साथ बहुत कुछ ख़रीद भी लेता और मुहकम दीन बेचारा अपने बड़े भाई के लिए मज़दूरों का काम करता -- दुकान के लिए सारा सामान लाता, उसे सुघड़ता से सजाता, वस्तुएँ तोल-तोल कर ग्राहकों को देता और समय-असमय अपने बड़े भाई से मोटी और पतली, बासी और ताज़ा गालियाँ भी खाता -- गालियों का नशास्ता खा-खा कर मुहकम दीन का स्वभाव तेज़ होने लगा, उसकी रगें अकड़ने लगीं, उसे अपच होने लगा और उसे हाकिम दीन का घर एक क़ब्र की भांति लगने लगा जिसमें उसका जीवन गड़ता जा रहा था। वह अपने जीवन को इस प्रकार गड़ने नहीं देना चाहता था। वह तो सूर्य के प्रकाश की भांति स्वतंत्र रहना चाहता था, -- अन्ततः एक दिन वह अपने बड़े भाई को अकेला छोड़कर अमृतसर चला गया। वहाँ जाकर उसने अपना पैतृक व्यवसाय अपनाया और पांडियों का काम करने

लगा। तीन-चार वर्ष में उसने पचास-साठ हज़ार रुपए भी जमा कर लिए थे। वह प्रसन्न था परन्तु कभी-कभी उसे इस प्रसन्नता में किसी चीज़ की कमी का आभास होता। यौवन का मद उसे खट्टे-मीठे सपने दिखाता। पैसे देखकर उसे ज़ोर की प्यास लगती परन्तु वह जानता था कि एक प्यासा व्यक्ति सपनों के झरनों से प्यास नहीं बुझा सकता -- और फिर एक दिन उसे बैठे-बैठे ही विचार आया कि उसे शादी कर लेनी चाहिए ताकि जीवन की गाड़ी को दूसरा पहिया मिल जाए।

अमृतसर में वह पुतलीघर के समीप जुलाहों की बस्ती में रहता था। उस बस्ती में रमज़ान ताँगे वाले की सुन्दर और भोली लड़की जमीला पर उसका दिल आ गया। एक दिन उसने अपनी मकान मालकिन माई बेगो के साथ जमीला की चर्चा छेड़ी और उसे रमज़ान ताँगे वाले के घर रिश्ता माँगने भेजा। पहले तो रमज़ान और उसके सम्बन्धी मुहकम दीन की जात बिरादरी के विषय में पूछने लगे, माता-पिता का अता-पता ढूँढने लगे परन्तु जब बीच वालों ने बताया कि मुहकम दीन अकेली जान है तो वह रिश्ता देने के लिए सहमत हो गए -- मुहकम दीन ने उबटन मला, खारे बैठा, मोतिए के फूलों का सेहरा बाँधा, बैंड-बाजे बजे, भंगड़ा हुआ, दिल के अरमान पूरे किए -- निकाह हुआ और मुहकम दीन जमीला को ब्याह कर ले आया। जमीला सचमुच बहुत सुन्दर थी। छल-छल करता यौवन ढलक रहा था। जमीला को देखकर मुहकम दीन लहरा उठा। उसके मन में खुशियों के फव्वारे छूटने लगे। उसकी मुरादें पूरी हुई थीं। वलीमे वाली रात को मुहकम दीन ने उसके साथ ढेरों बातें कीं। आने वाले जीवन के विषय में, अपने एक छोटे से घर के विषय में, होने वाले बच्चों के विषय में -- वह सारी रात जमीला को विश्वास दिलाता रहा कि वह उसे उम्र भर खुश रखेगा।

जमीला को मुहकम दीन की व्यर्थ की बातों में कोई रुचि न थी। इसलिए उसने मुहकम दीन को धोबी-पटड़ा मार कर लिटा लिया -- परन्तु कुछ ही क्षणों में वह मुहकम दीन के लंगोट की

सच्चाई जान गई और अन्दर ही अन्दर घुटती, बल खाती सो गई -- दूसरी रात जमीला को उसका लंगोट पहली रात से भी ढीला लगा -- वह अपने बाप रमज़ान के घोड़े के कई रोगों का इलाज स्वयं ही किया करती थी, उसने मुहकम दीन का भी एक माहिर डॉक्टर की भांति निरीक्षण किया परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया -- मुहकम दीन अल्लाह की बख़्शी हुई तीसरी शय भी नहीं था। इसलिए वह चकित थी कि घोड़ा अपने पैरों पर क्यों खड़ा नहीं होता -- जमीला ने मुहकम दीन को चने की कच्ची दाल दूध में भिगो कर खिलाई, दूध में ही गिरी, छुहारे और बादाम उबाल कर पिलाए। शिलाजीत खिलाई, चिड़ियों और कबूतरों का माँस देसी घी में भून-भून कर खिलाया, चूज़ों का शोरबा पिलाया। कपूरे तल-तल कर दिए, मालिश की, कुश्ते खिलाए, इन्जेक्शन लगवाए, अर्थात् वैदों हकीमों और डॉक्टरों के सारे नुस्ख़ों का प्रयोग किया परन्तु मुहकम दीन की "सेहत" में कोई अन्तर नहीं पड़ा, पड़ता भी कैसे, उसे तो शीघ्रपतन और धातु रोग था, वह दवा-दारू की बैसाखियों के सहारे कुछ क्षण तो अपने पैरों पर खड़ा हो जाता परन्तु दो पैर चलते ही गिर पड़ता -- जमीला ने मुहकम दीन के साथ जितने भी दिन बिताए, वह बेचारी तो एड़ियाँ खुरचती ही रह गई परन्तु उसे पायलें नहीं मिलीं। वह विश्वस्त हो गई कि मुहकम दीन के साथ चलकर वह कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकती। अन्ततः वह मुहकम दीन को बीच मार्ग में ही छोड़ गई। वह समुद्र की उफनती लहरों को शान्त करने के लिए उबलते पानियों पर दौड़ने लगी, हवाओं में उड़ने लगी और अन्ततः कोतवाली के सिपाही गुलज़मां के घर ठंडी होकर बैठ गई -- मुहकम दीन फिर अकेला रह गया -- दुखी, कुम्हलाया, वह चाहता कि जी भर कर रोए। परन्तु वह जानता था कि टूटे दिल कभी भी आँसुओं की गोंद से नहीं जुड़ते। ऐसी परिस्थितियों में उसे अपना भाई याद आया -- और वह लौट कर हाकिम दीन के पास आ गया, गालियों का नशास्ता खाने। लेकिन गालियाँ -- अब हाकिम दीन के भीतर ही समाती जा रही थीं। उसका सारा

अस्तित्व बिखर रहा था और अंत में उसे गले का कैंसर खा गया। हाकिम दीन की मृत्यु के पश्चात् मुहकम दीन उसकी सारी चल तथा अचल सम्पत्ति का स्वामी बन गया। क्योंकि हाकिम दीन की बंजर भूमि से कोई उपज नहीं हुई थी। हाकिम दीन ने भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए अनेकों प्रयास किए थे परन्तु प्रकृति के कामों में किसी का हस्तक्षेप नहीं होता। हाकिम दीन की चल सम्पत्ति में से मुहकम दीन को एक भाभी भी मिली थी जिसका अब इस जगत में मुहकम दीन के सिवाए कोई और न था। वैसे तो मुहकम दीन की भाभी जवानी में बड़ी रंगीले स्वभाव की मालिक थी परन्तु चौधरी हाकिम दीन के जीवन में वह कभी लक्ष्मण रेखा पार नहीं कर सकी थी। हाकिम दीन की मृत्यु के पश्चात् वह शीघ्र ही मुहकम दीन की बुक्कल की चोर बन गई -- मुहकम दीन अपने बड़े भाई का जूठा बर्तन चाटने लगा -- उसकी भाभी को भी बुक्कल ओढ़ते ही जमीला की भांति ज्ञात हो गया था कि इस मशीन के पुर्ज़े ढीले हैं। बर्तन चाटने वाली उंगली बड़ी कमज़ोर है परन्तु वह "खेली-खाई" औरत मुहकम दीन की ढीली चादर के नीचे अपनी नग्णता को ढका हुआ समझती थी। इसीलिए वह चुप थी -- फिर एक दिन जूठा बर्तन टूट गया -- बंजर भूमि पाताल में धँस गई -- मुहकम दीन जी भर के रोया। उसे बड़ा आघात लगा था। परन्तु भाभी का चालीसवाँ करते-करते उसकी निराशा से वासना की चंचलता की कोंपलें फूट पड़ी थीं। यह जानते हुए भी कि अंधेरे में सारी बिल्लियाँ एक ही रंग की होती हैं और वह केवल चूहे खाने में ही रुचि रखती हैं -- वह दोबारा नए विवाह के चक्कर में पड़ने लगा। ऊपर से अब वह उम्र के उस पड़ाव में प्रवेश कर चुका था जब शादी का नाम लेते ही खिल्ली उड़ाई जाती है। परन्तु उसे किसी बात की परवाह न थी। वह तो अपने मन कीं प्यास बुझाना चाहता था, जो कि उसके अनुसार कभी नहीं बुझी थी। स्त्री के विषय में एक कमी का आभास उसके भीतर सदैव जीवित रहा था। स्त्री के मिलन से जो आनन्दानुभूति होती है, कलेजे में जो ठंडक पड़ती है -- वह ठंडक

उसने कभी अनुभव नहीं की थी। यही कारण था कि किसी भी स्त्री को देखकर उसकी आँखों में उसे प्राप्त करने की इच्छा हिलोरे लेती। उसके मन का मयूर किसी भी सुन्दर मोरनी को देखकर नाचने लगता। नृत्य करते समय मोर की दृष्टि जब अपने पैरों की ओर जाती है तो वह आत्मग्लानि अनुभव करते हुए नृत्य बंद कर देता है परन्तु मुहकम दीन के मन का मोर अपने पैरों की ओर देखकर भी ग्लानि का अनुभव नहीं करता था। वह तो अपने पैरों को सुन्दर तथा सुदृढ़ समझता था। उसे जमीला और भाभी के दिन-रात के ताने भूल गए थे। उसे अपने रोग का कोई ध्यान न था जो दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था।

जैसे-जैसे मुहकम दीन की उम्र के घोंसले में समय का एक-एक तिनका बढ़ता जाता था उसके मन की उत्सुकता भी बढ़ती जाती -- पेड़ चाहे कितना ही बूढ़ा हो जाए -- जीवन की कितनी ही बहारें क्यों न देख ले। फिर भी नई बहार देखने की कामना नहीं तजता। परन्तु जिसने स्वेच्छा से बहार को कभी भी बरता न हो, उसकी इच्छा की तीव्रता का अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं -- मुहकम दीन की युवा कामनाएँ उसके चेहरे पर झुर्रियाँ ले आई थीं। उसके सिर में चाँदी चमकने लगी थी परन्तु फिर भी वह शादी करने के लिए तत्पर रहता -- धीरे-धीरे फिरंगी मुहल्ले के गामे-माझों को मुहकम दीन की सारी विशेषताओं का पता चल गया। वह उसे छेड़ने लगे। उसका उपहास उड़ाने लगे। उसके नाम रखने लगे। पापड़, इमली और रंग-बिरंगी टिक्कियाँ बेचने के कारण उसका नाम बाबा टिक्की प्रसिद्ध हो गया था। आरम्भ में मुहकम दीन अपना नया नाम सुनते ही भड़क उठता -- बाबा टिक्की कहने वालों के पीछे पड़ जाता। गालियाँ देता, पत्थर मारता -- फिर धीरे-धीरे वह इस नए नाम को सुनने का अभ्यस्त हो गया, उसे इस नाम में अपनत्प दिखाई देने लगा था। जब कोई छोटा बच्चा पाँच-दस रुपए खर्चने के लिए मुहकम दीन की दुकान पर आता और उसे अपनी तोतली भाषा में "बाबा तिक्की" कहता तब उसे बहुत भला लगता, उसके भीतर प्यार

उमड़ आता वह उस बच्चे को गले से लिपटा लेता, उससे प्यार करता और फिर दूर तक उसे जाते हुए देखता रहता, उसके पश्चात् ठंडी आह भरकर बहुत देर तक विचारों के गहरे कुएँ में डूबा रहता। कुएँ से बाहर निकलते ही वह तूफानी लहरों में डुब्कियाँ खाने लगता और ऊँची आवाज़ में बोलने लगता -- "मैं शादी करूँगा, मेरी शादी कराओ।" --

उम्र की गठरी भारी होने के उपरान्त भी उसके शौक़ में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। लुच्चे-लफंगे उसके साथ दोस्ती करते रहते, उसको सब्ज़ बाग़ दिखाते रहते और उसका माल डकार कर उसका उपहास उड़ाते रहते -- बाबा टिक्की लोगों के लिए तो हँसने-खेलने का एक खिलौना बन गया था, परन्तु हँसी और ठहाके उसके दिल में तीर बनकर चुभते -- लोगों का रंग-ढंग देखकर उसके दिल का खिलौना चूर-चूर हो जाता, उसका चेहरा पीड़ा दर्शाते एक चित्र की भांति बन जाता, वह जलता-कुढ़ता रहता परन्तु किसी से कुछ न कहता।

एक दिन बाबा टिक्की दुकान के अन्दर सौदा बेचते-बेचते बेहोश हो गया, लोग दौड़े, उसको पानी पिलाया, सिर और पैरों की मालिश की। जब उसकी तनिक चेतना लौटी तब पीड़ा से कराहने लगा, शीघ्र ही उसे अस्पताल ले गए। डॉक्टर निरीक्षण करने के बाद इस परिणाम पर पहुँचे कि उसे अण्डकोषों का कैंसर है। डॉक्टरी रिपोर्ट के अनुसार कैंसर का यह रोग उसे बहुत पुराना था। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु से ही उस रोग के लक्षण उसके भीतर आना आरम्भ हो चुके थे परन्तु वह इस बात को लेकर चकित थे कि मुहकम दीन इतनी देर किस भांति जीवित रहा -- उन्होंने बाबा टिक्की के अण्डकोषों का ऑपरेशन किया, गंदी पीप बाहर निकाली, सूजन में थोड़ी सी कमी हुई, पीड़ा में थोड़ा अंतर हुआ -- और वह अर्धचेतन अवस्था में बड़बड़ाने लगा -- "वह देखो -- एक परी सुन्दर कपड़े पहने और गहनों से सजी-धजी दूर आकाश से मुझे बुला रही है -- उसके साथ बच्चे भी हैं -- गोल-मटोल -- गोरे-गोरे -- प्यारे-प्यारे -- बच्चे,

अपने नन्हे-नन्हे हाथों से -- मुझे गुड़ियों का खेल खेलने के लिए बुला रहे हैं -- वह देखो, एक बहुत ऊँची सीढ़ी हवा में खड़ी है -- मुझे सीढ़ी पर चढ़ने दो -- मुझे जाने दो -- मुझे न रोको --" और बाबा टिक्की झट उठ के बैठ गया। और ज़ोर-ज़ोर से चीखें मारने लगा, चिल्लाने लगा -- "मेरी शादी कराओ, मेरी बीवी लाओ -- मुझे मेरे बच्चों के पास ले चलो -- मुझे मेरे घर ले चलो" --

कुछ ही देर में उसकी आवाज़ मद्धम हो गई -- फिर आवाज़ गूंगी हो गई और आँखें आकाश की ओर जा लगीं -- शायद वह हवा में टंगी हुई आकाश की ओर जाने वाली सीढ़ी पर चढ़ गया था।

हलाला

राजाँ कोई बहती हुई शहतीरी नहीं थी जिसे नवाब दरिया से पकड़ कर लाया हो। वह तो भरी बहारों की घनी छाँव में पली-बढ़ी, हँसते-बसते घर की सन्तान थी और माँ-बाप ने बड़ी धूमधाम से नवाब के साथ उसका विवाह किया था। राजाँ जब तक कुँवारी रही उसके परिवार के मान-सम्मान का सितारा शिखर पर रहा। उसका बाप जमालदीन शहर का सबसे बड़ा ठठेरा था और उस पर यह कहावत सटीक नहीं बैठती थी कि ठठेरों की गागर टपकती रहती है बल्कि उसके कारोबार से घर में ख़ुशहाली थी। जमालदीन ने बेटी को विदा करते समय कोई कन्जूसी नहीं की थी। बर्तन-भांडे, कपड़े-लत्ते और गहने जी भर कर दिए थे। दहेज देखकर नवाब अली की आँखें फटने लगी थीं। उसे दहेज रखने के लिए अपनी हवेली भी छोटी लग रही थी।

सुहागरात को सन्दली रंग की राजाँ सन्दल की गहरी सुगन्ध की भांति नवाब के हृदय में उतर गई थी। उसके गालों पर बहारें मुस्करा रही थीं। गुलाबी होठों पर मस्ती की चिकनाई तैर रही थी। गहरी सियाह ज़ुल्फ़ें जब फुंकारते हुए साँप की भाँति मख़्मली तकिये पर बिखरीं तो नवाब से रहा न गया। वह अपने अनियंत्रित मन को गर्म-गर्म श्वासों की टकोर देने लगा परन्तु मन में भड़कती हुई लपटें जब गगन को छूने लगीं तो वह जलती हुई अग्नि को गर्म पानी से बुझाने के लिए राजाँ की रेश्मी काया के साथ मख़्मली कम्बल में घुस गया। नवाब ने तो शायद अपनी अग्नि को शीतल कर लिया परन्तु ठंडे-ठार पानी से नहाने के उपरान्त भी राजाँ के शरीर की तपन नहीं बुझी।

सवेरे जब राजाँ ने कनखियों से नवाब को देखा तो उसका

तन-मन बोल उठा कि इस मिट्टी के पहलवान की टाँगें रेत की हैं। उसने मन ही मन में नवाब को ताना दिया "भरी जवानी माँझा ढीला।" परन्तु नवाब भी क्या करता। वह नया-पुराना एक ही जैसा था। राजाँ अपने माँ-बाप के मान-सम्मान तथा आबरू का चोला पहन कर वडेरों की हवेली में आई थी। इसलिए वह सब्र शुक्र करके नवाब के संग गुज़र बसर करने लगी और अपने अर्क़ में ग़र्क़ हो गई। नवाब उसके साथ मीठा बोलता और उस पर मोती लुटाता। वह उसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने का जतन करता परन्तु वह नहीं जानता था कि औरत पहले "नर" और बाद में "ज़र" माँगती है। भूख लगने पर राजाँ को वैसे तो चने भी बादाम का स्वाद देते परन्तु बादाम खाने से भी भूख कहाँ मिटती है। राजाँ के शरीर की मुँह बंद हंडिया जब इश्क़ की तपिश में उबलने लगती तो बेकरतूत नवाब के कारण वह अपने आप को कोसती और उसकी प्यास और भी नंगी हो जाती। नवाब समझता था "औरत घर की रानी और मर्द ढोए भार" परन्तु वह नहीं जानता था कि "जो औरत को ज़ेर करे वही उतरे पार"। राजाँ इस हवेली में स्वयं को बंदर के गले में मोतियों का हार समझती। उसके लिए नवाब का बाहरी अस्तित्व प्रकाशित था परन्तु भीतरी अंधेरा। अब वह सोचने लगी कि "मियाँ तो मर गया आई के साथ, बीवी क्यों मरे रज़ाई के साथ।" उसने निर्णय कर लिया कि वह अपनी प्यास को बनवास नहीं देगी। थोड़े समय में ही राजाँ की बुद्धि का दीपक बुझ गया। उसने लाज-शर्म का चोला उतार कर समाज के मुँह पर दे मारा और पर्दे में अपनी स्वाभाविक इच्छा की शान्ति के लिए माध्यम खोजने लगी। वह हवेली की दहलीज़ को लांघना नहीं चाहती थी परन्तु हवेली के अन्दर उसकी दशा ऐसी थी कि "कोठे की दौड़ कगार तक।" इसलिए घर की बिल्ली घर ही में म्याऊँ करने लगी। इस म्याऊँ के निमन्त्रण के अन्दाज़ को सबसे पहले जवाद अली ने समझा। जवाद अली नवाब अली ख़ान का भाई और हवेली का लाडला। राजाँ जवाद में रुचि लेने लगी और बड़े प्रेम और चाव के साथ उसे देसी घी की चूरी खिलाने लगी और उसका मन फुसलाने लगी। जवाद ने अपने कुँवारेपन की गठरी की

गाँठ बड़ी दृढ़ता से बाँध रखी थी लेकिन भरे भराए घर में राजाँ ने वह गाँठ खोल दी और सारी पूंजी लूट ली।

नवाब सारा दिन ज़मीनदारी के कामों में व्यस्त रहता या फिर मित्रों के साथ शिकार खेलने के लिए चला जाता। पीछे से जवाद घर की फुलवाड़ी ही में सन्दली तीतरी का शिकार कर लेता। राजाँ का मन समुद्र की भाँति गहरा था इसलिए नवाब इस समुद्र की ठाटें मारती लहरों की कहानी समझ नहीं पाया। राजाँ मुर्गी की भांति ख़ाक उड़ाने लगी और नवाब के सिर पर डालने लगी। अवसर मिलते ही राजाँ वर्षा की भांति जवाद पर बरसती और जी भर कर उसे भिगोती। भला "रहने के लिए घर हो और मौज-मस्ती के लिए ज़र हो" तो फिर औरत को और क्या चाहिए।

दिलों के मेले सजने लगे। वह अति प्रसन्न थी। अब उसका हाथ काम की ओर तथा मन यार की ओर रहता। वह अब अपनी साँसों का सदक़ा उतारती और ख़ूब मौजें मारती। जवाद जब कभी भी उसे पाप और पुण्य का हिसाब समझाने लगता तो राजाँ उसे बड़े प्रेम से कहती "यह जग मीठा, अगला किस ने दीठा" इस प्रकार दो मुल्लाओं में मुर्ग़ी हराम होने लगी। राजाँ रोटियों के साथ बोटियाँ खाने लगी। वह प्रसन्न थी कि "चाहे मोटियाँ हों या छोटियाँ, है तो दोनों एक ही तवे की रोटियाँ।" उसकी कोख से एक बेटे और दो बेटियों ने भी जन्म लिया। पर राजाँ की पोशाक और खुराक में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह खसम का खाती और यार के गुण गाती और साथ ही कहती कि अपने घर में कोई छाज बजाए या छलनी किसी को क्या।

हवेली में कुछ चिड़ियों का भी रैन बसेरा था जो हवेली के आंगन में दाना चुगती रहतीं और हवेली की ओट में राजाँ और जवाद को मौज-मस्ती करते हुए देखती रहतीं। वह अमानत में ख़यानत करने के लिए जवाद को ताने मारतीं और राजाँ को कोसतीं। धीरे-धीरे नवाब को इस बात का भान हो गया कि उसके सोने में खोट है। वह राजाँ से पूछने लगा :

"मैं क्या सुन रहा हूँ। तू जवाद के साथ......तुम्हें शर्म

आनी चाहिए। वह तेरा देवर है, तेरे बेटे जैसा।"

"यह बकवास है। तुम मुझ पर तोहमत लगा रहे हो। तुम्हें कोई अधिकार नहीं मुझे इस प्रकार अपमानित करने का। मैं अपने माँ-बाप की लाज रखते हुए तेरे जैसे ढीले ढग्गे के साथ जीवन व्यतीत कर रही हूँ। फिर भी तुम पर संदेह कर रहे हो।" राजाँ गरजी।

"हाँ-हाँ तुम अब अरबी घोड़े पर सवारी कर रही हो ना इसलिए अब मुझे ढीला ढग्गा कह रही हो परन्तु मेरी एक बात सुन लो जिस दिन मैंने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ लिया उसी दिन तुम्हें तलाक़ दे दूँगा और चोटी पकड़ कर हवेली से बाहर निकाल दूँगा। फिर ठठेरों के चौबारे पर बैठी कबूतर उड़ाती रहना।" नवाब क्रोध में उबल रहा था।

"ठीक है ठीक है, कुत्ते भौंकें तो चाँद को क्या?"

संदेह हवेली के भीतर प्रवेश कर चुका था और विश्वास ड्योढ़ी से बाहर निकल गया था। नवाब का मन अब किसी भी काम में नहीं लग रहा था। खुशियाँ उसके हाथों से छूट चुकी थीं। उसकी आत्मा उजाड़ हो चुकी थी। वह अधीर रहने लगा था। उसने ज़मीनदारी का काम भी अपने मुन्शी के हवाले कर दिया। उसने शिकार खेलना भी छोड़ दिया और हवेली की निगरानी पर बैठ गया। उसे इस बात का बड़ा दुःख था कि जवाद ने उसके मान-सम्मान पर हाथ डाला है परन्तु वह समझता था कि गिद्दा कभी एक हाथ से नहीं पड़ता। वह जानता था कि जब तक सुनार खोटा नहीं होगा, सोना खोटा नहीं हो सकता। उसे ज्ञात हो चुका था कि यह रंगत दोनों की संगत का परिणाम है। इसलिए वह राजाँ और जवाद को जुगलबंदी करते हुए पकड़ना चाहता था। जवाद की आँख भी अब प्रायः फरकती रहती। इसलिए वह अब राजाँ से कन्नी कतराने लगा था परन्तु राजाँ भी ठठेरों की कबूतरी थी, हुश करने से उड़ने वाली नहीं थी। भला वह प्रेमी की जुदाई कैसे सहन करती। उसे जब भी अवसर मिलता वह छाज को छलनी में छलती और दिलों में अमृत रस घोलती।

राजाँ और जवाद को प्रेम की भांग पी कर तरंग में आते

देख कर अब तो हवेली के नौकर-चाकर भी नवाब की खिल्ली उड़ाते। फिर एक दिन छाज-छलनी का खेल पकड़ा गया। जवाद को राजाँ के अंक में देख कर नवाब की आँखों में लहू उतर आया। उसके अस्तित्व से आग की लपटें निकलने लगीं और उसकी ज़ुबान फुंकारें मारने लगी।

"तलाक़....तलाक़....तलाक़...."

जवाद भाग गया। राजाँ ने नवाब के पाँव पकड़ लिए।

"मुझे माफ़ कर दो। मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे साथ जवाद ने ज़बरदस्ती की है...." वह रोने लगी, चिल्लाने लगी परन्तु यहाँ उसका कोई नहीं था। न माँ, न बहन, फिर कौन सुनता यह विलाप।

"छिनाल तू मेरी इ़ज़्ज़त की लुटी हुई कमाई बन गई है। तेरी बेशर्मी ने हवेली के स्वाभिमान पर डाका डाला है। इस हवेली में मक्खन खाते हुए तेरे दाँत घिस गए हैं इसलिए तू यहाँ से दफ़ा हो जा नहीं तो मैं तेरे दाँत तोड़ दूँगा। मैं तुझे तीन बार तलाक़ दे चुका हूँ अब तू मेरी मन्कूहा नहीं है। अब तू आज़ाद है अब जा और सूरों को खजूरें खिला....."

"मेरा कोई दोष नहीं.....मुझे माफ़ी दे दो....." राजाँ सफ़ाई पेश करने लगी परन्तु अन्दर से वह जानती थी कि कुएँ में गिरी हुई ईंट कभी भी सूखी नहीं निकलती।

"चल चल......बाहर का रास्ता ले, तू तो कंजरी है और मक्खी और कंजरी कभी अंदर नहीं रहतीं। तेरी जैसी बदचलन बीवी शौहर के लिए गाली है....." वह राजाँ को धक्के मारने लगा और बाज़ू पकड़ कर बाहर निकालने लगा।

"बस नवाब बस......तूने बहुत बकवास कर लिए तूने बहुत गालियाँ दे दीं....जब तूने मेरे साथ सभी रिश्ते ही तोड़ लिए हैं तो फिर तुझे कोई अधिकार नहीं है मुझ पर हाथ उठाने का......मुझे बुरा-भला कहने का.....मैंने जो किया वह भूल से, मेरे कर्म ख़ुदा देखे परन्तु तू यह बता कि तेरे पास कौन सा गुण है जो तू अपनी इ़ज़्ज़त को रो रहा है। तेरे पास तीर है न कमान

फिर तू कहाँ का पठान? अरे रो तो मैं रही हूँ अपने भाग्य को जो तेरे जैसे बे-करतूत के पल्ले बाँध दी गई। मान-सम्मान और शालीनता तभी स्थित रहती है जब किसी के पास उदारता हो। तेरे पास तो कौड़ी भी नहीं फिर तू कहाँ का उदार.....?"

राजाँ ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। वह सिर उठाकर हवेली से बाहर निकल आई और फिर से ठठेरों की बस्ती में पहुँच गई। राजाँ को देखकर जमाल दीन के चौबारे की दीवारें लरज़ उठीं। जमालदीन बहुत दुखी था। जात बिरादरी में उसका बड़ा अपमान हुआ था। वह तलाक़ को नरक की आग कहता जिसमें औरत जलती है। इसलिए वह बड़े बुजुर्गों से बातचीत करके राजाँ और नवाब को फिर से मिलाने का जतन करने लगा। राजाँ ने कभी भी नहीं सोचा था कि नवाब उसे तलाक़ दे देगा। उसे तो घर की खिचड़ी खाने में आनन्द आ रहा था परन्तु अब भला वह क्या कर सकती थी। हड़बड़ी काम बिगाड़ती है। गुस्सा हराम और आदमी बदनाम होता है। राजाँ इस सारे विषय पर चिंता करके मुरझाई रहती। वैसे तो वह एक ऐसी सयानी बिल्ली थी जो हर प्रकार के चूहे दबोचने की कला जानती थी परन्तु अब वह उम्र के उस भाग की ओर अग्रसर थी जहाँ स्त्री यह नहीं कह सकती थी कि "जिस के पास गहना, उसे भूखा क्यों रहना" उसके शरीर के गहने अब पालिश करने पर भी पीले पड़ते जा रहे थे और वह समझने लगी थी कि "चार दिहाड़े शौक़ के, फिर वही कुत्ते भौंकते।" उसकी बुद्धि का दीपक जगमगा उठा था और समझ की लौ में उसने देख लिया था कि सभी चढ़ते सूरज को ही अर्घ्य देते हैं डूबते सूरज को कोई पानी नहीं देता। वह जान चुकी थी कि माँ-बाप, सौन्दर्य, यौवन और काली अलकें सदा नहीं रहतीं और अब तो उसके मन के किसी कोने में सोई हुई माँ भी जाग चुकी थी जो चाहती थी कि अपने बच्चों को सीने से लगाए और उन्हें ममता भरी लोरियाँ सुनाए। इसलिए उसने अपने बाप जमालदीन के प्रयासों को नकारा नहीं।

वडेरों की हवेली वैसे तो खड़ी थी परन्तु नवाब के मन की

झोंपड़ी गिर चुकी थी। उसकी तो दुनिया ही उजड़ चुकी थी। वह अत्यधिक निराश था। वह अपने बच्चों को देख कर मुर्झा जाता और कहता..... "बाबा फ़रीद, औरतें ज़ालिम, मर्द ग़रीब...." वह अकेलेपन की सूली पर चढ़कर विचारों में डूबा रहता कि "यह कैसी चली गर्म हवा कि उजड़ गया तख़्त हज़ारा।" नवाब की टूट-फूट, दिल को देखकर बड़े बुजुर्ग हवेली के आस-पास मंडलाने लगे और नवाब को समझाने लगे।

"क्षमा करना भी एक नेकी है बेटा और ईश्वर क्षमा करने वालों का स्तर ऊँचा रखता है...... तू राजाँ को क्षमा कर दे और उसके साथ फिर निकाह कर ले। वह अपनी भूल पर बहुत पछता रही है। उसने अपमान की बड़ी आग सेंक ली है। उसे बख़्श दे। वह अब तुम्हारी चादर को पूरा आदर देगी।"

"परन्तु ग़फूर चाचा! राजाँ की हरामकारी कोठे चढ़कर कूकी है। मैं अपने शरीकों में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहा। आपको तो पता ही है कि शरीक चाहे मिट्टी का ही हो तो भी बहुत बुरा होता है। राजाँ ने तो मेरी इज़्ज़त मिट्टी में मिला दी है। व्यभिचारिणी स्त्री को तो ईश्वर भी पसन्द नहीं करता है, मैं तो मनुष्य हूँ। फिर मैं दोबारा कैसे कहूँ कि आ बला मुझे चिपट। बुजुर्गों! अन्नदाता तो हर कोई हो सकता है परन्तु रन्न दाता कोई नहीं होता।"

तेरी बात लाखों की है बेटा परन्तु बड़े सिरों की पगड़ियाँ भी बड़ी होती हैं। इसलिए तू दरियादिली दिखा और बिगड़े हुए काम को संवार ले। तेरे साथ-साथ जमालदीन की भी बड़ी रुसवाई हुई है। वह भी बिरादरी में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहा है। उसके मान-सम्मान की मैली चादर को भी धो डाल। उसका मान भी रख ले। हम उसका विश्वास दिलाते हैं। तू ईश्वर पर भरोसा कर क्योंकि ईश्वर ही ज़रिया बनाता है। ईश्वर ही तोड़ता है और जोड़ता है और फिर अपने बच्चों का भी ध्यान कर। उनके पालन-पोषण के लिए ही राजाँ के साथ फिर से निकाह कर ले। बेटा थाली में नमक नहीं तोड़ा करते। तू अपना घर संभाल। लोगों

का क्या है, जितने मुँह उतनी बातें। तू अपनी ख़ुशियाँ देख। अकेली जान कंडियाली और औरत के साथ हरियाली है। नवाब अकेली तो लकड़ी भी नहीं जलती। इसलिए हमारी बात मान ले। अभी भी गिरे हुए बेरों का कुछ नहीं बिगड़ा।"

"आप मेरे बड़े हैं, बुज़ुर्ग हैं। मेरी भलाई चाहने वाले हैं। इसलिए मैं आप लोगों की बात मान लेता हूँ। आप लोग फटा आँचल सीना चाहते हैं तो मुझे कोई कोई आपत्ति नहीं, परन्तु मेरी एक शर्त है......?

"बोल नवाब बेटा बोल.....क्या चाहता है तू?"

"ग़फ़ूर चाचा, मैं केवल यह चाहता हूँ कि राजाँ पहले उमरा करे या हज और अपने गुनाहों को बख़्शवाए। अपने ऐबों का कुफ़ारा अदा करे। उसके तन और मन की मैल धोई जाए। फिर मैं राजाँ को अपनी मन्कूहा बना लूँगा।"

हाजी ग़फ़ूर ख़ान और रहमत अली ने यह शुभ समाचार जमालदीन को सुनाया। नवाब की ओर से लगाई गई शर्त भी बता दी। जमालदीन राजाँ को उमरा कराने के लिए तैयार हो गया और इस प्रकार ठठेरों के चौबारे के सुर्ख़े, चीने, लक़े और जोंसरे गगन में कलाबाज़ियाँ खाने लगे। कुछ समय पश्चात् जमालदीन राजाँ को उमरा करा के लौटा तो बड़े बुज़ुर्ग गोपनीयता के साथ मौलवी जी के पास गए और नवाब और राजाँ का निकाह करवाने के लिए कहा। मौलवी जी ने बुज़ुर्गों को शरअ़ (इस्लामी कानून) के विषय में समझाया और कहा कि नवाब के साथ फिर से निकाह करवाने से पूर्व राजाँ का हलाला होना आवश्यक है अर्थात् उसका निकाह किसी दूसरे पुरुष के साथ कराना पड़ेगा। फिर उससे तलाक़ ले कर नवाब के साथ निकाह हो सकेगा।"

"मौलवी जी! कोई ऐसा मार्ग निकालिए कि सीधा दोनों का निकाह पढ़ा दिया जाए और इस हलाले की आवश्यकता ही न पड़े। नवाब किसी दूसरे व्यक्ति के साथ राजाँ का निकाह कराना बिल्कुल सहन नहीं करेगा।"

"ग़फ़ूर ख़ान साहिब! यह कैसे हो सकता है......? यह

बात शरअ़ के विरुद्ध है और फिर शरीअ़त पर चलना हर मुसलमान मर्द और औरत पर फ़र्ज़ है। इसलिए आप लोग नवाब को समझाओ। उसे शरीअ़त का क़ानून पढ़ाओ और उस पर अमल करने की हिदायत करो। अल्लाह रहम करने वाला है। वह सब की ख़ताएँ माफ़ कर देता है।

हाजी ग़फूर ख़ान और रहमत अली शरीअ़त की किताबें ले कर नवाब की हवेली में आए और शरीअ़त के हवाले से उसे मौलवी जी की दलीलें समझाईं और बताया कि उसके साथ निकाह पढ़ाने से पहले हलाला करना ज़रूरी है। नवाब ने स्वयं भी शरीअ़त का वह भाग पढ़ा जिसमें मौलवी जी की बताई हुई बातों का उल्लेख था। वह विस्मित तथा चिंतित था कि यह कौन सा दण्ड है कि हलाले के बहाने राजाँ को दूसरे पुरुष के हवाले कर दिया जाए, चाहे एक रात के लिए ही सही। पहले यह काम छुप-छुपा कर होता था परन्तु अब शरीअ़त की आड़ में सरेआम राजाँ दूसरे पुरुष की पत्नी बन कर उसके साथ रात व्यतीत करेगी। फिर इस बात का भी क्या भरोसा कि वह व्यक्ति दूसरे दिन राजाँ को तलाक़ देगा भी कि नहीं? वह बड़ा चिंतित हुआ। वह पछता रहा था कि यदि ऐसी ही परिस्थितियाँ पैदा होनी थीं तो उसने राजाँ को तलाक़ ही क्यों दिया था। नवाब ने ग़फूर चाचा से सोचने का समय माँगा।

नवाब पूरी रात ठंडे दिमाग़ से सोचता रहा परन्तु यह हलाले की छिपकली बार-बार उसके गले में अटक जाती। यदि छिपकली को थूकता है तो शरीअ़त का उल्लंघन होता है और कुफ़र का फ़तवा लग जाता है यदि निगलता है तो ज़मीर का पंछी हलाल होता है जो पहले ही घायल था। उसने सारी परिस्थितियों पर ग़ौर किया और आख़िरकार हलाले का कड़वा घूंट पीने के लिए भी तैयार हो गया।

जमालदीन और ग़फूर चाचा एक ऐसे व्यक्ति की खोज में निकल पड़े जो रोज़ी-रोटी के लिए मजबूर हो और जिसे कुछ पैसे देकर इस शर्त पर राजाँ से निकाह करने के लिए तैयार किया

जाए कि निकाह के दूसरे दिन वह उसे तलाक़ दे देगा। बड़ी खोज के पश्चात् उन्होंने बड़ा ठोंक-बजा कर और ठन-ठनका कर एक उजाड़ मस्जिद के नमाज़ी बरकत को खोज निकाला और उसके साथ राजाँ का निकाह करवा दिया। राजाँ, जिसका मुँह गर्म दूध से जल चुका था, अब छाछ को भी फूँकें मारने लगी और दिल ही दिल में कहने लगी कि "भेड़ों ने तो ऊन ही उतरवानी है, कोई उतार ले।"

दूसरे दिन समझौते के अनुसार बरकत से तलाक़ ले लिया गया। राजाँ की इद्दत पूरी होने पर मौलवी जी ने नवाब का निकाह उसके साथ फिर से पढ़ा दिया और ऐसे राजाँ जिस लड़ी का मोती थी उसी में पिरो दी गई और फिर एक नया जीवन आरम्भ करने से पहले वह दोनों हज करने चले गए ताकि अल्लाह याद रहे और घर आबाद रहे।

गहरे पानियों का दुख

मैं कब से इस गहरी झील में तैर रहा हूँ परन्तु झील में कोई हलचल नहीं। लहरें शान्त हैं, जलतरंगें मौन हैं। मैं चाहता हूँ कि लहरें उछलें और बिफरें। तूफान आए और मैं डूब जाऊँ। परन्तु झील शान्त है। मौन -- स्थिर।

यह झील शताब्दियों पूर्व मचली थी। इसमें हलचल उत्पन्न हुई थी। इसकी लहरें उछली थीं परन्तु उस समय झील में तैरने वाला कोई न था और जो व्यक्ति इस झील में उतरा था वह तैरना नहीं जानता था बस किनारे पर बैठ कर अपने पैरों से स्वच्छ पानी को दूषित किया करता था -- पर झील तो बहुत गहरी है। इसके ऊपरी तल के हिलने से अन्दर ठहरे कुँवारे जल पर कोई प्रभाव न पड़ा और धीरे-धीरे इस ठहरे हुए निर्मल, कोमल जल पर काई उगने लगी। काई ने झील को घेर लिया, उसकी सुन्दरता धूमिल पड़ने लगी। वह मुरझाने लगी, प्रदूषण का शिकार होने लगी और एक लम्बे अंतराल तक झील में पैर पड़े रहने से उस व्यक्ति के पैर गल-सड़ गए। और फिर बिन पैरों का यह व्यक्ति दुर्घटनाओं का शिकार होकर घनेरे बादलों में विलीन हो गया। धूल-मिट्टी की आँधी में नष्ट हो गया तथा इस प्रकार झील के ऊपरी तल का हिलना भी बंद हो गया। झील के स्थिर रहने से पानी पर काई की फसल फैलने लगी -- और अब -- यह झील काई से भरी पड़ी है और मैं एक कुशल गोताख़ोर की भांति गहरी शांत झील से काई निकालने के प्रयास में पानी की तह तक डुब्कियाँ लगा रहा हूँ और जमी हुई काई को खुरच रहा हूँ और धरती के मुँह पर मार रहा हूँ ताकि धरती का मुँह बंद रहे और वह अपशब्द अपनी जीह्वा से न निकाल सके परन्तु मुझे भय है कि

कहीं काई खुरचते-खुरचते मेरे नाखुन ही न उतर जाएँ। उंगलियों से लहू न रिसने लगे क्योंकि झील की तह में जमी काई के अन्दर पत्थर की एक सुन्दर मूर्ति भी पड़ी हुई है। मैं काई में फँसी मूर्ति को ठंडे-ठार पानी से बाहर निकालना चाहता हूँ, उसकी काया को खुरचना चाहता हूँ। उसमें उष्णता भरना चाहता हूँ। उसे पिघलाना चाहता हूँ परन्तु वह मूर्ति भावनाओं को नष्ट करने पर तुली हुई है। उसकी इच्छाओं का पंछी तो खुले गगन में उड़ना चाहता है परन्तु वह उसके पंख काट देना चाहती है। वह झील से बाहर निकलने पर सहमत नहीं है परन्तु मैंने भी दृढ़ निश्चय कर लिया है कि ऐसा नहीं होने दूँगा, मैं उसे निर्जीवता की चक्की में पिसने न दूँगा। उसे जमी हुई निराशा के विष से गर्भवती नहीं होने दूँगा। उसे स्मृतियों की धुंध में भटकने नहीं दूँगा। मैं उसकी सुलगती आत्मा में जीवन के बीज बो दूँगा तथा माली बनकर उसकी आत्मा के उद्यान को सींचूँगा ताकि गुलाब खिलें और सुगन्ध चहुँ ओर फैल जाए। वह मूर्ति राधा की शक्ल की है तथा मेरी शक्ल कृष्ण से मिलती है। इसलिए वह मेरी राधा है और मैं उसका कृष्ण कन्हैया। मैं उसके लिए प्रेम-गीता की रचना करना चाहता हूँ जिसमें अर्जुन के लिए केवल यह आदेश लिखा होगा कि वह प्रेम के दीपक जलाए ताकि प्रेम-प्रभु के दर्शन होते रहें और प्रार्थना चलती रहे, उस समय तक जब तक सृष्टि का तिलिस्म न टूटे। परन्तु वह है कि सृष्टि का तिलिस्म टूटते देखना नहीं चाहती। वह कहती है -

"जगत का यह समुद्र अत्यन्त गहरा है। यहाँ कामनाओं के टापू डूबते-उभरते रहते हैं -- यहाँ का इतिहास शरीर की नग्नता से आरम्भ होकर सभ्यता के परिधान तक जाता है तथा यह सभ्यता एक वन है। सभ्य मानव-भक्षियों का वन। यहाँ श्वेत तथा उजले कीट वृक्षों को चाट रहे हैं। वृक्षों की जड़ें खोखली हो रही हैं। वह नंगे हो रहे हैं तथा हम सब विवश हैं कुछ नहीं कर सकते। बस जीवन का बोझ उठाए धरती में धँस रहे हैं। हम सब अपने शरीरों की सूलियों पर टंगे हैं फिर भी तुम प्रेम-गीता की रचना करना चाहते हो। प्रेम के दीपक जलाना चाहते हो, प्रेम के

ईश्वर का दर्शन करना चाहते हो।

देखो राधा अपनी अनुभूतियों की भट्ठी में इस प्रकार तेल न डालो कि तुम्हारा अस्तित्व ही राख हो जाए। दुनिया की कोई वस्तु स्वयं में बुरी नहीं है। हमारे बुरे कर्मों से वह बुरी हो जाती है। इसलिए बुराई का अस्तित्व वास्तविकता नहीं है। केवल विश्वसनीयता है। जबकि जीवन एक वास्तविकता का नाम है। इस सत्य को समझो। इससे पलायन मत करो, जीवन ब्रह्माण्ड में बिखरे हुए रंग हैं -- जीवन प्रेम है, प्यार है परन्तु तुम्हारे जीवन का भवन नितान्त वीरान पड़ा है। कमरे उजाड़ हैं। मैं तुम्हारे दिल की कोरी दीवारों पर जीवन के चित्र सजाना चाहता हूँ। मैं तुम्हें प्रसन्नता से भरपूर सम्पूर्ण जीवन देना चाहता हूँ। इसलिए अपने दिल का द्वार मेरे लिए बन्द न करो।"

"मैंने वह मार्ग त्याग दिया है कृष्ण, जो घनिष्ठ सम्बन्धों के वन को जाता है। मैंने स्वप्न बुनने छोड़ दिए हैं तथा अपने आँचल से प्रेम नाम की धूल झटक दी है। तुम्हें ज्ञात नहीं कृष्ण! बहुत पहले मैंने मृगतृष्णाओं के पीछे भटकते हुए मन के किनारे पर एक घरोंदा बनाया था। उसमें प्रेम का दीपक जलाया था। फिर एक दिन चुपके से किसी ने मेरा द्वार खटखटाया था तथा मैंने उसे भीतर बुलाया था। मैं उसे अपनी काया का आवरण बनाना चाहती थी -- तुम जानते हो स्त्री एक बेल की भांति होती है जो चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो जाए उसे हर समय एक दृढ़ सहारे की आवश्यकता होती है। मैं उसे अपना सहारा बनाना चाहती थी -- अपना एकाकी आश्रय-स्थल -- परन्तु वह तो नदी किनारे उगा एक ऐसा वृक्ष था जिसकी जड़ें खोखली थीं। हम देर तक अँधेरे-उजाले का खेल खेलते रहे। मैं उसमें हरियाली लाने का प्रयत्न करती रही तथा वह मुझे बांझ बनाता रहा। वह एक ऐसा बादल था जो गरज सका न बरस सका। वह व्यक्ति मेरे जीवन में एक लपकती हुई कौंध की भांति प्रविष्ट हुआ तथा मेरी आत्मा को जला कर अन्दर से निकल गया। मैं उसे पकड़ भी न सकी और फिर मैं झील में डूब गई। काई से भरी हुई झील में -- मैं

बर्फ़ सी जम गई। मैंने अश्रुओं की पूंजी को बिना किसी शोक के लुटाया परन्तु कुछ न पाया। इसलिए तुम झील की तह में आशाओं के दीपक मत जलाओ। मूर्ति को पिघलाने का प्रयास तज दो कृष्ण।"

"राधा! हम सभी प्रेम की कामना करते हैं। यह हमारी प्रथम स्वाभाविक आवश्यकता है। हमारे मन की प्रथम इच्छा। इसलिए तुम मुझे त्याग का निमन्त्रण मत दो, मैं तुम से प्रेम करता हूँ तुम भी मुझे चाहती हो परन्तु व्यक्त नहीं करतीं। यह बात मैंने तुम्हारे शरीर पर लिखे अभिलेख से पढ़ ली है। तुमने अपनी भावनाओं को अपने अस्तित्व के दुर्बल दुर्ग में बंद कर लिया है क्योंकि तुम उस क्षण से भय खाती हो जब भावनाओं का बाँध टूट जाएगा तथा तुम्हें तिनके की भांति बहा ले जाएगा। इसलिए जाल से बाहर आ जाओ राधा, जो तुमने स्वयं ही अपने चारों ओर बुन रखा है।"

"यह सही है कृष्ण कि मैं तुम्हें चाहती हूँ परन्तु तुम्हारी दृष्टि में प्रेम शरीरों के समागम का नाम है जबकि मेरी दृष्टि में यह एक अनश्वर भावना है। एक सुगन्ध है, आत्मा को सुगन्धित करने वाली सुगन्ध -- प्रेम आत्माओं के मिलाप का नाम है क्योंकि हम आत्मिक रूप में एक थे तथा शरीरों से ऊपर उठे हुए थे। सूर्य की भांति चमकीले तथा झरनों के पानियों की भांति स्वच्छ व निर्मल। जब शरीरों में बंद हो गए तो हमें भागों में विभक्त कर दिया तथा हमारा ऐक्य खो गया। इसलिए आओ शरीरों का बोझ उतार फैंकें। कामनाओं की बेड़ियाँ तोड़ दें, बंधनों से निकल भागें तथा अपना वास्तविक स्थान पा लें।"

प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार की आत्माएँ होती हैं, राधा! एक नश्वर तथा दूसरी अनश्वर -- अनश्वर आत्मा मन की कामनाएँ मिटा देना चाहती है परन्तु नश्वर प्रेम और आनन्द की रसिया होती है। मैं भी एक नश्वर आत्मा हूँ। मैं तुम्हें प्रेम के आनन्द की अनुभूति कराना चाहता हूँ। शरीरों के समागम से स्वर्ग में ले जाना चाहता हूँ क्योंकि शरीरों का समागम ही मुक्ति का साधन है। आत्मिक प्रेम का सेतु है। राधा! तुम और मैं केवल एक निज हैं। इससे भिन्न जो कुछ है वह वास्तव में कुछ भी नहीं है।

केवल दृष्टि का भ्रम है।"

कृष्ण! तुम्हारे मन-मस्तिष्क का वातावरण समभाव नहीं है। तुम्हारी बातों से बौद्धिक ज्ञान का कोई हस्तक्षेप दिखाई नहीं देता। तुम प्रेम को केवल अपने मापदण्ड से ही मापना जानते हो।"

"प्रेम का स्थान बुद्धि से बहुत ऊँचा है राधा, बहुत ऊँचा -- और प्रेम तुला है न मापदण्ड। यह तो जीवन तथा मृत्यु के मध्य एक निधि है जिसका गुणा-भाग नहीं रखा जाता। यह तो भावनाओं की पूँजी है, जीवन की निधि है। हालांकि तुम्हारे व्यवहार की गंभीरता मुझे भाती नहीं। लगता है कि तुम अपने सिवा किसी से सम्बन्ध जोड़ना ही नहीं चाहतीं। तुम प्रेम का घर सूना ही रखना चाहती हो। तुम सुलग-सुलग कर राख हो जाना चाहती हो -- राधा तुम क्यों अपने जीवन को एक कोपभवन बनाने पर तुली हुई हो और मैं कब तक तुम्हारा शोक मनाता रहूँगा। तुम नहीं जानतीं कि यह जगत संवेदनशील व्यक्तियों के लिए नरक है। इसलिए जीवन के एक-एक श्वास को खुशियाँ बटोरने के लिए समर्पित कर दो। मुझे तुम्हारा यह टुकड़ों में बंटा हुआ जीवन नहीं सुहाता। तुम अपना सम्पूर्ण अस्तित्व समेट लो तथा मेरे साथ चलो। मेरा प्रेम कड़ी धूप में तुम्हारे लिए छाया बन जाएगा। तथा अन्धकार में प्रकाश का काम देगा। तुम्हारी काया की गुफा में भी गहन अन्धकार है। प्रकाश का कहीं कोई चिन्ह तक नहीं। तुम अनुमति दो तो मैं शीतल अंधेरी गुफा में अग्नि प्रज्जवलित करके तुम्हारी आत्मा में प्रकाश भर दूँ। देखो राधा, मानव के अन्तस में भावनाएँ तोड़-फोड़ तो करती ही रहती हैं परन्तु मन का पात्र रीता नहीं रखना चाहिए। चाहे इस में धूल ही क्यों न हो। मैं मानता हूँ कि गगन मलिन है। धरती मटियाली है तथा सूर्य बादलों के धुएँ में अटका हुआ है। फिर भी आओ हम तुम साथ-साथ चलें, जुगनुओं को पकड़ें और जीवन के एक-एक क्षण को प्रकाश से भर दें।

"जीवन के इस मार्ग में अब मुझे किसी वृक्ष की आवश्यकता नहीं रही कृष्ण! मैंने कब का अपनी छाया में जीना सीख लिया है। मैं ऐसी काली रात हूँ जो कभी प्रकाश को जन्म नहीं दे सकती। इसलिए मुझे जुगनू पकड़ने में कोई रुचि नहीं है। मैंने मन के द्वार

को भीतर से ताला लगा दिया है। मेरी बहार कब की बर्फ़ में दब चुकी है तथा बर्फ़ पिघलने वाली नहीं है। तुम मूर्ति तोड़ने का प्रयास छोड़ दो। मैं तो इस प्रतीक्षा में हूँ कृष्ण कि कब मेरी आत्मा शरीर के कफ़न से मुक्त हो जाए।"

"राधा! शरीर आत्मा का कफ़न है न क़ब्र। शरीर सूली भी नहीं है। यह तो आत्मा का वस्त्र है। एक सुन्दर परिधान। शरीर की सीढ़ी पर चढ़कर ही आत्मा तक पहुँचा जा सकता है। राधा! स्त्री ने पुरुष को इसलिए उत्पन्न नहीं किया कि वह एकाकी रहे। पुरुष उसका सहयोगी है, संगी है, साथी है, उसका पूरक है, उसका सहयात्री है। इसलिए मुझ से पलायन मत चाहो, मैं तुम्हें हारने वाला नहीं हूँ। मैं सच्ची भावनाओं का व्यापारी हूँ। मुझ से मेरा सत्य खरीद लो, समय नष्ट मत करो। समय की तरंगें किसी की प्रतीक्षा नहीं करतीं।"

"परन्तु मैं स्वयं अपने आप को हारना चाहती हूँ। इसमें तुम क्या कर सकते हो।"

मेरे समस्त प्रयास असफल हो गए। मेरा गनतव्य-स्थल पर पहुँचना दुष्कर हो गया। भला केले के छिलकों पर चल कर भी कोई गनतव्य स्थल पर पहुँच सकता है। उसमें जीवन की उष्णता उत्पन्न करने के प्रयत्न में मैं स्वयं बर्फ़ की शिला बनने लगा और अन्ततः एक दिन पत्थर की वह सुन्दर मूर्ति जो क्षण भर के लिए झील से उभरी थी। सदा-सदा के लिए काई से भरी झील में डूब गई। वह अदृश्य हो गई। मैं गहरी झील में तैरता रहा। तल में उसे खोजता रहा। परन्तु झील में कोई हलचल न हुई। वह मौन रही, स्थिर। थक हार कर मैं काई से भरी झील से बाहर आ गया तथा किनारे पर बैठ गया। परन्तु मेरे पैर झील में पड़े रहे। और झील के मटियाले तल को हिलाते रहे। काई ने मेरे पैरों पर फफूंदी फैला दी। मेरे पैर भी सड़ गए। परन्तु वह सुन्दर मूर्ति झील से फिर कभी नहीं उभरी -- इस बात को शताब्दियाँ व्यतीत हो चुकी हैं परन्तु मैं पैरों से हीन मनुष्य -- अब भी किनारे पर बैठा उसकी कामना में झील के भीतर झांकता रहता हूँ।

कोयला भई न राख

रात्रि का अन्तिम प्रहर है। चौदहवीं का चन्द्रमा बादलों का वक्ष चीरता हुआ अपने गनतव्य स्थल की ओर जा रहा है। आम के वृक्षों की शाखाओं पर आने वाले बौर की सुगन्ध मेरे आस-पास फैल रही है। मेरे प्रांगण में खड़ा जामुन का वृक्ष मुस्कुरा रहा है। दूर चौधरियों के बाग़ में किसी पेड़ पर बैठी कोयल इस प्रकार कूक रही है जिस प्रकार मेरे हृदय में पीड़ा की तरंगें उठ रही हैं -- नीचे सम्भवतः काका जाग उठा है -- मेरे छोटे भाई का लड़का, भतीजा मेरा -- मैं हड़बड़ा कर उठ बैठती हूँ। यह कहीं मेरा बबलू तो नहीं। परन्तु बबलू -- मुझे ऐसे आभास होता है जैसे मेरा बबलू, पिछले कई जन्मों से मुझसे बिछड़ा हुआ है और भावी कई जन्मों तक वह मुझे नहीं मिल सकेगा, और इस जन्म में मेरी आँखें तरसती ही रहेंगी -- मैं करवट बदल कर सोने का प्रयास करती हूँ। चन्द्रमा के गोले को दूर धरती के अन्धे कुएँ में डूबते हुए देखती हूँ। अन्धकार में आँखें बंद करके आत्मा को परमात्मा के साथ योग का प्रयास करती हूँ, परन्तु मेरा मन बहुत हठी है बिल्कुल मेरे भाई के काके की भांति। जब भी इसे समझाओ यह और अधिक मचलने लगता है। भला इसे कौन समझाए कि अतीत के दिनों में कुछ भी नहीं रखा।

भोर होने ही वाली है। मैं स्मृतियों का मनों बोझ उठाए भारी क़दमों से उठूँगी और स्नान करूँगी। प्रभात बेला में ताज़ा फूलों को रंगीन डलिया में सजाकर और शरीर को सफेद साड़ी का कफ़न पहना कर मैं शिवजी के मन्दिर में संगमरमर की सीढ़ियाँ चूमूंगी। फूलों की डलिया शिवलिंग पर चढ़ाऊँगी। गीले बालों से टपक रही अग्नि की चिंगारियों से ज्योति जगाऊँगी और फिर

मन्दिर के फर्श पर इस प्रकार गिर पडूँगी जैसे कोई योगी की मूर्ति शताब्दियों से शान्ति एवं मुक्ति हेतु समाधि लगा के बैठी हो परन्तु मेरे मन में शान्ति नहीं। मैं गीली लकड़ी की भांति सदा सुलगती रही हूँ तथा अन्त तक सुलगती ही रहूँगी। मेरे मन को कोई पूजा संतोष नहीं देती। कोई वस्तु मेरे नंगे घावों का मलहम नहीं बन सकती। मुझे मुक्ति की आशा नहीं परन्तु जीवित रहने के लिए भी किसी न किसी सहारे की आवश्यकता तो होती है।

चिनाब की लहरें उसी प्रकार हैं। केवल मैं बदल गई हूँ। देवताओं की तुलना में मनुष्य का जीवन कम होता है। परन्तु मेरा जीवन कितना लम्बा हो गया है। समय कितना लम्बा हो गया है। जैसे यह शताब्दियों की बात हो परन्तु मुझे सब कुछ स्मरण है, मैं स्मृतियों की पोटली खोल कर बैठ गई हूँ।

यह उस समय की बात है जब मेरी आत्मा मेरे शरीर से संभाले न संभलती थी। लहू, मेरी धमनियों में उबाल खाने लगा था। मेरा अस्तित्व मुझे एक बोझ लगने लगा था -- मैं प्रतिदिन संध्या की गुफा में गिरते सूर्य को देखकर अपनी भैंसें लिए घर पहुँचती और उस दिन भी घर ही पलट रही थी कि समीप के गाँव का गौतम मुझे मिला -- मन्दिर के पीपल की भांति ऊँचा, बलिष्ठ, निखरा तथा आकर्षक -- चित्ताकर्षक नयन -- मुझे खींच कर ले गए। मैंने पीपल को प्रेम-सूत्र बाँध दिया। हमारे विवाह की बात होने लगी। माँ मुझे चूल्हे-चौके के ढंग सिखाने लगी। मैं प्रतिदिन आटा गूँथती, पेड़े बनाती, पेड़े ठीक करके तवे पर रोटियाँ डालती। गोल रोटी न पकने पर माँ मेरे हाथों पर चिमटा मारती। परन्तु मेरे मन में प्रेम का आटा गुंथता रहा, प्यार की रोटियाँ पकती रहीं। गोल-गोल, प्यारी-प्यारी। जब आटा समाप्त हो जाता तो माँ अग्नि बुझा डालती तथा तवा उलटा कर देती। तवे पर आकाशीय सितारों की भांति अग्नि के सितारे आँख-मिचौली खेलने लगते। माँ कहती यह जुगनुओं की बारात है परन्तु मेरी बारात कभी नहीं चढ़ी।

मेरे स्वप्न खण्ड-खण्ड हो चुके थे। मैं हिम सरीखी अत्यन्त

ठंडी हो गई थी। रक्त मेरी धमनियों में जम गया था। इस शिवजी के मन्दिर में ही उस काले शेष नाग ने मेरे अस्तित्व के गहरे समुद्र में ज़ोर से फुँकार मारी थी और मेरी सम्पूर्ण काया कंपायमान हो उठी थी -- मुझमें अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए समुचित सामर्थ्य नहीं था। मेरा गौतम -- मेरे माता-पिता -- मेरे सम्बन्धी जन -- सब समय की आँधी में तिनकों की भांति बिखर गए। जिस ओर दृष्टि जाती, रक्त ही रक्त, अग्नि और धुआँ, चीत्कार ही चीत्कार -- दौड़ो -- भागो -- मुझे न मारो -- दया करो -- बचाओ -- आर्तनाद और इन्हीं हंगामों में वह काला शेष नाग मुझे राजा रसालू के नगर ले आया -- "लूना" के नगर -- पूरण की बस्ती -- पूरण नगर में। वह प्रतिदिन फुँकारें मारता और मेरी हिम सरीखी काया को पिघलाने का प्रयास करता। उसके फन की वसा पिघल-पिघल कर मेरी नग्न काया में मोम घोलती। मैं प्रतिदिन उसका विष पीती। उसके विष का मेरे भीतर एक गोला बनता रहा। मेरी हड्डियाँ-पसलियाँ दुखती रहीं और मेरा अस्तित्व एक कच्चा फोड़ा बन गया। मुझे एक विचित्र सी पीड़ा की अनुभूति होती। एक ऐसी पीड़ा जो बताना भी चाहती, तो बता न सकती थी। फोड़ा पकता रहा -- फोड़ा फूट गया। गोला तोप के मुँह से बाहर निकल आया और मेरे वक्ष से चिपट गया। मेरे बर्फ के समान शरीर में गर्मी की लहर दौड़ गई। मेरे वक्षस्थल के दो पत्थर पिघल गए। इनसे दूध की धाराएँ बह निकलीं और मैंने एक माँ का रूप धारण कर लिया -- बबलू की माँ का -- अब बबलू ही मेरे लिए सब कुछ था। मेरी माँ, मेरा पिता, मेरा भाई, और मेरा गौतम -- पूरण की बस्ती में मेरा दिल लगने लगा था। मैं बबलू को नहलाती, कपड़े पहनाती, उसके बालों में कंघी करती। मुझे ऐसा लगता जैसे उसके बाल मेरे चिंतित विचार हों। जिन्हें मेरे मस्तिष्क के नाखुन खुरच रहें हों।

समय किसी पर्वतीय पगडंडी का यात्री, थक कर चूर हो गया था। स्रमुद्र की लहरें फिर शान्त हो गई थीं। आर्तनाद, बादलों को चीर कर दया के देवता के पास पहुँच चुका था। गगन पर

चीलें उड़ना बंद हो गई थीं -- शरणार्थियों के शिविर लगा दिए गए थे। अपने झुंड से बिछड़ी हुई कूंजों की तलाश हो रही थी -- पूरण की बस्ती में भी तलाशियाँ होने लगीं और बबलू की माँ भी खोज ली गई। शेषनाग की सपोलों के समक्ष एक न चली। मैं वापस अपने गाँव आ चुकी थी। गाँव के चारों ओर खड़ी फसलें मुस्कुरा रही थीं जैसे सोने की बालियाँ अल्हड़ मुटियारों के कानों में वादन कर रही हों। नदी की तरंगें, आम के पेड़, घर के प्रांगण में उगा जामुन का वृक्ष, सब कुछ विद्यमान था -- केवल पिता तथा बड़े भाई की अस्थियाँ अग्नि तथा रक्त के तूफान में बह गई थीं। माँ ने मुझे वक्ष से लगाया। मन का उबाल दोनों के नयनों से जारी हो गया -- फिर एक दिन समीप के गाँव का गौतम भी मुझे मिल गया। परन्तु कहते हैं -- "ईश्वर तो बन्दों को क्षमा कर देता है परन्तु बन्दा क्षमा नहीं करता -- " मेरे कपिलवस्तु के गौतम ने मुझे अपनाने से इन्कार कर दिया। मेरे चन्द्रमा की धरती भी बंजर ही निकली। अब उसकी चाँदनी अछूत हो गई थी।

समय एक ऐसे वन की भांति मेरे समक्ष फैला हुआ था, जिससे बाहर निकलने का कोई मार्ग खोजते-खोजते मेरी आँखें निढाल हो चुकी थीं। मैं प्रतिदिन शिवजी के मन्दिर में जाकर ख़ूब रोती। मुझे शिवजी की मूर्ति एक मुखौटा दिखाई देती। पीपल का वृक्ष मेरे भाग्य पर व्यंग्य करता हुआ लगता। फिर धीरे-धीरे सभी सम्बन्धियों की दृष्टि में मेरा अपराध खटकने लगा। उन्हें मेरा साँप के बच्चे को दूध पिलाना विष लगता था। वह मेरी ममता को अनाथ बनाने के लिए विचार-विमर्श करने लगे ताकि मेरे शरीर पर लाल रंग के वस्त्र पहना कर मुझे किसी और साँप के साथ बाँध दिया जाए। मुझे एक बार फिर आकाश पर चीलें नाचती दिखाई देने लगीं। मैं घर से भाग गई तथा शरणार्थी शिविर में आ गई। वहाँ मुझे मेरी पीड़ा का मर्म बूझने वाली एक देवी मिल गई। मैंने बबलू को उसकी गोद में दे दिया और कहा :

"मासी! मेरा छोटा भाई और दूसरे सम्बन्धी जन इसे मारना चाहते हैं। वह कहते हैं कि यह साँप का बच्चा सपोला है।

परन्तु मासी, यह चाहे साँप का बच्चा है या मनुष्य का, जन्मा तो मेरी ही कोख से है। मैं कैसे अपने दिल को पत्थर बनाऊँ। तू इसे बचा ले। बबलू को इनकी बस्ती में ले जा और किसी सूने आंगन में इसे फेंक दे। अन्यथा मेरे अपने ही इस निर्दोष की हत्या कर देंगे।"

और इस प्रकार मेरा बबलू सदा-सदा के लिए मुझसे बिछड़ गया। मैं अग्नि की लपटों से भरी हुई घृणा की भट्ठी में जल-भुन गई। मैं फिर हिम-शिला बन गई तथा फिर किसी नाग देवता के गले बाँध दी गई। हिम-शिला को फिर एक बार पिघलाने के प्रयत्न होने लगे। फुँकारें फिर सुनाई देने लगीं परन्तु बर्फ़ की यह शिला पिघल नहीं सकी। मोम शिला पर गिरते ही जम जाता। इसी प्रकार कुछ दिन होता रहा और फिर नाग देवता में बर्फ़ पिघलाने की शक्ति ही समाप्त हो गई। मोम गिरना बंद हो गया। नाग देवता की फुंकारें सदा के लिए समाप्त हो गईं।

एक बार फिर मेरे चारों ओर धुआँ ही धुआँ फैल गया। मेरे मार्ग काँटों से भर गए। पैर घायल हो गए तथा गगन पर फिर चीलें उड़ने लगीं। और मैं एक घायल कूंज -- फिर अपने माता-पिता के आंगन में गिर पड़ी। मेरा कष्ट मेरी माँ का रोग बन गया तथा कष्टों की डायन मेरी माँ का कलेजा निकाल कर ले गई। और मुझे उसी घर में सदा के लिए अपरिचित बना गई जहाँ मैं कभी जन्मी थी, जहाँ सभी कुछ मेरा था। परन्तु मेरा तेरा कहने से कुछ नहीं होता, यह सब मन बहलाने की बातें हैं। यहाँ किसी का कुछ नहीं, विशेष रूप से मेरा, मेरा बबलू, मेरा गौतम -- किस का बबलू? -- किस का गौतम? -- परन्तु जीवित रहने के लिए किसी न किसी सहारे की आवश्यकता तो रहती है और मेरी स्मृतियाँ मेरा सहारा हैं। इन स्मृतियों के तेल ने ही संभव है मेरे निर्जीव जीवन का दीपक जलाए रखा है।

मेरी चादर मेरे पैर

मेरे पास एक चादर है, फटी-पुरानी, तार-तार -- मैं उसे पैवन्द लगा-लगा कर जोड़ता रहता हूँ ताकि मेरी नग्नता पर्दे के पीछे छिप सके। इस चादर में मेरा निर्वाह नहीं होता -- जब भी मैं उसे सिर पर लेता हूँ, मेरे शरीर का कोई न कोई भाग खुला रह ही जाता है। पैर ढकता हूँ तो सिर नंगा रहता है और यदि सिर ढकने का प्रयास करता हूँ तो पैर छिप नहीं पाते। आप जानते ही हैं कि सिर और पैर मानवी शरीर के दो महत्त्वपूर्ण भाग हैं और कोई व्यक्ति भी उन्हें शरीर से अलग करके जी नहीं सकता। और इस पर मेरा छोटा-सा परिवार मेरी दुर्बल-सी गृहस्थी -- मेरा परिवार, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे -- मेरे अस्तित्व के भाग -- इन सबकी छोटी-छोटी इच्छाएँ हैं, कामनाएँ हैं -- यह सभी इच्छाओं के फंदे में फँसे रहते हैं तथा मुझे भी कामनाओं की सूली पर लटकाए रखते हैं -- और मेरा पागलपन यह कि मैं इच्छाओं की मरुभूमि में गुम इन आत्माओं को अपनी चादर में छिपाने का प्रयास करता रहता हूँ। अपनी बुक्कल में ढाँपने का प्रयास जारी रखता हूँ परन्तु मेरी यह चादर तो मुझे ही भली-भांति ढाँप नहीं सकती। इन्हें क्या छिपाएगी -- परिस्थितियों की इसी खींचातानी में मेरी चादर और फटती रहती है तथा मैं अनुभूति के मनों भारी बोझ के नीचे दब के रह जाता हूँ। अनुभूति......बड़ी पैनी छुरी है। पैनी तथा नोकदार.....यह मानवी अन्तःकरण को.... मन-मस्तिष्क को चीरती रहती है......

मैं अठारह वर्ष का था कि मुझमें स्वभाविक अन्तःकरण नाम का उगने वाला पौधा उगा। तभी मुझे कड़ियों से जकड़ कर एक खूँटे से बाँध दिया गया और समय व्यतीत होने के साथ-साथ

वह नन्हा पौधा एक छायादार वृक्ष बन गया और उस वृक्ष की शाखाएँ, पत्ते आवाज़ों के घाव खा-खाकर बिखरने लगे --

"यह पत्ते बहुत कम हैं। इनसे घर का निर्वाह नहीं होता और इस पर तेरे तीन-तीन खाने वाले बच्चे -- तुम अलग हो जाओ...."

यह शब्द मेरी माँ के हैं। जिसके दो और कुंवारे कमाऊ बेटे भी हैं परन्तु मेरे अस्तित्व के अंग सबको चुभते रहते हैं --

"माँ! तू मेरी ऋणी है। तू मुझे पूरा जीवन नहीं दे सकती थी तो जन्मा ही क्यों था?"

"बकवास बंद कर और भाग जा यहाँ से -- अपनी गंदगी समेट कर -- मैंने दूसरों के विषय में भी सोचना है -- कब तक मैं तुम पर ही कफ़न डालती रहूँ?"

लोग सत्य ही कहते होंगे: "माँवां टंडियाँ छाँवां" -- परन्तु शायद माँ का भी कोई दोष नहीं। यह सब विचारधारा का अंतर है। विचारों का मतभेद है -- हमारे पास एक दूसरे को देने के लिए पूरा जगत होता है परन्तु ऐसा जगत किसी के पास नहीं होता जहाँ हम सब समा सकें --

और हम अलग-अलग हो गए -- मैं जीवन की जिज्ञासा में कामनाओं के पीछे दौड़ने लगा और मेरा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रोटी के कुछ टुकड़ों में सिमट कर रह गया, बंध कर रह गया।

"उस्मान को आज फिर बुख़ार हो रहा है। यह दिन-प्रतिदिन का बुख़ार ठीक नहीं -- इसे किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाएँ।"

"अभी कुछ दिन पहले तो डॉक्टर कौल को दिखाया था। दो सौ रुपए फीस दी थी। दवाई पर भी चार सौ खर्च किए थे -- अब बार-बार इतने पैसे कहाँ से लाऊँ।" -- तीन महीने से शबनम की स्कूल की फीस नहीं दी -- अर्शी के पास फ्रॉक नहीं है -- मुन्ने के दूध का खर्च -- हर चीज़ को आग लगी हुई है -- कुछ भी तो हाथ नहीं आता, क्या करूँ। कहाँ जाऊँ -- मेरी अपनी छाती में दर्द होता रहता है -- अब तुम्हीं बताओ कहाँ से लाऊँ मैं इतने पैसे?"

"यह तो बच्चे पैदा करने से पहले सोचना चाहिए था। तब तो आग लगी होती है ना।"

"चलो छोड़ो -- ज़्यादा बक-बक न करो -- सारा वेतन घर में ही तो खर्च होता है। मैं कौन-सी अय्याशी करता हूँ। दफ़्तर से छुट्टी होते ही चार-पाँच घंटे ओवर-टाईम भी करता हूँ। वह पैसे भी तो घर की ज़रूरतें ही खा जाती हैं। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में छपने का जो पारिश्रमिक मिलता है वह भी तो तुम्हें ही थमा देता हूँ। रेडियो, टेलीविज़न के कार्यक्रमों से जो मिलता है वह भी तुम ही संभालती हो -- अब तुम्हीं बताओ मैं अपना पेट तो काट कर फेंक नहीं सकता।"

"मुन्ने को मियादी बुख़ार है शायद -- पन्द्रह दिन हो गए उतरने का नाम ही नहीं लेता।"

"तो मैं क्या करूँ?"

"क्यों -- आपको बच्चों की कोई चिंता नहीं! यह सब मेरी ही सिरदर्दी है?"

"चिंता एक दिन की होती है या दो दिन की -- परन्तु मैं तो चिंताओं के वन में भटकता हुआ राही हूँ। इन चिंताओं ने तो मुझसे मेरा अपना आपा भी छीन लिया है।"

"यह लें मेरे कानों की बालियाँ -- बस यही बची हैं अब तो, इन्हें बेच-बाच कर मुन्ने की दवाई ले आएँ --"

बालियाँ मेरे हाथ पर रखती हुई वह बोली। आँसू उसकी आँखों से पर्वतीय झरनों की भांति बह रहे थे।

"न रो बेगम।" यहाँ निराश पीले चेहरों पर लिखी जीवन की कहानियाँ कोई नहीं पढ़ता। यह विवश देवदूतों तथा निराश आत्माओं की बस्ती है। यहाँ मुस्काते हैं तो केवल शैतान। यहाँ सब अपनी-अपनी बाँसुरी पर अपना-अपना राग अलापते हैं। यहाँ तेरी बात कौन सुनेगा बेगम -- ? कभी मैंने भी स्वप्न देखे थे। सुन्दर स्वप्न -- परन्तु स्वप्न-सीढ़ी पर चढ़कर चाँद -सितारे तोड़े नहीं जा सकते और चोर-द्वार मैं फलांग नहीं सकता।"

"परन्तु गुलज़ार, जीना बहुत कठिन है भूखे रह के। नंगे

रह के, एक-एक वस्तु के लिए तरस-तरस के जीना बहुत कठिन है गुलज़ार, बहुत कठिन।"

"तुम ठीक कहती हो बेगम! परन्तु मैं विवश हूँ। मैं छाया नहीं पकड़ सकता। मैं परछाईयों का पीछा करते-करते थक गया हूँ बेगम। मैं तो सुख की ऋतु का राही था परन्तु मेरे चारों ओर दुख कैसे उग आए। मैं तुम्हें बहुत देता यदि मेरे पास कुछ होता। और दुनिया से मैं कुछ माँग नहीं सकता। क्योंकि दुनिया के पास मुझे देने योग्य कुछ है ही नहीं। इसलिए आओ हम स्वयं ही अपना नरक भोगें और स्वर्ग की कामना छोड़ दें। इच्छाओं के खिलौने तोड़ डालें क्योंकि टूटना ही खिलौनों का भाग्य है -- "

"परन्तु आते-जाते श्वासों के साथ इच्छाओं का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है गुलज़ार! तुम हमारे श्वासों की डोरी काट दो फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

"तुम समझती क्यों नहीं बेगम! आमदनी के सिर सेहरा होता है। और मेरी आमदनी बस इतनी ही है जितनी ओस चाटे प्यास बुझे।"

कई बार मुझे विचार आता कि घर-गृहस्थी के पिंजरे से निकल कर खुले गगन की ओर उड़ जाऊँ परन्तु खुले गगनों में भी कितनी देर तक उड़ा जा सकता है। ऊपर जाने वाली हर वस्तु अन्ततः धरती पर ही आ गिरती है। यह सच्चाई है और इस सत्य से आँखें चुराकर मैं कहाँ जा सकता हूँ। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। अन्धी गुफाएँ और अन्त में घर की चारदीवारी ही प्रकाश का स्रोत लगती है। और मैं उसी प्रकाश के जुगनू पकड़ने के लिए घर की ओर पलट आता हूँ परन्तु प्रकाश हाथ नहीं आता। यह दरिद्रता बड़ी अत्याचारी वस्तु है। यह मेरी चादर पर लगे शालीनता के बखिये उधेड़ देती है और जीते जी मृत्यु के कुएँ में धकेल देती है।

और फिर -- दुखों की एक लम्बी यात्रा और कोप की अनगिनत पिघलती रातें व्यतीत करने के बाद शायद नवग्रहों को मुझ पर दया आ गई। वह सिर जोड़ कर बैठे -- और मेरी चादर

बदल देने का निर्णय कर लिया -- मेरे माथे पर रेखाएँ उग आईं, जगमग करती रेखाएँ। हँसती-मुस्कुराती चाँदी रंग की रेखाएँ।

मैंने फरहाद का रूप धारण किया और दूध की नहर का प्रवाह अपने घर की ओर कर लिया। दूध बिन्दु-बिन्दु मेरे तन-मन को सींचने लगा। सूर्य की किरणें मेरे सीलन खाए मकान में भी आने लगीं। हरियाली ऋतु की गुलनार धूप मेरे प्रांगण को चमकाने लगी। नरगिसी, कासनी, केसरी, चम्पई, गुलाबी और आसमानी फूलों की बहार आ गई। कोंपलें सिर उभारने लगीं, कलियाँ महकने लगीं। मैंने मैली-कुचैली चादर को लपेटा और पुरखों की प्रदान की हुई काल-कोठरी में फेंक दिया। और कोठरी की बाहरी दीवारों को सफेदी पोत कर चमका दिया। ऐसे लगा जैसे मेरे मस्तिष्क से शताब्दियों का बोझ उतर गया हो। मैं स्वयं को हल्का-फुल्का अनुभव करने लगा। मैंने बाज़ार से एक नई चादर खरीदी। बहुत लम्बी और चौड़ी। इतनी लम्बी-चौड़ी कि मैं और मेरा पूरा परिवार सुगमता से उसमें समा गए।

हम जब भी उसे ओढ़कर सोने लगते तो न केवल यह कि वह हमें अच्छी तरह ढक लेती अपितु चादर का बड़ा भाग बचा भी रहता। कोई खींचातानी न रही। हम सब आराम की नींद सोने लगे। पत्नी-बच्चे सब प्रसन्न हो गए। बेगम की खाली-खाली आँखों में सितारे जगमगाने लगे। पलकों की झालर झिलमिल करने लगी। और करती भी क्यों न? उसकी कामनाएँ सुहागिन हुई थीं। उसका हर सवेरा सज-धज कर होने लगा था हर शाम सुगन्धों से महकने लगी। चूड़ियों में खुशियाँ छनकने लगीं। घर में हरियाली गाने लगी। मेरे बच्चे नई ऋतुओं से गले मिलने लगे। बसन्त-बहार की ऋतु हमारा श्रृंगार करने लगी परन्तु आस-पड़ोस की आँखें हमें देख-देख कर फटने लगीं और जीभें दीवारों के कान फाड़ने लगीं।

"भई जमाल दीन! सुना है टाट को मख़मल के पैवन्द लगने लगे हैं।"

"हाँ यार! पिद्दियों में भी झूला झूलने का चाव चढ़ा है।"

"हमने अपनी दीवारों पर लोहे की चादरें चढ़ा लीं और

कानों को पलस्तर करा लिए कि कहीं आवाज़ें हमारे ऐश्वर्य भोग में बाधा न हों और चुल्लू भर-भर सागर पीना आरम्भ कर दिया।

"जनाब! यह सड़क के काम का कमीशन है। अन्य सब लोगों का कमीशन दे दिया गया है। बस अब यह आप का ही हिस्सा है।"

"क्या कहा श्रीमान्! स्कूल-बिल्डिंग का काम। वह भी पूरा हो गया। बस बिल बनाना शेष है। मैं स्वयं ही दो-चार दिन तक ऊपर से पास कराकर ले आऊँगा। आप चिंता न करें। लेकिन कमीशन इसमें कम है श्रीमान् बिल्डिंग का मामला है ना। सड़क के काम में ठेकेदार खुला पैसा कमाते हैं। इसीलिए अपना भी भरपूर कमीशन होता है।"

"श्रीमान्! वह सीमेंट के दो ट्रकों का मामला चानन शाह से पट गया था। यह आपका हिस्सा है, पचास हज़ार रुपए।"

श्रीमान्! यह काम के बदले अनाज की योजना बहुत बढ़िया योजना है। मज़दूरों में तीन हज़ार क्विंटल अनाज बंट गया है। क्षेत्र भर के खड़पंच भी निहाल हो गए हैं। एम.एल.ए साहब भी खुश हैं। पंच, सरपंच सब खुश, सब निहाल और छः सौ क्विंटल अनाज बच भी गया है। आदेश हो तो मंगू शाह से बात की जाए?"

"क्या कहा श्रीमान्! हिसाब-किताब! वह सब ठीक-टाक है। कागज़ी कारवाई पूरी है। चिंता की कोई बात ही नहीं जनाब!"

-- मैं रंगों के जाल में फँसता चला गया। मेरी विचारधारा का शरीर खोखला होता गया। रचनात्मक झरने सूखते चले गए। मेरे हाथ साहित्य-सृजन की कला भूल गए। अलमारियों में सजी पुस्तकें विस्मय तथा आशा से मुझे ताकने लगीं और मैं एक नई विचारधारा के अन्धे कुएँ में डूबने लगा -- विचारधारा -- अपने भीतर के कलाकार की हत्या होने से बचाने की विचारधारा। अपने अन्तर्मन के मुरझाए हुए पौधे को हरा-भरा देखने की विचारधारा --

और फिर ऐसा हुआ कि मेरी नई चादर भी मेरे परिवार के लिए तंग होने लगी। मेरा निर्वाह उसमें भी कठिन होता गया और एक बार फिर मैं अपने अस्तित्व के टुकड़ों को इस चादर में

समेटने का प्रयास करने लगा। परन्तु मैं क्या करता कि मेरे शरीर के सभी अंग लम्बे हो गए थे। मेरे परिवार वालों के पैर लम्बे और सिर चौड़े हो गए थे। इतने लम्बे-चौड़े कि चादर उन्हें ढाँपने में असफल सिद्ध होने लगी। और बेगम एक बार फिर एक नई चादर के लिए हठ करने लगी। परन्तु मैं इस सोच में पड़ गया कि क्यों न पैरों की अतिरिक्त लम्बाई काट दी जाए। बड़े सिर छोटे कर दिए जाएँ। परन्तु यह सब कैसे किया जाए। मेरी आत्मा -- मेरे शरीर के टुकड़े तो अपने हाथ-पैरों को छूने भी न दे रहे थे।

मैं चिंताओं का बनजारा फिर से सपनों के निर्जन टापुओं में भटकने लगा। मेरे भीतर दुःख फिर से सिर उभारने लगे और अन्तःकरण का मुरझाया-कुम्हलाया पौधा तेज़ तूफानों में घिर गया। पत्ते शाखाओं से और शाखाएँ तने से अलग होने लगीं।

अन्ततः यह सब किस लिए? अपनी कब्र के कोप के लिए -- मेरी पत्नी, मेरे बच्चे मेरी आत्माएँ -- कोई भी मेरे दुःखों में शामिल न होगा। मेरे दुःखों का भागीदार न होगा और जिस मार्ग पर हम चल निकले हैं उसका कोई अंत भी तो नहीं -- कोई लक्ष्य भी तो नहीं -- और ध्येय रहित मार्ग विनाश के गहरे गड्ढों की ओर ही ले जाते हैं" -- मैं विचार करता रहा और मेरे माथे पर खोया हुआ आँखों का प्रकाश फिर से चमकने लगा और मैं उन मार्गों से विमुख हो के वापस होने लगा जिन पर चलता-चलता मैं अपने अस्तित्व से भी अपरिचित हो गया था -- मैं पीछे की ओर दौड़ने लगा -- -- मुझे दूर से अपना सीलन वाला मकान आवाज़ें देने लगा। उसमें टिमटिमाते हुए प्रकाश की लौ फिर से तेज़ होने लगी जिसे पकड़ते हुए कभी मेरे हाथ जल गए थे। आज वही प्रकाश मुझे प्रिय लग रहा था। मैं घर पहुँचा और अपने पुरखों की दी हुई काल कोठरी का द्वार खोला। ज़ंग खाए सन्दूख में से अपनी वही फटी-पुरानी, पैवन्द लगी चादर निकाली -- उसे खोला और बड़ी ही शान्ति से गुच्छ-मुच्छ होकर उसे ओढ़ कर लेट गया और न जाने कब गहरी नींद में डूब गया।

इश्तिहारों वाली हवेली

इस हवेली का नाम इकराम मंज़िल था। इस मुहल्ले की तीन-चार बड़ी हवेलियों में से एक हवेली -- इकराम मंज़िल, मिस्त्री इकराम खोखर की हवेली -- मेहनत, मज़दूरी, बुद्धि, सूझबूझ और दूरदर्शिता के चूने-गारे से बनी हुई यह हवेली, आज भी मिस्त्री इकराम खोखर का स्मरण करा देती है। ईश्वर स्वर्ग में स्थान दे, मिस्त्री इकराम खोखर को, -- अपने समय की एक प्रसिद्ध हस्ती था -- लम्बा क़द, छरहरा शरीर, गोरा चेहरा, मोबिल ऑयल और ग्रीस से भरी काली डांगरी में भी सूर्य की भांति चमकता रहता। चौड़े हाथों में रोगी गियर बॉक्स, गरारियाँ, नट-बोल्ट, पम्प, सिलेण्डर स्वस्थ होकर खेलने लगते। रोता इन्जन हँसने लगता। दिन-रात की मेहनत ने गाड़ियों के मिस्त्री इकराम खोखर को दिलावर बस सर्विस का भागीदार बना दिया था -- बड़े शालीन, मिलनसार, सामाजिक मूल्यों के प्यारे, स्वाभिमान तथा सम्मान के रखवाले, हर एक के माँ-जाये, दुनियादारी को समझने वाले, अच्छी और बुरी आँख को पहचानने वाले -- तीन बेटियाँ हुईं, लेकिन जवानी की दहलीज़ पर कदम रखते ही इकराम खोखर ने उनकी शादी कर दी ताकि उसकी मान-मर्यादा की चादर पर कहीं धब्बा न लग जाए -- इकराम मंज़िल में दो लड़के भी जन्मे। इसलाम खोखर और ईनाम खोखर। पढ़ने-लिखने की सभी सुविधाएँ, रुपए-पैसे की कोई कमी नहीं -- हर प्रकार का ऐश्वर्य-युक्त लालन-पालन परन्तु दोनों तेरहवीं का चन्द्रमा निकले। खोखर परिवार और इकराम मंज़िल पर मलिन चाँदनी छिटकने वाले।

इसलाम खोखर - क़च्चा ड्राईवर पक्का शराबी हलीमा का पति तीन बच्चों का पिता और वेतन आठ हज़ार। हर रात की

कालिमा शराब की बोतल में घुल जाती। बोतल, इसलाम खोखर के गले से उतरते ही पेट में चली जाती और नाचने लगती। नाचता शरीर गाने लगता, गाता शरीर उड़ने लगता फिर उड़ान इसलाम खोखर को आकाश पर ले जाती। आकाश गूँजने लगता। और जाने कब गूँजते आकाश से इसलाम खोखर, इकराम मंज़िल में गिर पड़ता और अचेत हो जाता। शराब की इस बोतल में धीरे-धीरे हलीमा भी घुलती गई। घर का खर्च, बच्चों का पालन-पोषण -- और हलीमा का जीवन, सुहागिन होते हुए भी विधवा लगने लगा। इसलाम खोखर उसके लिए जीते-जी मर गया -- अन्ततः एक दिन हलीमा बेचारी ने मरे हुए आदम का लिबास उतार के दूर फेंक दिया और अपनी भूख का बोरिया-बिस्तर उठा के सदा के लिए क़ासिम के घर चली गई -- इकराम मंज़िल की सफ़ेद दीवार पर यह पहला इश्तिहार लगा था।

इकराम मंज़िल का दूसरा चाँद, ईनाम खोखर शीघ्र ही इस बड़े नगर का बड़ा चन्द्रमा बन गया -- हरामज़ादो! मैं तुम्हारी हड्डियाँ तोड़ दूँगा, मैं तुम्हारी जान ले लूँगा -- ओए! तुम्हारी माँ की, तुम्हारी बहन की -- " हाँ! यह गालियाँ ही हैं ईश्वर की प्रदान की हुई जीभ से निकलने वाली गालियाँ। हर रात इकराम मंज़िल की दीवारों को चीर कर मेरा पीछा करती हैं। मेरे कान फटने लगते हैं ये गालियाँ सुनकर -- यह गालियाँ सारी-सारी रात मुझे सोने नहीं देतीं। मुझे बहुत अशान्त कर देती हैं। क्योंकि इकराम मंज़िल की दीवारें मेरे कच्चे कोठे के साथ लगती हैं। और मैं अपनी कोठरी के भीतर बैठा सब कुछ सुनता रहता हूँ। बहुत कुछ देखता रहता हूँ -- मैंने इकराम मंज़िल की बहारें देखी हैं। इसमें धन, मान, शालीनता, योग्यता तथा स्वाभिमान का राज देखा है। और मैं पिछले बीस वर्षों से इकराम मंज़िल में शराब, निर्लज्जता और गाली गलौच का राज देख रहा हूँ --

ईनाम खोखर -- कच्चा शराबी, निकम्मा मिस्त्री। ट्रांस्पोर्ट वर्कशाप में तेल ग्रीसिया। ऊपर से वर्कशाप के काम का ईश्वर ही रखवाला है। हाज़री क्लर्क को मासिक सौ रुपए दीजिए, फिर चाहे

पूरा महीना वर्कशाप से ग़ायब रहिए। कर्मचारियों की हाज़री लगती रहती है। ईनाम खोखर ने भी हाज़री क्लर्क के साथ महीना लगा रखा था वह कई-कई दिन वर्कशाप से ग़ायब रहता। कोई कमाई करने के लिए नहीं, केवल शराब के ठेके की परिक्रमा करने के लिए, ठर्रे की बोतल पीने के लिए, नालियों में गिरने के लिए और हर रात गाली-गलौच करने के लिए। अच्छे जीवन के लिए संघर्ष करना वह व्यर्थ समझता था। पहले वह शराब को पीता था फिर धीरे-धीरे शराब उसे पीने लगी -- घर का ध्यान, न बच्चों की चिंता, पत्नी का दुःख, न अपनों का लिहाज़, न परायों का डर, मुहल्ले दारों, सम्बन्धियों और पड़ोसियों से बेपरवाह। ईनाम खोखर इकराम मंज़िल में चिंघाड़ता रहता। हर रात भयानक गालियों के रूप में। मानवी अन्तःकरण का हनन करने वाली गालियाँ -- और इकराम मंज़िल की दूसरी बहू.....ज़ोहरा, ईनाम खोखर के घर की मुर्ग़ी, अपने चूज़ों को भूख से बचाने के लिए, उन्हें दाना खिलाने के लिए -- कभी-कभी पराए घरों में भी जाने लगी, परन्तु उसने अपने आदम का पहनावा अपने गले से नहीं उतारा। उसने इस पहनावे को ही अपना भाग्य मान लिया -- अपने आदम के परिधान में छिप कर रंग-बिरंगे कपड़े पहनने वाली ज़ोहरा की बातें होनें लगीं। बातें मुँह से निकल कर मुहल्ले में फैलने लगीं। बातों का एक इश्तिहार बन गया और इश्तिहार इकराम मंज़िल की दीवार पर चिपक गया -- इकराम मंज़िल की मैली दीवार पर लगा हुआ यह दूसरा इश्तिहार था। परन्तु उस इश्तिहार पर लिखी इबारत से अनजान ईनाम खोखर अपने रंग में मस्त था -- उस इश्तिहार की काली सियाही से निश्चिंत ज़ोहरा घर की आवश्यकताएँ पूर्ण करने में लगी हुई थी -- समय का घोड़ा तेज़ दौड़ रहा था परन्तु ईनाम खोखर के लिए तो समय उस दिन से रुका हुआ था जिस दिन से उसकी जीभ ने शराब का स्वाद चखा था -- फिर शराब के स्वाद ने शेष सब कुछ पचा लिया, परन्तु समय किसी के द्वारा भी पचाया नहीं जा सका। समय सरपट दौड़ता रहा और दौड़ते समय के साथ-साथ अवयस्क चूज़े, वयस्क हो गए। वयस्क

होने वाले चूज़ों में से सबसे बड़े का नाम था हुस्ना खोखर, ईनाम खोखर की पलोठी (बड़ी) लड़की।

हुस्ना खोखर -- शाम का झूमर, सवेरे की झांझर, आकर्षक सुन्दरी, प्यार का गुलक़न्द, खिला मोतिया, हँसता गुलाब, हुस्ना खोखर -- सुन्दर अबाबील हुस्ना खोखर -- बुलबुल की भांति बोलती, कोयल की भांति कूकती। शादी-ब्याह की महफिलें उसे गले लगातीं। गाने, गीत, ग़ज़लें सब को मस्त बनातीं। रूप के मोती चुगने वाले पंछी उसकी नीली आँखों में चोग चुगने के ढंग खोजते -- हुस्ना खोखर, एक बल खाती नागिन, स्वच्छंद सपेरे उसे अपनी-अपनी पिटारी में बंद करने की चिंता करने लगे -- इकराम मंज़िल के चारों ओर, स्वच्छंद धुंध फैलने लगी -- माता-पिता की कही हुई बातें बच्चों के विनाश का कारण बनती हैं। हुस्ना खोखर भी अपने माता-पिता के ज़ंग लगे शीशे की परछाईं थी। उनकी उपलब्धियों का खट्टा-मीठा संगम। वह भी अपने लिए विनाश का सामान तैयार करने लगी -- यौवन उसके शरीर पर फोड़े-फिन्सियों की भांति फूट पड़ा था -- और फिर फोड़े भूखे प्रेमियों की झोली में फिसलने लगे। वह खुले आम अपने शरीर पर जोंकें लगवाने लगी। जोंकें जो उसका गंदा लहू चूस लेतीं। स्वच्छंद सपेरे उस पर मंत्र फूंकते रहे -- हुस्ना खोखर, प्रसिद्धि की सीमाएँ फलांगने लगी। इकराम मंज़िल में कई गुलनारें सहेलियों के रूप में आने-जाने लगीं -- सरू-क़द मुटियारें, साड़ियों की सरसराहट, शलवारों की खड़खड़ाहट, चूड़ियों की खनखनाहट और झांझरों की छनछनाहट। लिपे-पुते मुखड़ों को डसती ज़ुल्फ़ें, थरथराती छातियाँ, मटकते कूल्हे, फड़कती रगें, नृत्य करती आँखें, कानों में खुसर-पुसर, आपसी भेद की बातें और फिर हँसी के मनभावन फव्वारे।

हुस्ना खोखर, जीविका कमाने का ठीकरा बन गई। उसकी दृष्टि दिन-प्रतिदिन वयस्क होती गई। वह बड़े-बड़े होटलों में जाने लगी। वह एक-एक समय के खाने का बिल हज़ारों रुपए देने लगी। अब सिगरेट, शराब और कबाब के बिना उसे नाश्ता पचता

ही नहीं था। उसकी सोच की उड़ान बहुत ऊँची थी। वह दो शरीरों के मिलाप को आनन्द प्राप्ति की एक स्वभाविक माँग समझती थी। उसके लिए अब सामाजिक सम्बन्धों की कोई महत्ता नहीं रही थी। वह प्रायः कहती कि यदि दो युवा शरीर आपसी सहमति से अपनी संयुक्त भावनाओं की पूर्ति के लिए मिलें तो यह ऐसी कोई समस्या नहीं जिस पर समाज वाले शोर मचाएँ और इसलामी कानून का आसरा ढूँढें -- हुस्ना खोखर, इस नगर का उज्जवल सितारा। इकराम मंज़िल की काली दीवार पर लगा तीसरा परन्तु सबसे बड़ा इश्तिहार था जिस पर लिखे को पढ़ने के लिए बांकी नज़रें व्यग्र रहतीं।

इकराम मंज़िल के एक कोने में गूंगा पात्र भी रहता था -- जो अपने विचारों के शीशे में कभी इकराम मंज़िल की बहारें देखता रहता था कभी आँखों के समक्ष नृत्य करते पतझड़ को। उस गूंगे पात्र का नाम बेबे हाजरां था -- मिस्त्री इकराम खोखर की विधवा। इसलाम खोखर और ईनाम खोखर की माँ। व्यतीत हुए जीवन के बहार के दिनों की याद आते ही उसके मुखड़े पर दीपक प्रकाशमान हो जाते परन्तु हवेली की बिगड़ी दशा देखकर गूंगा पात्र मौन रहता। उसकी आँखों से गंगा बहती। इकराम खोखर की मृत्यु के बाद बेबे हाजराँ के चेहरे पर कई दरारें पड़ीं। फिर धीरे-धीरे दरारें उसका भाग्य बन गईं। उसकी सारी इच्छाएँ, आशाएँ और कामनाएँ मिट्टी में मिल गईं -- इसलाम खोखर और ईनाम खोखर, बेबे हाजराँ के गले के गिल्हड़ -- उसे बहुत कष्ट देते। वह दुखों की भट्टी में जल-जल कर कोयला बन चुकी थी। जाने उसने कितने वर्ष, महीने और दिन हज़्म कर लिए थे, परन्तु फिर भी कोयला राख नहीं बन रहा था। बेबे हाजराँ बहुत प्रार्थना करती परन्तु आकाश उस पर दयालु नहीं हो रहा था। इकराम मंज़िल की दीवारों पर लगे इश्तिहारों को देखकर बेबे हाजराँ बहुत दुखी थी वह दिन के उजाले में लगने वाले इश्तिहारों को रात के अंधेरे में फाड़ने का जतन करती। वह इकराम मंज़िल की काली दीवारों को धोती, इश्तिहारों पर लिखे को मिटाने का प्रयास करती

परन्तु काली दीवारों को वह जितना साफ़ करती, इश्तिहारों के शब्द उतने ही गहरे होते जाते। वह अधीर हो जाती।

फिर एक दिन ऐसा हुआ कि हुस्ना खोखर के शरीर को दस-बारह जोंकें इकट्ठी ही चिपक गईं, उसके शरीर का सारा गंदा लहू चूसने के लिए। परन्तु उन जोंकों ने अपनी खोखरी से हुस्ना खोखर का सारा शरीर घायल कर दिया। वह बेचारी लहूलुहान हो गई और अन्ततः उसके कुछ हितैषियों ने उसे बेहोशी ही हालत में इकराम मंज़िल में ला फेंका। हुस्ना खोखर को बेहोश देखकर इकराम मंज़िल में एक भूकम्प आया। काली- सफेद दीवारें काँपीं। इश्तिहारी दीवारें लरज़ उठीं और फिर सारी जर्जर हवेली धड़ाम से ढह गई। हवेली गिरने की एक भयानक आवाज़ आई, लोग दौड़े, इकराम मंज़िल की गिरती दीवारें देखने के लिए। हवेली को मिट्टी में मिलते सबने देखा। तमाशा देखने वाले लोग टूटी दीवारों पर लगे कई और छोटे-मोटे इश्तिहार भी पढ़ने लगे। फिर लोगों ने देखा कि गिरी हुई हवेली के मलबे की धूल से इकराम मंज़िल के निवासी अपने कपड़े झाड़ते हुए बाहर आए। और अपने सिर मस्जिदों के मीनारों से भी ऊँचे करके चलने लगे। केवल इकराम मंज़िल का गूंगा पात्र ग़ायब था। उसे किसी ने ढूँढा भी नहीं। शायद वह हवेली के मलबे के नीचे दब गया था और मिट्टी के साथ मिट्टी हो गया था --

घास पर चलना मना है

मेरा नाम रानो है। मैं इस उजाड़ बाग़ की मालिन थी। मैंने इस बाग़ को सजाने और संवारने में कभी कोई कमी शेष नहीं रखी। यही कारण था कि किसी समय यह बाग़ अपनी सुन्दरता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। मैंने इस बाग़ की हरी घास पर चलने वालों को कभी नहीं रोका। क्योंकि प्रातःकाल के समय ओस से नहाई हुई मखमली घास पर नंगे पैर चलना स्वास्थ्य के लिए हितकारी होता है तथा यदि कोई नंगा शरीर ताज़ा घास पर रेंगने लगे तो उसमें एक अपना सुरूर है। एक अनोखा आनन्द है -- कम से कम मेरा अनुभव तो यही कहता है -- ख़ैर यह पुरानी बातें हैं -- अतीत की यादें हैं परन्तु यादों को कभी-कभी ताज़ा कर लिया जाए तो बुरा क्या है।

मेरे बाग़ के बाहर एक गुलमोहर का पेड़ लगा था। मुझे वह बहुत प्रसन्द था -- मैंने बहुत प्रयास किया कि वह सदा-सर्वदा के लिए मेरे बाग़ के अन्दर आ जाए और इसकी सुन्दरता को बढ़ाए। परन्तु गुलमोहर की जड़ें रीतियों-रिवाजों की काली मिट्टी से भरी धरती में बहुत गहरे तक धंसी हुई थीं -- मेरे लाख प्रयास करने पर भी वह इस काली मिट्टी में से न उखड़ सका और मेरे बाग़ की शोभा नहीं बन सका -- परन्तु कभी-कभार हवा के किसी तेज़ झोंके के साथ वह मेरे बाग़ के अन्दर अवश्य झांक लेता। आज इस गुलमोहर का अस्तित्व मुझे कहीं नहीं दिखाई देता। क्या पता जीवन की मरुभूमि में आज वह ठोकरें खा रहा होगा या अपने लाल-लाल फूलों से किसी बिलौरी शीशों वाले घर की शोभा बढ़ा रहा होगा या फिर भगवान जाने वह हरा भी होगा या मेरी भांति दुर्भाग्य की भट्टी में जलकर राख हो चुका होगा। क्योंकि

दुर्भाग्य में कोई किसी का साथ नहीं देता -- हाँ! मैं बात तो अपने बाग़ की कर रही हूँ परन्तु इस बाग़ के साथ गुलमोहर की बात भी जुड़ी है। और वह ऐसे कि जब मेरे बाग़ की कोंपलें फूटने लगी थीं तो सब से पहले गुलमोहर ने ही मुझे मेरे बाग़ की सुन्दरता का आभास दिलाया था। उन दिनों वह प्रायः मेरे बाग़ के अन्दर झांकता रहता। बड़ी आकर्षक दृष्टि से। मेरा खिल रहा बाग़ लहराने लगता -- मेरे बाग़ की कुँवारी घास गुलमोहर को गले लगाने के लिए व्यग्र रहने लगी। मैं उसके फूलों की सुगन्ध सूँघने के लिए मचलने लगी। पानी अग्नि के समीप रहे तो वह कभी न कभी उबलने लग जाता है। अग्नि तथा पानी की इस असमंजस में अन्ततः एक दिन वह मेरे बाग़ के अन्दर आ ही गया। और मेरी हरी-भरी मखमली घास पर रेंगने लगा। मुझे पहली बार, उसका घास पर रेंगना बहुत भला लगा था। मैं चाहती थी कि वह जीवन भर मेरे बाग़ की घास पर रेंगता रहे और सदा के लिए उसका स्वामी बन जाए परन्तु गुलमोहर तो मेरे बाग़ पर बच्चा-सक़्क़ा की भांति केवल अढ़ाई दिन का राज करना चाहता था और यह बात मुझे स्वीकार नहीं थी -- मैंने एक ऐसी माँ की कोख से जन्म लिया था, जिसके जीवन के चूल्हे में सदा आकांक्षाओं तथा कामनाओं की लकड़ी ही जलती रही। उसकी आकांक्षाओं का भिक्षापात्र बीच बाज़ार टूटा था। और धीरे-धीरे वह बाज़ार में टूटने की अभ्यस्त हो गई। वह एक टकसाल बन गई। एक ऐसी टकसाल जिसमें ढला हुआ हर सिक्का भिन्न होता। फिर टकसाल सिक्के ढाल-ढाल कर थक गई। वह घिस गई और समाप्त हो गई -- गुलमोहर मुझे सदा इस बात का ताना देता। आप तो जानते ही हैं कि बात का घाव बहुत गहरा होता है। विशेष कर उसकी बात का.....जिसे कोई अपना समझे। परन्तु यहाँ तो अपने ही छलते हैं। अपने ही तो बातें करते हैं। यहाँ अपनी आँख का शहतीर किसी को दिखाई नहीं देता परन्तु दूसरों की आँख का तिनका सब को दिखाई दे जाता है -- मैं भी दोषों के बलिवेदी पर भेंट चढ़ा दी गई। मेरी आत्मा दुखी हो गई। मेरा दिल चिंतित

रहने लगा। मैं प्रायः यह गीत गुनगुनाती रहती।

गुड्डी कट जांदी जिन्हां दी प्रेम वाली
मुंडे लै जांदे ओन्हां दी डोर लुट के

परन्तु मैंने तो अपने बाग़ के सौन्दर्य की डोर को गुलमोहर के हाथों स्वयं लुटाया था। मेरे जीवन में वह सब से पहली दुर्घटना थी -- पर जो दुर्घटना एक बार हो जाए वह चाहे फिर सौ बार दोहराई जाए -- तो कोई अन्तर नहीं पड़ता --

गुलमोहर मुझे छोड़कर कहीं चला गया। न जाने कहाँ गुम हो गया। उसके खो जाने के पश्चात् मैं वह कुँवारी बन गई जिसने यह दावा नहीं किया कि उसका शरीर अनछुआ है....पवित्र, निर्मल और पावन है। फिर मेरे चन्द्रमा को दाग़ लगते रहे। मेरी चाँदनी मैली होती रही -- और मैं धीरे-धीरे किसी नोची की भांति अनियंत्रित हो गई। मैं सड़क पर लगा हुआ एक ऐसा नल बन गई कि जिसका जी करता प्यास बुझा लेता। मैंने कभी कसी को नहीं रोका। प्यासे लोग अपनी प्यास बुझाते रहते और मैं उनकी जेबें हल्की करती रहती -- जेबें हल्की होती रहीं -- मेरे बाग़ में निखार आता गया। रंग-बिरंगे फूलों की सुगन्ध मेरे बाग़ को मस्त बनाने लगी। खुली हवाओं की मस्ती मन-पंछी को उड़ने के लिए उकसाने लगी -- रोशनियों की चमक -- मेरे मस्तिष्क का द्वार खटखटाने लगी। मेरे बाग़ के हरे पत्ते मेरी पीली सोच में गुम हो गए। मैं नए ज़माने के रास्ते पर चलने लगी और -- घाट-घाट का पानी पीने लगी। मेरे सामने कई कस्बियों की मिसी हुई। अल्हड़ नवयौवनाओं की नथ उतरी। शहरों की अथाह भीड़ में मेरे बाग़ के फूल बहुत खिले, बड़ी रौनक़ें रहतीं। दौले शाह के चूहे मेरी मुरादें पूरी करते। कामदेव मेरे बाग़ की परिक्रमा करता। मैं नए युग के सभी गुर सीख गई थी। मेरा व्यापार यौवन पर था। मैं देवताओं की भूख मिटाती। उनके शरीरों की अग्नि को शीतल करती। क्योंकि उस जगत में शरीरों की अग्नि बुझाना शालीनता एवं ईमानदारी का कार्य समझा जाता था। इसलिए मेरे बाग़ के अन्दर वह पशु प्रतिदिन जुगाली करते जिन्हें पराई नांद का चारा

मज़ेदार लगता। प्रतिदिन कोई मुझे ढूँढता और कभी किसी को मैं। इसी प्रकार जीवन के दिन व्यतीत हो रहे थे -- मैं प्रसन्न थी, इसलिए कि उस जगत में प्रसन्न रहना अच्छी नैतिकता का प्रमाण था। मेरे बाग़ में कई भंवरे आए। परन्तु जो आनन्द एवं प्रसन्नता मेरे बाग़ को गुलमोहर के मिलन से मिली थी, वह फिर जीवन में फिर नहीं मिली। इस एक पल को पकड़ने की आशा में, मैं बहुत भटकी। मैं स्वयं सदा प्यासी रही परन्तु परायों की प्यास बुझाती रही। उनकी मीठी बातों के धोखे खाती रही। कोई मेरे बाग़ की सुन्दरता की प्रशंसा करता, मुझसे प्रेम जताता -- तो मुझे अच्छा लगता, ऐसी बातें प्रतिदिन होतीं -- मैं समझती थी कि प्रेम के मीठे बोल मेरी पीड़ा का निदान हैं -- परन्तु मेरा रोग असाध्य था।

फिर एक समय ऐसा आ गया जब मैं इस चोर-सिपाही के खेल को व्यर्थ समझने लगी, मेरे ऐसे समझने में मेरा बाग़ भी साथ दे रहा था। हम दोनों चाहते थे कि अपना आप किसी को सौंप दें। परन्तु हमें वैसा कोई मिला नहीं। मेरी सुन्दरता के चरम ने मेरे पतन को जन्म दे दिया था और मेरा बाग़ मेरे पतन की सीमाओं में प्रवेश करने की तैयारी करने लगा -- मैंने यह कभी सोचा भी न था कि मेरा बाग़ इतनी शीघ्र शोक के काले परिधान पहन लेगा। पतझड़ की रुत ऐसे दौड़ती-भागती आ जाएगी। पतझड़ की रुत ख़ाली-ख़ाली, उजड़ी, कुरूप -- पतझड़ की रुत, शताब्दियों का दुःख, अब जीवन दुःखों, कष्टों, तंगियों और चिंताओं में डूबा रहने लगा। कई बार मृत्यु -- मेरी आँखों में आँखें डाल कर मुझे घूरने लगती। मैं भयभीत हो जाती, मैं मरना नहीं चाहती थी परन्तु जीवन के रंग भी तो फीके पड़ रहे थे। मेरे बाग़ पर पतन क्या आरम्भ हुआ, सब यार-दिलदार पक्षियों सरीखे उड़ गए। मेरा कोई न बना। दुख की पगडंडी ने मुझे थका दिया। आशंकाओं तथा चिंताओं की धुंध फैलती गई -- और ऐसे ही जाने कितनी शताब्दियाँ बीत गईं -- फिर आकाश पर एक कोहराम मचा। काले बादल गरजने लगे और ज़ोर से बरसने लगे। बिजली की कड़क से बादलों के पर्वत कण-कण होने लगे। धुंध छटती गई, आकाश

एक बार फिर हँसने लगा। सूर्य ने अपना रूप दिखाया और मुझे लगा जैसे बादल मेरे बाग़ की सारी गंदगी धो कर ले गये हैं। जैसे मेरे बाग़ को लगा ग्रहण समाप्त हो गया है। मेरी अन्धी आँखों में प्रकाश की किरणें फूटने लगीं और मुझे दूर हँसते आकाश में गुलमोहर का अस्तित्व दिखाई देने लगा। वह धीरे-धीरे नीचे आ रहा था। मेरा बाग़ गुलमोहर को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह एक बार फिर लहराने लगा। गुलमोहर समीप आता गया और आते-आते मेरे बाग़ के समीप खड़ा हो गया। उसने मेरे साथ तो कोई बात नहीं की परन्तु मेरे बाग़ को बहुत ध्यान से देखने लगा। फिर उसने अपने आप को बलुआ भूमि से उखाड़ा और मेरे बाग़ के अन्दर आ गया। वह अन्दर आते ही मेरे बाग़ के पीले पत्ते चुनने लगा। दोबारा हरियाली लाने के असफल प्रयास में वह सारे बाग़ की गुडाई करने लगा। सूखे फूलों की क्यारियों को पानी देने लगा -- उसने बाग़ के चारों ओर एक लक्ष्मण रेखा खींची -- और लक्ष्मण रेखा के बाहर एक बड़ा बोर्ड लटका दिया -- बोर्ड पर मोटे शब्दों में लिखा -- घास पर चलना मना है --

लकीर

भारत तथा पाकिस्तान के सम्बन्धों के विषय में यह मुहावरा पूर्ण रूप से सही बैठता है कि लोहार की साँसी कभी आग में और कभी पानी में। ऐसे सम्बन्धों के बावजूद भी दोनों सरकारों का यह निर्णय अति प्रशंसनीय था कि कश्मीर के दोनों ओर बसने वाले लोगों को आपस में मिलने दिया जाए। इसी निर्णय के अनुसार पाकिस्तानी शासित कश्मीर में जाने के लिए मुझे और मेरी बेगम को राज्य सरकार की ओर से आदेश तथा यात्रा परमिट मिला था। नियत तिथि को जो बस श्रीनगर से मुज़फ़्फ़र आबाद जानी थी उसमें अभी दस-बारह दिन शेष थे। मुझे आतंकवादियों की ओर से हत्या करने की धमकियाँ भी मिली थीं परन्तु मैंने अपना निश्चय नहीं बदला और कश्मीर के उस ओर बसने वाले अपने सम्बन्धियों के लिए उपहार आदि ख़रीदने के लिए व्यस्त रहा। हम दोनों पति-पत्नी खुश थे। मेरी बेगम नसीम के फुफेरे भाई-बहन और मौसियाँ मीरपुर, रावलपिण्डी, इस्लाम आबाद, लाहौर और सियालकोट में रहती हैं जिनसे भेंट करने हम आधी शताब्दी के बाद जा रहे थे। भारत और पाकिस्तान के निजी और सरकारी टेलीविजन चैनल हमारे और हमारे सम्बन्धियों के इन्टरव्यू दिखा रहे थे और समाचार पत्र हमसे सम्बन्धित मुख्य समाचारों से भरे हुए थे। ऐसे दिन व्यतीत होते गए और फिर पाँच अप्रैल 2005 का वह दिन भी समीप आ गया, जब हमें जम्मू से श्रीनगर के लिए प्रस्थान करना था ताकि सात अप्रैल को श्रीनगर से मुज़फ़्फ़र आबाद जाने वाली पहली बस में सवार हो सकें। यह एक ऐतिहासिक निर्णय था जो शायद अमरीकी दबाव के कारण भारत और पाकिस्तान की सरकारों ने

लिया था और जिसके लिए अटल बिहारी वाजपयी, डॉक्टर मनमोहन सिंह और जनरल मुशर्रफ़ की हर ओर से सराहना हो रही थी।

हमारी तैयारी पूर्ण हो चुकी थी। हम कल प्रातः श्रीनगर से जाने के लिए बिल्कुल तैयार थे कि देर रात गए एक वृद्ध मुझसे मिलने आया और कहने लगा। :

"मैंने तुम्हारे साथ कुछ बातें करनी है।" मैंने उस वृद्ध व्यक्ति को आदर-मान के साथ अपने पास बिठाया और कहा :

"कहिए बाबा जी, क्या बात करनी है।"

मैं तुमसे अकेले में बात करना चाहता हूँ। यहाँ लोगों से तुम्हारी बैठक भरी हुई है।"

मैं उस वृद्ध को दूसरे कमरे में ले गया। उसकी उम्र अस्सी वर्ष से अधिक होगी परन्तु वह स्वस्थ दिखाई दे रहा था। लम्बा, सुन्दर और गठीले शरीर का मालिक। हम दोनों कमरे में बिछे क़ालीन पर बैठ गए। मैंने देसी नमकीन चाय मँगवाई और फिर वृद्ध से कहा :

"बाबा हुक्म करो। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।"

"बेटा! मैंने तुम को दो-तीन बार टेलीविजन चैनलों पर देखा है। मुझे पता चला है कि तुम कश्मीर के दूसरे हिस्से में जा रहे हो जहाँ मेरी साबरी रहती है। तुम्हें देखकर जाने क्यों मुझे यह विश्वास होने लगा कि तुम मेरा काम अवश्य करोगे और मुझे निराश नहीं करोगे।"

"बाबा जी आप कहें, मुझे प्रसन्नता होगी यदि मैं आपके किसी काम आ सकूँ।" मेरा उत्तर सुनकर उस वृद्ध व्यक्ति के चेहरे पर रौनक़ आ गई और फिर उसने कहना आरम्भ किया :

"बेटा! मेरा नाम सजावल चौधरी है। मैं पुंछ जागीर की तहसील बाग़ का रहने वाला हूँ। मेरा गाँव भोट भाईयाँ के पास था। देश के विभाजन और पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के साथ ही मुझ पर दुखों और संकटों का पहाड़ टूट पड़ा। दुःख के नश्तरों ने मेरा सीना छलनी कर दिया। दिल के घावों ने बहुत

तड़पाया परन्तु मैं कुछ न कर सका और समय के हाथों विवश हो गया।"

"बाबा जी! बात जल्दी समाप्त करें। मुझे मिलने के लिए कई दोस्त-मित्र आए हैं और मैंने उनसे भी बातें करनी हैं और प्रातः श्रीनगर के लिए सफ़र शुरू करना है।"

"अच्छा बेटा अच्छा, मैं अपनी बात जल्दी समाप्त करने का जतन करूँगा परन्तु तुम ध्यान से सुनो और मेरी सहायता करो। ईश्वर तुम्हें इसका फल देगा। बेटा! मैं भोट भाईयाँ के नम्बरदार चौधरी सिराजदीन के घर चाकरी करता था। माल-मवेशी पालना, भेड़-बकरियाँ चराना, गाए-भैंसों का दूध दुहना, जंगल से लकड़ी लाना, फलदार बाग़ों में दवाईयाँ छिड़कना, पनचक्की से मक्की, गेहूँ और धान पिसवा कर लाना, चश्मे से पानी भरना, मेरे प्रतिदिन के काम थे। फिर रात को चौधरी सिराजदीन के पाँव दबाना.....मेरा बाप बचपन में ही स्वर्ग सिधार गया था और माँ ने दूसरी शादी कर ली थी। मेरा सौतेला बाप मुझे बात-बात पर मारता, पीटता और गालियाँ बकता। आख़िर तंग आकर मैं घर से भाग निकला और चौधरी सिराज के पास आ गया। उसने मुझे आसरा दिया और अपना नौकर रख लिया। साफ़-सुथरा खाना, शुद्ध दूध, दही और मक्खन खाने से मेरा शरीर शक्तिशाली हो गया। उस पर जवानी की कलियाँ खिलने लगीं। मैं अवसर मिलते ही गाँव के अखाड़े में जाता। डण्ड पेलता, पहलवानों के साथ ज़ोर-आज़माई करता और दांव सीखता। मेरे बाज़ुओं और जांघों की मछलियाँ और चौड़ी छाती देखकर अल्हड़ युवतियाँ मुझे रिझाने का जतन करतीं। उनकी बेलगाम आँखें मुझे बहकाने का प्रयास करतीं। मैं जानबूझ कर अनजान बन जाता और अपना भोलापन नहीं छोड़ता परन्तु एक गाजर रंग की मुटियार मेरे पीछे पड़ गई। मैंने उससे पीछा छुड़ाने की बहुत कोशिश की परन्तु उस मरी निर्लज्ज को प्रेम का बुख़ार चढ़ा हुआ था। उसका नाम साबरी था और वह चौधरी सिराज की इकलौती बेटी थी। वह बहुत सुन्दर थी। उस जैसी नैन-नक़्श वाली यौवना लाखों में कोई एक होगी

पर मुझे कोई अधिकार नहीं पहुँचता था कि मैं नम्बरदार के मान-सम्मान पर हाथ डालूँ। मैं चौधरी सिराज के एहसानों तले दबा हुआ था। मेरे पास अपना कुछ भी नहीं था। मेरे भाग्य की पिटारी में निर्धनता का साँप कुण्डली मार के बैठा हुआ था परन्तु सच बात यह है कि साबरी मुझको चाहने लगी थी। मैं उससे जितना दूर भागता वह उतना ही मेरे समीप आती जाती।

लड़कियाँ बेल की भांति होती हैं जिनको बढ़ते देर नहीं लगती। जभी तो माता-पिता को पता ही नहीं चलता कि कब उन्होंने यौवन की दहलीज़ पार कर ली है और कब प्यार का शहद चाट लिया।

साबरी के सौन्दर्य की बहार देखकर उसके लिए निकाह के संदेश आने लगे। चौधरी की आँखें खुलीं और वह भी साबरी के लिए कोई खाते-पीते और शालीन घर का लड़का खोज करने लगा।

मैं चौधरी सिराज का नमकहलाल था और नहीं चाहता था कि प्रेम की गंध हवेली के बाहर फैले। एक दिन मैं जब चौधरी की टाँगें दबा रहा था तो उसने हुक़्क़ा ताज़ा करने के लिए कहा। मैंने हुक़्क़े में ताज़ा पानी डाला। चिलम में तम्बाकू भरा। चूल्हे से जलते कोयले चिलम में रखे और हुक़्क़ा चौधरी के सामने रख दिया। वह हुक़्क़े के कश लेने लगा और मस्ती में सैफ़-उल-मलूक गाने लगा। मैंने अवसर सही जाना और धीरे से कहा :

"सरकार! मैं अपनी पनचक्की लगाना चाहता हूँ। शाम सवेरे आपकी सेवा करूँगा और दिन को पनचक्की चलाऊँगा। वैसे तो आपके होते हुए मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं है पर मैं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता हूँ; यदि आप अनुमति दें तो मैं जंगल के समीप वाली नदी पर पनचक्की लगाना चाहता हूँ। सवेरे घर का सारा काम समाप्त करके माल-मवेशी ले जाऊँगा, पनचक्की भी चलाऊँगा और पशु भी चरा कर लाऊँगा।" चौधरी ने मुझे अनुमति दे दी। मैं पनचक्की चलाने लगा। मैंने सोचा कि इस प्रकार साबरी से मेरा पीछा छूट जाएगा परन्तु मैं ग़लती पर था। साबरी बाज़ सरीखी आँख रखती थी। वह अपनी सहेलियों के

साथ हर दिन सैर करने के बहाने पनचक्की की ओर आ जाती। वह सब मिलकर गीत गातीं, माहिये सुनातीं और मुझ पर डोरे डालतीं। मैं शुरू में झिझकता रहा, शरमाता रहा फिर आख़िर मैंने अपने मन के किवाड़ खोल दिए और साबरी चुपके से मेरे दिल की कुटिया में दाख़िल हो गई और प्यार की वर्षा में मुझे भिगो गई। आप तो जानते ही हैं कि पानी बड़ा मनमौजी होता है। इसका जी करे तो तैराकों को डुबो देता है और चाहे तो डूबतों को किनारे लगा देता है। ईश्वर जाने कि मैं डूबा था या पार उतरा था परन्तु स्पष्ट बात यह है कि पानी यदि आग के पास रहेगा तो उस में कभी न कभी उबाल आ ही जाता है। मुझे पता ही नहीं चला कि कब इश्क़ का नाग उबलते पानी में से निकला और मुझे डंक मार गया। मैंने भी रांझे यार की भांति खंजरी पकड़ी और साबरी के प्रेम भरे गीतों का हिस्सा बन गया। हम प्रतिदिन मिलने लगे। इस इश्क़ निगोड़े ने हमारे अंग-अंग में मस्ती के झूले सजा दिए और मैंने अपनी नींदें साबरी के नाम कर दीं। वह रोज़ दिन चढ़े मेरे पास आती और मुझे अपने हाथों से चूरी खिलाती और मैं उसे प्रेम के रसगुल्ले खिलाता। हम हँसते, खेलते, सैफ़-उल-मलूक गाते। धीरे-धीरे हमारे इश्क़ के ताप की तपिश साबरी के माता-पिता तक पहुँचने लगी। इससे पहले कि यह तपिश उनको जला देती वह साबरी के लिए दूल्हा ढूँढने लगे। रिश्ते आने लगे। पूछताछ होने लगी। एक-आध जगह बात आगे बढ़ने लगी। मैं चुप था क्योंकि नौकर तो हमेशा मालिक के समक्ष गूँगा होता है परन्तु साबरी ने साहस करके अपनी माँ से कहा :

मैं सजावल को चाहती हूँ। वह मेरा रांझा जोगी है और मैं उसकी जोगन। हमारी जोड़ी बहुत जचती है। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। आप बाहर ताकना-झांकना बंद करें। जब घर में लड़का है तो बाहर ढूँढने का क्या लाभ। हमारी शादी करा दो। मैं आपकी इकलौती बेटी हूँ। सजावल हमारे घर में ही रहेगा और सारी उम्र आपकी सेवा करेगा। उसका आपके सिवा और कोई नहीं है। वह यहाँ ही पला-बढ़ा है और यहाँ ही अपनी

गृहस्थी बनाएगा। अम्मां तू अब्बा को समझा।"

साबरी की बातें सुनकर उसकी माँ आखें फाड़-फाड़ कर देखने लगी और कहने लगी :

"साबरी! चौधरी को क़हर चढ़ा हुआ है। वह सजावल के टुकड़े कर देगा। सजावल के साथ तुम्हारी शादी की बात सोची भी नहीं जा सकती। गाँव के नम्बरदार की बेटी की शादी एक नौकर के साथ। यह नामुम्किन है। उसके पास है ही क्या। वह तुम्हें कहाँ से खिलाएगा। साबरी! तिनकों से घोंसले तो बनते हैं परन्तु घर नहीं बनते। तुम पर सजावल ने जादू कर दिया है। इसीलिए तुम यह बकवास कर रही हो।"

"अम्मा सुन! झूट को फटकार और सच को सत्कार। इसलिए अपनी और हमारी इ़ज़्ज़त बचा। इसे दाग़ न लगने दे।" पर वह टस से मस न हुई। एक दिन जब घर में बताशों के टोकरे आए तो साबरी ने होने वाले सम्बन्धों को आरी से काटने का निर्णय कर लिया। आधी रात के समय वह निर्भय हो के मेरे पास आई और कहने लगी :

"चलो यहाँ से भाग चलें। मेरे माता-पिता नहीं मानते। इसलिए चलो वहाँ चलें, जहाँ कोई धर्म हो न कोई सगा सम्बन्धी और न ज़ात-पात, न ज़ुल्म हो न क़हर, दहशत हो न वहशत। चलो वहाँ जाकर घर बसाएँ।"

मैंने बड़ा समझाया। उसे इतना बड़ा क़दम उठाने से मना किया परन्तु उसने एक न सुनी। हम उसी रात वहाँ से निकल पड़े। मैदानी और पहाड़ी सफ़र करने लगे। नदी, नाले, दरिया फलांगने लगे और आख़िर राजौरी के गाँव साज में आ गए। हम दोनों ने निकाह कर लिया। मैंने साज नदी पर ही अपनी पनचक्की लगा ली और गेहूँ, मक्की और धान पीसने लगा और रोटी कमाने लगा। मैं साबरी का पूरा ध्यान रखता। उसकी हर इच्छा पूरी करने का प्रयास करता क्योंकि उसने अपने सारे सपने मेरे नाम कर दिए थे। हम दोनों ख़ुश थे। हमने एक छोटा सा कच्चा घर भी बना लिया। पाँच वर्षों के अन्दर-अन्दर हमारे

आंगन में सांवल और नफ़ीसा खेलने लगे। मैं डट कर मेहनत करने लगा। मैंने पनचक्की के साथ ही एक किरयाने की दुकान भी खोल ली जहाँ गाँव के लोग शहद, राजमाश, देसी घी, गीज़ा चावल और गुच्छियाँ बेचने के लिए लाते और बदले में ज़रूरत की चीज़ें खरीद कर ले जाते। हम अपनी छोटी सी दुनिया में खुश थे।

एक दिन राजौरी के बाज़ार गुज्जर मंडी की एक बड़ी दुकान से सौदा ख़रीद कर मैं बाहर निकला ही था कि चौधरी सिराजदीन के लंगोटिये यार सरदार उत्तम सिंह ने मुझे देख लिया। मैंने आँखें चुराने का बड़ा जतन किया परन्तु व्यर्थ। उसने मुझे दबोच लिया और साबरी के विषय में पूछने लगा। मैं उसे अपने घर ले आया। चाचे उत्तम सिंह को देखकर साबरी ख़ुशी से पागल हो गई और दौड़ कर उसके गले लग गई और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। चाचा उत्तम सिंह उसे चुप कराता रहा परन्तु आँखों की बाढ़ किनारे तोड़ कर बह रही थी। चाचा उत्तम सिंह भी काफ़ी देर तक हिचकियाँ लेता रहा। आख़िर दिल का ग़ुबार निकला तो साबरी ने अपने दोनों बच्चों को चाचे उत्तम सिंह से मिलाया। फिर साबरी चाय बना कर ले आई। सबने मिलकर चाय पी। उसने मेरे और अपने बारे में सरदार चाचे को विस्तार से बताया और फिर अपनी माँ और अब्बू के बारे में पूछा।

"बेटी! तुमने घर से भाग कर उन पर बड़ा अत्याचार किया। तुम चौधरी सिराजदीन के घर का रौशन चिराग़ थीं। उसके मान-सम्मान की पगड़ी। तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें बड़े लाड-प्यार से पाला था परन्तु तुम सजावल के प्यार में अन्धी होकर घर से भाग निकलीं। तुमने बाप के मान-सम्मान का फूलदान बीच चौराहे तोड़ दिया। जब चौधरी को पता चला तो उसने अपनी दोनाली निकाली और सजावल को मारने के लिए निकल पड़ा। उसके साथ उसके गुर्गे भी थे। किसी ने दरान्ती पकड़ी, किसी ने बरछा तो किसी ने तलवार। जिसके हाथ जो हथियार आया उसने वह उठाया और चौधरी के साथ चल पड़ा। पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई गई। सबने मिलकर तलाश शुरू की। स्थान-स्थान पर छापे मारे

गए परन्तु तुम लोग न जाने कहाँ छुपे थे कि किसी के हाथ न आए।

अन्ततः चौधरी थक-हार कर अपनी हवेली में कैद हो गया और अपना दुख-दर्द आँसुओं की भाषा में व्यक्त करने लगा। उसके दिल के घावों पर मरहम लगाने वाला कोई नहीं था। बदनामी और लज्जा ने उसकी सारी खुशियाँ निचोड़ ली थीं। इस दुर्घटना ने उसकी आत्मा के तारों को हिला कर रख दिया था। तुम्हारे कारण शरीकों ने ढोल बजाए और तोहमतें लगाने लगे। सम्बन्धी जन दिल की भड़ास निकालने लगे। हर ऐरा ग़ैरा नम्बरदार की पगड़ी उछालता। तुम्हारी माँ भी दिन-रात रोती रहती। तुमने उसकी नींदें हराम कर दी थीं। उसकी आँखें केवल तुम्हें खोजतीं। तुम दोनों ने उनके सौभाग्य पर झाडू फेर दिया था। मैं चौधरी का दोस्त था परन्तु मैं भी कुछ न कर सका। वह अपमान और बदनामी के कुएँ में डूब गया। उसने अपने जीवन को मृत्यु का फंदा लगा लिया। हवेली वीरान हो गई। तुम्हारी माँ की दुनिया उजड़ गई। वह कभी चौधरी को और कभी तुम्हें याद करके रोती रहती है।"

"सरदार चाचा! यदि हमें अब्बू जी की मौत का पता चलता तो हम ज़रूर घर जाते। कम से कम उनकी क़ब्र पर मिट्टी डालते और फ़ातिहा पढ़ते। माँ के दुःख में शरीक होते। परन्तु हमें कैसे पता चलता। हमने कब किसी को बताया था कि हम कहाँ जा रहे हैं। मैंने अपने अस्तित्व को अपने माता-पिता के अस्तित्व से अलग कर लिया था परन्तु वह अपने जिगर के टुकड़े को अपने अस्तित्व से अलग नहीं कर सके और जुदाई की भट्टी में जल कर राख हो गए।"

"सरदार चाचा! तुम्हारी दस्तार का तुर्रा सदा ऊँचा रहे। मुझे मेरी माँ के पास ले चलो। वह अकेली रह गई है। उसका दुःख बांटने वाला वहाँ कोई नहीं है। मैं कुछ दिन उसके पास रहूँगी और हो सका तो उसे साथ ले कर आऊँगी। उसका वहाँ अब कौन है। सरदार चाचा! मैं तुम्हारी भी बेटी हूँ। मेरी आत्मा तड़प रही है। मुझे अपने साथ ले चलो।" फिर उसने मेरी ओर

देखा और कहने लगी :

"सजावल! क्या हम गाँव नहीं जा सकते? क्या हम अपने घर में नहीं रह सकते? वहाँ रह कर हम माँ की सेवा करेंगे। तुम अब्बू का कामकाज संभालना।" मैंने साबरी को समझाया कि मेरे लिए वहाँ परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं और फिर ईश्वर का दिया यहाँ सब कुछ है हमारे पास। कारोबार अच्छा चल रहा है। सांवल अँग्रेज़ी स्कूल में पढ़ने लगा है। अगले वर्ष नफ़ीसा भी स्कूल जाने लगेगी। इसलिए बच्चों के भविष्य के लिए मैं यहाँ ही रहूँगा। मैं स्वयं तो न गया परन्तु साबरी को सरदार चाचे के साथ जाने की अनुमति दे दी। जाती बार मैंने सरदार उत्तम सिंह से कहा कि मैं केवल तुम्हारे भरोसे साबरी को गाँव भेज रहा हूँ। वादा करो कि तुम मेरी अमानत स्वयं मुझे लौटाने आओगे। उसने मेरे सिर पर हाथ रख के विश्वास दिलाया और कहा :

बेटा! मैं वाहेगुरु सच्चे पादशाह की क़सम खाकर कर कहता हूँ कि साबरी को माँ से मिलाने के बाद वापिस लेकर आऊँगा और तुम्हारी अमानत तुम्हारे हवाले करके जाऊँगा। यह गुरु के सिख की जुबान है और सिख अपना वचन कभी नहीं तोड़ता।" और इस प्रकार साबरी चाचे के साथ अपने गाँव चली गई। सांवल और नफ़ीसा मेरे पास ही रहे। साबरी के जाने के कुछ दिनों पश्चात् देश का विभाजन हो गया। मार-काट की एक आँधी चली। क़बायली हमला हुआ। भारती फ़ौजों ने राज्य में प्रवेश किया क़बायलियों को राज्य से बाहर खदेड़ने के लिए। परिणाम यह हुआ कि भारत के साथ-साथ जम्मू व कश्मीर राज्य भी विभाजित हो गया। साबरी भोट भाईयाँ में रह गई और उसका सजावल राजौरी में। उसके जाने के पश्चात् मैं जुदाई की अग्नि में जलता रहा परन्तु अपने कर्त्तव्यों को निभाता रहा। मैंने बड़ा परिश्रम किया। सांवल और नफ़ीसा को पढ़ाया। राजौरी में आटे की एक बड़ी मिल लगाई। सांवल और नफ़ीसा की शादियाँ कीं। आज मैं पोते-पोतियों वाला हूँ। सांवल मिल का सारा काम संभाल रहा है। दिन बड़े अच्छे गुज़र रहे हैं परन्तु मेरी आत्मा अशान्त है। उसे

एक पल भी शान्ति नहीं मिली। वह साबरी को मिलने के लिए तड़पती है। जीवन का कोई भरोसा नहीं। क्या ख़बर कि कब आत्मा शरीर के बन्धन से मुक्त हो जाए। इसलिए बेटा मैं तुम्हारे पास यह फरियाद लेकर आया हूँ कि तुम साबरी का पता लगाना कि वह जीवित है या मर गई। यदि जीवित है तो कहाँ है। मैं बेटा! मरने से पहले साबरी को देखना चाहता हूँ। इसलिए मेरी सहायता करो।"

सजावल बाबा की कहानी सुनकर मैं बड़ा दुःखी हुआ। मैंने उसे भरोसा दिलाया कि मुज़फ़्फ़र आबाद पहुँचते ही मैं सबसे पहले अम्माँ-साबरी को तलाश करूँगा। उससे भेंट करके तुम्हारी आपबीती सुनाऊँगा और वापसी पर ईश्वर ने चाहा तो तुमको सारी जानकारी दूँगा।" बाबा मुझे दुआएँ देता हुआ चला गया और मैं विचार करने लगा कि देश के विभाजन के कारण लाखों परिवार उजड़े। लाखों मृत्यु का ग्रास बने। मैं मन ही मन में विभाजन के लिए उत्तरदायी राजनेताओं और धार्मिक जुनूनियों को कोसता रहा। सारी रात गहमा-गहमी रही। मित्रगण और सम्बन्धी जन आते-जाते रहे। चाय, क़हवा चलता रहा। सवेरे हम दोनों ने श्रीनगर के लिए प्रस्थान किया और शाम को वहाँ पहुँच गए। रात मैंने अपने मित्र जनाब ताज मोहि-उल-दीन के घर व्यतीत की जो सिक्योरिटी ज़ोन में रहते हैं। सात अप्रैल 2005 को देश के प्रधान मंत्री और उनके साथ आए केन्द्रीय मंत्रियों और मुख्यमंत्री ने हमें पोलो ग्राउण्ड श्रीनगर से इस ऐतिहासिक यात्रा के लिए विदा किया। दोपहर का खाना हमने ऊड़ी में खाया। फिर "कारवान-ए-अम्न" बस कमान पुल की ओर चल पड़ी। कस्टम वालों ने हमारे परमिट चेक किए, परिचय पत्र देखे, सामान की तलाशी ली और हमें चिकोटी जाने की अनुमति दे दी। कमान पुल के दूसरी ओर पाक सेना अधिकारियों, मुज़फ़्फ़र आबाद डिविजन के कमीशनर और डिप्टी कमीशनर ने हमारा स्वागत किया। जबकि चिकोटी में पाकिस्तानी शासित कश्मीर के प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों और उच्चाधिकारियों ने हमारा स्वागत किया। रात

हमने मुज़फ़्फ़र आबाद में व्यतीत की और दूसरे दिन सभी अपने-अपने सम्बन्धियों से मिलने चले गए। हमें लेने के लिए मीरपुर से आशिक़ भाई आए थे। दो दिन मीरपुर में रहने के पश्चात् मैं भोट भाईयाँ चला गया और पता पूछते-पूछते चौधरी सिराज के घर पहुँच गया। मैं अम्माँ, साबरी से मिला। वह मुझे मिलकर बहुत खुश हुई। मैंने उसके साथ बातें कीं। सजावल से सम्बन्धित, सांवल और नफ़ीसा के विषय में। मैंने बताया कि सजावल बाबा की आँखों में तुम्हें मिलने की तड़प अभी भी ताज़ा है। अम्माँ साबरी मेरी बातें सुनती रही और रोती रही। उसकी आवाज़ में पीड़ा थी और आँखों में उदासी। वह कहने लगी :

"सजावल ने तो अपना दुःख व्यक्त कर दिया परन्तु मेरे दुःख की कहानी का उसे कैसे पता चलता। बेटा! मैंने बड़े जतन किए कि किसी भांति सजावल के पास जा सकूँ। बच्चों से मिल सकूँ परन्तु सीमाओं की काँटेदार तार ने मेरी आत्मा को लहूलुहान कर दिया। फिर भी सच्चे ईश्वर को मेरी दशा पर दया नहीं आई।" अम्माँ साबरी ने मेरे सामने दूध का गिलास रखा और अपनी आपबीती सुनाने लगी :

"चाचे उत्तम सिंह के साथ जब अपने गाँव आई तो दोनों माँ-बेटी ने बहुत आँसू बहाए और दुख साँझे किए। अम्माँ ने मुझे कोसते हुए कहा, "हमारी सिर्फ़ कहानी रह गई। अकेली जान फ़ानी रह गई। तुम्हारी दीद को आँख सवाली हो गई। आशा की हाँडी ख़ाली हो गई। मेरे दुखों की नाव पीड़ा की लहरों में डोलती रहती। जानवर भी अपने घर का रास्ता नहीं भूलता परन्तु तुम तो सबको भूल गईं। माँ, बाप, घर और गाँव का दुलार सब कुछ। तेरे बिना ख़ाली हवेली में हँसी के फव्वारे सूख गए परन्तु समय जुदाई के घावों के लिए सब से बड़ा मरहम होता है।" फिर उसने मुझे गले लगा लिया और मुझे चूमने लगी। बेचैन आत्माओं को शान्ति मिली। फिर मैंने सजावल, सांवल और नफ़ीसा के विषय में जानकारी दी और बताया कि हम राजौरी में सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सजावल मुझे और बच्चों को बहुत प्यार करता है।

घर की सारी ज़रूरतें पूरी करता है। हमें किसी चीज़ की मोहताजी नहीं है। दाता का दिया सब कुछ है हमारे पास। गाँव वाले, सम्बन्धी जन और मेरी सहेलियाँ सब मुझे मिलने के लिए आए। पता ही नहीं चला कि दस-बारह दिन कैसे बीत गए। एक दिन चाचा उत्तम सिंह हमारे घर आया। और कहने लगा कि क़बायली जत्थे रियासत में दाख़िल हो गए हैं। रियासती सेनाएँ भाग गई हैं। महाराजा श्रीनगर से जम्मू चला गया है और क़बायलियों ने क़हर मचाया हुआ है। वह लोगों की हत्याएँ कर रहे हैं। उन्होंने लूटमार मचा रखी है।" दो-चार दिनों के बाद चाचा उत्तम सिंह दोबारा आया और कहने लगा :

महाराजा ने भारत के साथ विलय कर लिया है और भारतीय सेनाएँ क़बायलियों को खदेड़ने के लिए रियासत में दाख़िल हो गई हैं। भीषण लड़ाई हो रही है। कई इलाक़ों से क़बायली पीछे हट गए हैं। उसने मुझे तैयार होने के लिए कहा ताकि वह सजावल की अमानत उसके पास पहुँचा सके और अपना वादा निभा सके। उसने कहा :

"यह सब भारत के विभाजन और पाकिस्तान नाम का एक नया देश बन जाने के बाद हुआ है। साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं। लोग हिन्दू, मुसलमान और सिख के नाम पर मारे जा रहे हैं। साम्प्रदायिक अग्नि की लपटें यहाँ भी भड़क रही हैं। ईश्वर जाने क्या बनेगा। इसलिए तुम तैयार हो जाओ। हम सवेरे राजौरी के लिए निकल जाएँगे।"

मैंने अम्माँ को साथ चलने के लिए बहुत ज़ोर लगाया परन्तु वह न मानी। वह अपना घर छोड़ने के लिए तैयार न हुई। अगले दिन प्रातः चाचा उत्तम सिंह घोड़े लेकर आ गया। अम्माँ ने रोते-बिलखते हुए मुझे विदा किया। मेरी आँखों से भी बाढ़ उमड़ रही थी। हम मदारपुर के मार्ग से बलनोई पहुँचे। वहाँ रात व्यतीत की। दूसरे दिन सूर्य निकलने से पहले हम वहाँ से चल पड़े। अभी मेण्ढर के समीप सख़ी मैदान ही पहुँचे थे कि पठान बलवाईयों ने हमें घेर लिया। एक बलवाई जब मेरी ओर बढ़ने लगा तो चाचे

उत्तम सिंह ने उसे ललकारा और तलवार निकाल ली। परन्तु बलवाईयों के पास बन्दूक़ें थीं। चाचे ने बड़ी दिलेरी के साथ सामना किया परन्तु तलवार बन्दूक़ का मुक़ाबला न कर सकी। चाचा उत्तम सिंह शहीद हो गया, मेरी लाज बचाते-बचाते और अपना वचन निभाते-निभाते। मान-सम्मान, शालीनता तथा सच के स्तम्भ ढह गए। बलवाईयों ने मेरा अपहरण कर लिया और लूट के माल की बाँट में मुझे करामत ख़ान के हवाले कर दिया। जो मुझ जनम जली को अपने इलाक़े बालाकोट ले गया। मैंने उसे अपने जीवन का सच सुनाया परन्तु उसे मुझ पर दया नहीं आई। मेरी पीड़ा दुगनी हो गई परन्तु मैं कुछ न कर सकी। केवल अपने भाग्य को कोसती रही। मैं विवश हो गई। मैं जानती थी कि भेड़ जहाँ भी जाएगी कुतरी जाएगी। सो करामत भेड़ की ऊन कुतरने लगा। वह हरामी बड़ा अत्याचारी था। उसने मुझे दो वर्ष तक बंदी बनाए रखा। फिर ऐसा हुआ कि मेरे संयम ने उसके अत्याचार पर विजय प्राप्त कर ली। एक नेक औरत के माध्यम से मैं वहाँ से भाग निकली और अपने गाँव अम्माँ के पास आ गई। अम्माँ मेरा दुःख सहन न कर सकी। वह रोगी रहने लगी। वह हड्डियों का पिंजर बन गई और अन्ततः समाप्त हो गई। मैं अकेली रह गई। समय पँख लगा के उड़ने लगा। मेरे भीतर के समुद्र में अनगिनत भंवर थे। अम्माँ, सजावल, सांवल और नफ़ीसा सब इस भंवर में चक्कर काटते रहते। मैंने कई बार मौत को गले लगाने का जतन भी किया परन्तु जीवन ने मुझे मरने नहीं दिया। मैंने दुआएँ माँगना छोड़ दीं क्योंकि दुआएँ क़बूल होने का ढंग भूल चुकी थीं। परन्तु बेटा! मेरे हाथों पर जुदाई की मेंहदी बड़ी गहरी है। यह अभी तक फीकी नहीं पड़ी और सजावल मेरी वास्तविकता है, मेरा प्रेम, मेरी अर्चना। मेरे दिल ने सदा उसके नाम का ही जाप किया है। अब उदासी और पीड़ा की एक लम्बी ऋतु के पश्चात् तुम पहली बार फूलों की सुगन्ध की भांति आए हो। मेरे सपनों को साकार करने आए हो। मैं कुएँ की दीवार पर उगा एक ऐसा पीपल हूँ जिसकी कोई पूजा नहीं करता। जिस पर कोई धागा नहीं बाँधता। मैं तो

डार से बिछड़ी कूंज हूँ जो तुम्हारे कारण फिर से अपनी डार से मिल सकती हूँ। कहते हैं कि "जिस को ईश्वर तारे उसे कौन मारे" और तुम तो मेरे लिए फरिश्ता बन कर आए हो। इसलिए मेरी सहायता करो। मैं सजावल से मिलना चाहती हूँ। सांवल और नफ़ीसा को मिलना चाहती हूँ। बेटा! जीवन कच्चे घड़े की भांति बड़ा बे-ऐतबारा होता है इसलिए श्वास-डोरी टूटने से पूर्व मुझे राजौरी ले चलो।"

अम्माँ साबरी की आपबीती सुनकर मैं बड़ा दुखी हो गया। मैं सोचने लगा कि इस विभाजन से हर स्थान पर घृणा की आँधी चली। लाखों जानें व्यर्थ में गईं। धर्म और जुनून की राजनीति ने अग्नि और ख़ून की होली खेली। करोड़ों मनुष्य इस सुनामी में नष्ट हुए परन्तु कुछ प्राप्त न हो सका। विनाश के खण्डहरों ने केवल इतिहास का सृजन किया। धरती अपने स्थान पर स्थित रही। वह बाँटी नहीं जा सकी। सभ्यता और सँस्कृति बाँटी नहीं जा सकी परन्तु धरती को बाँटने वाले मर खप गए, मिट्टी में मिल गए।

मैंने अम्माँ साबरी को विश्वास दिलाया कि मैं उसके परमिट के लिए पूरा प्रयास करूँगा। फिर मैं दस दिन तक लाहौर, रावलपिण्डी, सियालकोट, गुजरात, कुसूर, साहीवाल, टैक्सला, हड़प्पा और शारदा के ऐतिहासिक स्थलों में घूमता रहा। भारत की प्राचीन सँस्कृति और सभ्यता के उत्थान तथा पतन को देखता रहा। वेदों की धरती पर उनकी रचना करने वालों को ढूँढता रहा। परन्तु खण्डहरों के अतिरिक्त मुझे कुछ न मिला। पागल मनुष्यों ने अपनी जड़ें स्वयं काट दी थीं। हमारे परमिट की अवधि समाप्त हो चुकी थी। इसलिए हम अपना दौरा पूरा करके मुज़फ़्फ़र आबाद आ चुके थे ताकि दूसरे दिन श्रीनगर के लिए वापसी की यात्रा कर सकें। रात मुज़फ़्फ़र आबाद डिविजन के कमीशनर की ओर से हमें रात का खाना दिया गया। वहाँ मैंने कमीशनर साहिब को अम्माँ साबरी और सजावल बाबा की दुखभरी कहानी सुनाई और निवेदन किया कि अम्माँ साबरी को सीमा के इस ओर आने की अनुमति दी जाए ताकि अम्माँ साबरी सजावल से मिल सके।

अपने बच्चों सांवल और नफ़ीसा को गले लगा सके। कमीशनर साहिब ने मुझे भरोसा दिलाया कि वह अम्माँ साबरी के परमिट बनाने के सिलसिले में हर प्रकार की सहायता करेंगे। सवेरे नाश्ते के बाद हम मुज़फ़्फ़र आबाद से श्रीनगर के लिए चल दिए। सरकारी अधिकारियों और हज़ारों लोगों ने हमें विदाई दी। दोपहर का खाना हमने फिर ऊड़ी में खाया और शाम के पाँच बजे हम श्रीनगर पहुँच गए। कश्मीर के इन्सपेक्टर जनरल पुलिस जावेद मख़्दूमी ने हमें वहाँ पुलिस गेस्ट हाऊस में रखा। दूसरे दिन हम जम्मू अपने घर पहुँच गए। मित्रगण सब हमें मिलने आए। वह पाकिस्तानी शासित कश्मीर (जिसे वहाँ आज़ाद कश्मीर कहा जाता है) के सम्बन्ध में पूछने लगे। वहाँ की परिस्थितियाँ, लोगों की आर्थिक स्थिति, क्षेत्र की उन्नति, शिक्षा, राजनैतिक सोच अर्थात् वहाँ की सामूहिक परिस्थितियों के विषय में पूछताछ करते रहे। सारा दिन यही बातें होती रहीं। शाम को मैंने सजावल बाबा से टेलीफोन पर बात की। सजावल बाबा मेरी बातें सुनकर रोने लगा। मैंने उसे ढाढ़स बँधाया और बताया कि जल्दी ही अम्मां साबरी उन्हें मिलने राजौरी आ रही है क्योंकि उसके परमिट बनने की कारवाई शुरू हो चुकी है और वहाँ के सरकारी अधिकारियों ने मुझे विश्वास दिलाया है कि इस सम्बन्ध में वह अम्माँ साबरी की पूरी सहायता करेंगे। सजावल बाबा बहुत खुश हुआ और मुझे ढेर सारी दुआएँ दीं।

लगभग दो महीने के बाद सजावल बाबा का फोन आया। वह बड़ा खुश था उसने बताया कि अम्माँ साबरी "चक्काँ दे बाग़" वाले मार्ग से रावलाकोट पुंछ वाली बस से आई थी और वह उसे पुंछ से राजौरी ले आए हैं। उसने बताया कि अम्माँ साबरी को केवल पन्द्रह दिनों का परमिट मिला है जिसकी अवधि और पन्द्रह दिन तक बढ़ाई जा सकती है जब कि वह चाहता है कि साबरी को यहाँ रहने की स्थाई अनुमति मिल जाए क्योंकि इसका वहाँ कोई नहीं है। इस लक्ष्य के लिए वह मेरी सहायता चाहता है। मैंने सजावल बाबा को समझाया कि दोनों देशों के मध्य ऐसा कोई

समझौता नहीं है। फिर भी मैं प्रयास करूँगा कि ऐसा संभव हो सके। दिन व्यतीत होते गए। मैं सांवल को साथ लिए हर सम्बन्धित अधिकारी से मिला। विदेश मंत्रालय के मंत्रियों एवं मुख्यमंत्री से मुलाक़ातें कीं परन्तु कुछ न बन सका। हमारे सारे प्रयास असफल हो गए। एक महीना व्यतीत होते पता ही नहीं चला। अम्माँ साबरी के जाने का समय समीप आ गया। जाने से दो दिन पूर्व मैं जम्मू से राजौरी गया ताकि अम्माँ साबरी से मिल सकूँ। मैंने देखा कि वहाँ कोहराम मचा था। बच्चे दुखी बैठे थे। सजावल बाबा के वीरान दिल के भीतर खुशियों का जो बाग़ कुछ समय के लिए खिला था, सजा था और सुगन्धित हुआ था वह वीरान हो गया था। उसका दिल मर चुका था। उसकी दुनिया दोबारा उजड़ चुकी थी। उसके सीने के घाव फिर से हरे हो गए थे। वह अधीर था। वह रो-रो कर कह रहा था।

"इस उम्र में इसे वहाँ कौन संभालेगा। वहाँ इसका कौन है। यदि साबरी यहाँ रह जाए तो सरकार का क्या जाएगा। 80 वर्षीय बुढ़िया से सरकार को क्या ख़तरा हो सकता है।" सजावल की बातें सुनकर हर आँख भर आई थी परन्तु सब विवश थे। सजावल बाबा ने अपने तौर पर भी सभी सरकारी द्वार खटखटाए थे पर किसी ने द्वार नहीं खोला था। अन्ततः वह दिन आ गया जब अम्माँ साबरी को "चक्काँ दे बाग़" से रावलाकोट जाना था। सजावल, सांवल, नफ़ीसा और उनके बच्चे अम्माँ साबरी को सीमा तक छोड़ने आए थे। कस्टम पोस्ट पर ज़रूरी जाँच-पड़ताल होने के उपरान्त अम्माँ साबरी हौले-हौले नो-मैन-लैंड की ओर चल रही थी। सजावल बाबा, सांवल, नफ़ीसा और अम्माँ साबरी के पोते-पोतियाँ, नवासे और नवासियाँ उसे जाते देख रहे थे। अम्माँ साबरी की इच्छा थी कि वह जीवन की अन्तिम घड़ियाँ सजावल और बच्चों के साथ व्यतीत करे परन्तु ऐसा न हो सका। आधे रास्ते में पहुँच कर अम्माँ साबरी रुक गई शायद सुस्ताने के लिए। वह नो-मैन-लैंड की दोनों ओर देख रही थी। उसकी नज़रें कभी सजावल को देखतीं तो कभी अपने बच्चों को। वह दोबारा चलने

लगी परन्तु दो-चार क़दम चलते ही उसकी टाँगें काँपने लगीं और वह गिर पड़ी। उसको उठाने के लिए दोनों देशों के सीमा सुरक्षा दल दौड़े परन्तु जब वह अम्माँ साबरी के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि अम्माँ साबरी की आत्मा रूपी चिड़िया शरीर का पिंजरा छोड़ चुकी थी और सारे नियम, कानून और आचार संहिता से मुक्त हो चुकी थी।

मृत व्यक्ति की गाथा

उस दिन भारी हिमपात हो रहा था। शाम तक दो-अढ़ाई फुट बर्फ़ जमा हो चुकी थी। सारा गाँव बर्फ़ की चादर तले दब चुका था। ऐसी दशा में मेरा घर जाना अत्यन्त कठिन था क्योंकि मेरी पनचक्की से मेरे घर की दूरी तीन किलोमीटर थी और बर्फ़ पर चलना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। इसलिए मैंने पनचक्की में ही रात व्यतीत करने का निर्णय किया। मैंने आलू और मोठ पकाए और मक्की के आटे की रोटियाँ बनाईं और तिमरू की चटनी के साथ खाना खा के सो गया। रात के कोई दस-ग्यारह बजे होंगे कि किसी ने द्वार ज़ोर-ज़ोर से खटखटाया। मेरी नींद खुल गई और मैं द्वार खोलने के लिए उठा। मैंने पूछा, "भाई कौन है?"

"दरवाज़ा खोलो, हम मुसाफ़िर हैं। बर्फ़ गिर रही है। सफ़र करना अत्यन्त कठिन है। बर्फ़ बन्द होने तक हम तुम्हारे पास रुकेंगे।" मैंने दरवाज़ा खोला। चार सुन्दर नवयुवक कमरे के भीतर प्रविष्ट हुए। उनके हाथों में बन्दूक़ें थीं और उन्होंने पिट्ठू उठाए हुए थे। उन्होंने अपनी पीठ से सामान उतारा और दीवार के साथ रख दिया। फिर उनमें से एक कहने लगा :

"उठो मन्ज़ूर! हमारे लिए खाना बनाओ। हम सवेरे से भूखे हैं। बहुत लम्बी यात्रा करके आए हैं कल रात हम मरमत के क्षेत्र में थे। आज की रात यहाँ रुकेंगे और सवेरे तड़के तहज्जुद के वक़्त यहाँ से चले जाएँगे।"

"परन्तु तुम मेरा नाम कैसे जानते हो? तुम तो मुझे यहाँ के रहने वाले नहीं लगते। फिर तुम मुझे कैसे जानते हो?"

"हम तुम्हें ही नहीं बल्कि तुम्हारे पूरे परिवार को जानते हैं। तुम्हारे बाप का नाम मुहम्मद अमीन है जो डुड्डू पंचायत का

सरपंच है। तुम्हारा घर मौज़ा सगाड़ी में है। तुम्हारे तीन भाई हैं। तुम्हारी एक बहन जखेड में ब्याही हुई है और दूसरी धूना में। तुम्हारी उम्र 35 वर्ष है। तुम शादीशुदा हो और तुम्हारे तीन बच्चे हैं। तुम रोज़ अज़ान के समय पनचक्की पर आते हो और दीपक जलने के समय घर जाते हो और बताओ क्या पूछना चाहते हो?"

"पर तुम लोग कौन हो? मैं तुम्हें नहीं जानता।"

"तुम अभी भी नहीं समझे। हमें सारी दुनिया जानती है। इन बन्दूक़ों को देख रहे हो। इन थैलों में पड़े बारूद को देख रहे हो। हम मुजाहिद हैं। भारतीय साम्राज्य के विरुद्ध लड़ने वाले मुजाहिद। हम तुम्हारी आज़ादी के लिए भारतीय सेना और पुलिस के साथ लड़ रहे हैं। तुम जल्दी रोटी पकाओ और हमें खिलाओ।"

मैंने बिना विरोध किए मक्की का आटा गूँथा और रोटियाँ पकाईं। मोठ और आलू का सालन बचा हुआ था। अखरोट की गिरियों, पुदीने और तिमरू की चटनी बनाई और खाना उनके सामने रख दिया। वह काफ़ी भूखे थे इसलिए कुछ मिनटों में ही खाना खा के निवृत्त हो गए और मेरे साथ बातें करने लगे।

"हम 'हिज़्ब-उल-मुजाहिदीन' जमाअत के साथ जुड़े हैं। हम डोडा, किश्तवाड़, गूल, म्हौर और रामनगर के क्षेत्रों में अपनी कारवाईयाँ करते हैं। हमारा लीडर शकील अन्सारी है। हमारे मुजाहिद पुलिस और सैनिकों से टक्कर लेते रहते हैं। तुम रेडियो, समाचारपत्रों और टेलीविजन पर हमारे कारनामे पढ़ते और सुनते होगे। कल हमने बसन्तगढ़ थाने पर हमला करना है। वहाँ के थानेदार रशीद ख़ान ने हमारे भूतपूर्व अमीर को एक मुख़बिर की सूचना पर एक मक़ान में सोते हुए दबोच लिया था और एक फर्ज़ी मुठभेड़ में बड़ी निर्ममता से शहीद कर दिया था और सरकार की ओर से ईनाम और तरक्की प्राप्त की थी। कल हमने उसके साथ हिसाब बराबर करने जाना है और तुम हमारे साथ चलोगे क्योंकि हमें रास्ते का पता नहीं है।

"मैंने बड़ी विनती की कि वह मुझे छोड़ दें और साथ न ले जाएँ क्योंकि यदि पुलिस और सेना को पता चल गया तो वह मुझे मार डालेंगे। मेरे माता-पिता, भाई-बहन, क़हर में फँस जाएँगे

परन्तु उन दुष्टों ने मेरी एक न सुनी। मेरे सिर आई बला नहीं टल सकी। भला ज़ोर के आगे ज़ारी कैसी। फिर दुर्घटनाएँ तो भाग्य के साथ-साथ चलती हैं। उन्होंने तहज्जुद की नमाज़ पढ़ी और चल पड़े। किरची का नाला पार करके हम बसन्त गढ़ वाली पगडंडी पर चलने लगे। अमीर का सामान मैंने उठाया हुआ था। तीन घंटों की यात्रा करने के बाद हम पहाड़ की उस चोटी पर पहुँच गए जहाँ से बसन्त गढ़ का नगर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। वह कुछ देर सुस्ताने के लिए बैठ गए। मैं अमीर के पाँव दबाने लगा और गिड़गिड़ाने लगा कि वह मुझे यहाँ से वापिस भेज दें क्योंकि दिन चढ़े लोग गेहूँ और मक्की पिसवाने के लिए आने लगते हैं। अमीर ने मुझे जाने की अनुमति दे दी। साथ में धमकी भी दी कि यदि मैंने उनके विषय में मुँह खोला और किसी को बताया तो वह मुझे जान से मार देंगे और मेरे घर को आग लगा देंगे। भला साँपों के बिल में हाथ कौन डाले। मैं वापिस अपने ठिकाने पर आ गया और चुपचाप अपना काम करने लगा। इस घटना के विषय में मैंने किसी से बात नहीं की। माता-पिता से, न बहन भाईयों से और न पत्नी से। मेरा आतंकवाद से कोई सम्बन्ध नहीं था। मैं पनचक्की चलाने के अतिरिक्त पंचायत के छोटे-मोटे काम करके अपनी गृहस्थी चला रहा था।"

मैंने उधमपुर के एस.एस.पी के समक्ष बयान दिया था जो एक नवयुवक अधिकारी था। उसने मेरे साथ सद्व्यवहार किया और मुझे उस आतंकवादी के सामने किया जिसने पूछताछ और इन्टेरोगेशन में मेरा नाम लिया था। आतंकवादी ने मुझे पहचान लिया था। उसके बयान के साथ मेरा बयान मिलाया गया। हम दोनों के बयान एक-दूसरे के साथ मिलते थे। उधमपुर के एस. एस. पी साहिब मेरी बातों से सन्तुष्ट थे। उनको विश्वास था कि मेरा आतंकवादियों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और मैंने केवल भय के मारे खाना खिलाया था। उन्होंने मुझे घर जाने की अनुमति दे दी और आगे से मुझे सावधान रहने के निर्देश दिए और कहा कि मैं अपने काम से काम रखूँ।

परन्तु उस दिन के पश्चात् थानेदार मुझे समय-असमय थाने में बुलाता रहता। धमकियाँ देता, मारपीट करता और दुर्व्यवहार करता रहता। एक दिन मेरे अब्बू मुझे साथ लेकर दोबारा एस.एस.पी साहिब से मिले और थानेदार के व्यवहार के विषय में शिकायत की। उसने आवश्यक कार्रवाई करने का विश्वास दिलाया परन्तु कुछ दिनों के बाद उस नेक अधिकारी की बदली किसी और स्थान पर हो गई और उसके स्थान पर एक अन्य सिरफिरे एस.पी को नियुक्त किया गया जिसने हमारी शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की और हमारी अर्ज़ी रद्दी की टोकरी में फेंक दी। थानेदार ने हमें अधिक तंग करना शुरू कर दिया। बस उस भलेमानस अफ़्सर के जाने के पश्चात् हम पर संकटों का पहाड़ टूट पड़ा। उस थानेदार का दुर्व्यवहार बढ़ता ही जा रहा था। उसे पाखण्ड, घमण्ड और मोह-माया का रोग था और क्रोध का कैंसर भी। हर दूसरे-तीसरे सप्ताह पुलिस मुझे पकड़ कर ले जाती और दोबारा वही प्रश्न दोहराए जाते जिनका उत्तर मैं कई बार दे चुका था। बड़ों का यह कहना मिथ्या प्रमाणित हो गया था कि "अन्दर हो सच तो बाहर जा के नच" पुलिस सच को झूठ बनाने पर अड़ी थी। थानेदार से लेकर एस. पी. साहिब तक सारे पुलिस अधिकारी मेरी पूछताछ करते, मुझे यातनाएँ देते। वह चाहते थे कि मैं उनके पाँव पर अपना पाँव रखूँ। वह सारे शिकारी थे और मैं उनका शिकार परन्तु उनको कौन समझाता कि हर घोंसले में बोट नहीं होते। उनकी निर्दयी आँखें मुझ पर क़हर ढातीं। वह मुझे मारते। टिकटिकी लगाते। मुझे मेरे जीवन की कोख में मृत्यु पलती दिखाई देती थी। मेरा घर, मेरे माता-पिता, बहन-भाई और पत्नी बच्चे सब विवशता की भट्टी में जल कर राख हो रहे थे परन्तु पुलिस वाले मेरी सच्चाई का जल पीना ही नहीं चाहते थे। मेरे अब्बू मुझे बचाने के लिए अथक प्रयास करते। बड़े-बड़े अधिकारियों और राजनेताओं के आगे माथा रगड़ते और गिड़गिड़ाते। उनकी आँखों का दरिया क़िनारे से बाहर बहने लगता परन्तु किसी को उन पर दया नहीं आती।

माया की छाया के बिना मेरी मुक्ति नहीं होती थी। एक मोटी रक़म देने पर मेरा छुटकारा होता। हर नया थानेदार चार्ज संभालते ही मुझे हवालात में बंद कर देता और मेरे अब्बू रिश्वत देकर मुझे छुड़ा लाते। इस सरकारी आतंकवाद में हमारी ज़मीन जायदाद बिक गई। माल मवेशी बिक गए, परन्तु हमारी गुहार को न्याय किसी ने नहीं दिया। न्याय के बर्तन हमें हर जगह ख़ाली मिले। हमें कोई भी अपने अन्तस की सुनने वाला नहीं मिला। आप तो जानते ही हैं कि दिल टूटते और दूध फटते देर नहीं लगती। मेरे माता-पिता के मान-सम्मान तथा स्वाभिमान का चोला तार-तार हो चुका था। यह सब देखकर मेरे भीतर का ज्वालामुखी फटने लगा। अपमान और बदनामी ने हमारे लिए सारे मार्ग बन्द कर दिए थे इसलिए एक दिन मैंने अब्बू से कहा :

"मेरे कारण तुम्हारी ज़मीन, जायदाद, दौलत और मान-सम्मान सब समाप्त हो चुका है। तुमने मुझे बचाने के लिए स्वयं को भी दांव पर लगा दिया परन्तु सब व्यर्थ हो गया। अब तुम्हारे पास कुछ भी शेष नहीं बचा है। इसलिए अब मुझे घर से जाने की अनुमति दे दो। मैं उन आतंकवादियों के पास ही जाऊँगा जिनके कारण हमारी यह दशा हुई है। इसलिए कि मेरे पास अब कोई दूसरा विकल्प नहीं है। यहाँ हमारे माथे पर लिखी बदनामी कोई नहीं मिटा सकता। इसलिए मेरी भूलें, दृष्टताएँ और नादानियाँ क्षमा कर देना।"

मेरी बातें सुनकर अब्बू रोने लगा। अम्माँ, भाई, बहनें और पत्नी सब चीत्कार करने लगे। दुख-दर्द और चिंताओं के लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं होती। वह तो चेहरों पर लिखी होती हैं और यह लिखाई मैंने सबके चेहरों पर पढ़ी थी परन्तु मेरा इरादा दृढ़ था। रात को जब सभी सो गए तो मैं घर से निकला और सियोज धार की ओर चल पड़ा और संगलाख़ पहाड़ी पगडंडी पर चढ़ने लगा। दूसरे दिन सवेरे मैं सियोज के मैदान में था। सियोज के एक ओर भद्रवाह और चम्बा के नगर हैं तथा दूसरी ओर डुड्डू और बनी के क्षेत्र। तवी, उज्झ और नीरू नदियाँ सियोज के पास बासकुण्ड से निकलती हैं। यहाँ प्रतिवर्ष कैलाश

यात्रा आती है। एक बड़ा मेला लगता है। हज़ारों श्रद्धालू पूजा-पाठ करते हैं। सियोज जड़ी-बूटियों के लिए भी प्रसिद्ध है। गर्मियों में गुज्जर, बक्करवाल और गद्दी अपने घोड़े, गायें, भैंसें और भेड़-बकरियाँ लेकर यहाँ चरागाहों में आते हैं। इन लोगों ने यहाँ अस्थाई ठिकाने बनाए होते हैं जिनमें यह लोग रहते हैं। मैंने भी एक दिन और एक रात एक गद्दी के साथ उसके कच्चे कोठे में व्यतीत की। दूसरे दिन एक नवयुवक ने मुझे पहचान लिया। वह गद्दी के पास बकरा खरीदने के लिए आया था। बकरा खरीद कर जब वह जाने लगा तो उसने मुझे इशारे से बुलाया और पूछा कि क्या मैं किरची में लगी पनचक्की का मालिक मन्जूर हूँ? जब मैंने हाँ में सिर हिलाया तो उसने मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा। मैं चुपचाप उसके साथ चलता रहा। कोई दो घंटे चलने के बाद हम एक गुफा में प्रविष्ट हुए। मैं अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच चुका था। अमीर ने मुझसे मेरे साथ बीती सारी कहानी सुनी। फिर उसने मुझे एक नवयुवक अब्बू हम्ज़ा के हवाले कर दिया जिसने मुझे हथियार चलाने की सिखलाई दी। एक महीने के बाद अमीर ने मुझे कुछ बन्दूक़ धारियों के साथ कार्रवाई करने के लिए भेजा। मैं अपनी इच्छा से आतंकवादी नहीं बना था। मैं तो सरकारी आतंकवाद का शिकार था। यही कारण था कि मैं उनके साथ रह कर भी दुखी रहता। गुमसुम, मौन। मुझे उनके रंग-ढंग अच्छे नहीं लगते थे। घृणा और जुनून ने उनकी बुद्धि रहन रख ली थी। वह धर्म को राजनीति के लिए उपयोग में लाते थे और इस प्रकार धर्म का अपमान करते थे। घटिया रहन-सहन, अशिक्षा और अल्पबुद्धि मानसिक रोग होते हैं और ये रोग उन भटके हुए नवयुवकों में भी थे। आतंकवाद बड़ा अत्याचारी होता है। चाहे यह सरकारी हो, चाहे गैर-सरकारी आतंकवादियों की ओर से। यह शान्ति को बंदी बनाता है और न्याय को अनाथ। मैं भी अनाथ बन गया था और मेरी पत्नी बच्चे भी। मेरे घर को जाने वाले सभी मार्ग बंद हो चुके थे। उन पर पस्सियाँ पड़ी गई थीं। मेरे जाने के बाद मेरे घर का कोई भी सदस्य सुख-शान्ति से जी नहीं सका। दुखों और संकटों

के प्रेत ने सब को निगल लिया था।

दिन व्यतीत होते गए। सेना तथा पुलिस पार्टियाँ हमें पकड़ने के लिए स्थान-स्थान पर छापे मारती रहतीं। हम अपने ठिकाने बदलते रहते। हम प्रायः ग़ैर मुस्लिमों के घरों में रातें व्यतीत करते। वह निरीह मारे भय के हमें खाना खिलाते और सोने के लिए बिस्तर देते। एक दिन अमीर ने मुझे डुड्डू के नम्बरदार ठाकुर मंगल सिंह और उसके बेटे को मारने का आदेश दिया और कहा कि वह पुलिस का ख़बरी है और उसकी मुख़बिरी के कारण उसका भाई फ़ारूक़ अन्सारी अपने तीन साथियों समेत मारा गया था। मैं ठाकुर मंगल सिंह को भली-भांति जानता था। वह हमारे गाँव का सबसे भला व्यक्ति था। हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे का परिचायक, निर्धनों की सहायता करने वाला, निर्दोषों के अधिकार के लिए लड़ने वाला देवदूत व्यक्ति और मेरे अब्बू का बचपन का मित्र। इसलिए मैं यह मानने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था कि चाचा मंगल सिंह मुख़बिरी कर सकता है। वह एक सच्चा व्यक्ति था और गाँव की शान। मैंने इस मिशन पर जाने से स्पष्ट मना कर दिया। मेरी इस आदेश की अवहेलना तथा अवमानना पर अमीर तैश में आ गया और उसने मुझसे बन्दूक़ छीन ली और इस काम को पूरा करने के लिए दो आतंकवादियों को भेज दिया। अवसर मिलते ही मैंने हाशिम गुज्जर को डुड्डू भेजा, जिसका डेरा उन दिनों सियोज में था ताकि मंगल चाचा को सतर्क किया जा सके। ठाकुर मंगल सिंह एक प्रतिनिधि मंडल लेकर डिप्टी कमीशनर उधमपुर से मिला जिसने गाँव में पुलिस चौकी बिठा दी ताकि लोगों की सुरक्षा की जा सके। ऐसी ही एक घटना और हुई। अमीर ने मुझे लाटी के महाजन कस्तूरी शाह और कृष्ण लाल का काम तमाम करने का आदेश दिया। मैंने लाटी जाने से इन्कार कर दिया क्योंकि वहाँ मेरा छोटा भाई और उसका परिवार रहता था। और भी कई सम्बन्धी वहाँ रहते थे जिनके कस्तूरी शाह और कृष्ण लाल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। अब की बार अमीर मौन रहा और मुझे कुछ नहीं कहा। एक दिन अमीर

ने अपने नेतृत्व में एक सेना चौकी पर आक्रमण करने की योजना बनाई और मुझे भी साथ चलने को कहा परन्तु मुझे कोई हथियार नहीं दिया। मैं निहत्था उनके साथ चल रहा था। फिर ऐसा हुआ कि पीछे से किसी ने दो गोलियाँ चलाईं जो सीधी मेरी पीठ पर जा लगीं। मैं गिर पड़ा और तड़पने लगा। मैंने देखा कि मेरी दशा देखकर अमीर और अन्य साथी हँस रहे थे। हालांकि उनके मुँह पर कलमा और हाथ में गोला बारूद होता था परन्तु उनके दिल निर्दयी थे। वह आग लगाना तो जानते थे परन्तु आग बुझाना नहीं। उनकी आस्था को विद्या और ज्ञान की आवश्यकता थी ताकि वह आतंक को प्रेम के हवाले कर सकें। परन्तु वह असहनशील थे और असहनशीलता की मित्रता अपमान और ख़्वारी देती है जिसका प्रमाण मुझे मिल चुका था। मैं कच्ची मिट्टी का ठीकरा था, सो टूट गया और समाप्त हो गया। आकाश ने मेरी आत्मा के लिए अपने द्वार खोल दिए और मेरी मिट्टी को बर्फ़ के नीचे दबा दिया गया। किसी को मेरी मृत्यु का पता नहीं चला। मेरे घर वाले समझते रहे कि मैं आतंकवादियों के साथ हूँ और पुलिस मुझे पकड़ने के लिए छापे मारती फिरती।

फिर एक दिन मेरा हत्यारा गुलाम हैदर, जिसका कोड नाम अब्बू ज़रक़ा था, देहली पुलिस के हत्थे चढ़ गया। पूछताछ के बीच उसने सभी गुनाह क़बूल कर लिए जिसमें मेरी हत्या भी शामिल थी। देहली पुलिस ने अब्बू ज़रक़ा को उधमपुर पुलिस के सुपुर्द कर दिया। उसकी निशानदेही पर मेरा शव सियोज की दबेश्तर पहाड़ी ढलवानों के पास बर्फ़ के नीचे से निकाला गया। मेरे अब्बू ने मेरे शव को पहचान लिया और इस प्रकार मुझे मौज़ा सिगाड़ी में अपने पारिवारिक क़ब्रिस्तान में दफ़ना दिया गया। मेरी अर्थी को कन्धा देने के लिए मंगल चाचा भी आया था। कस्तूरी शाह और कृष्ण लाल भी। आज मैं इस क़ब्र में शान्तिपूर्वक सोया हुआ हूँ क्योंकि मैं एक ऐसा आतंकवादी था जिसने मानवता की हत्या कभी होने नहीं दी।

जीवित आँखों की व्यथा

मेरे कोट की जेबों में आँखों के कई जोड़े पड़े हैं जो मेरे अन्तर्मन को झिंझोड़ते रहते हैं। मेरे मन-मस्तिष्क में छेद करते रहते हैं। यह दाईं जेब में पड़ा आँखों का जोड़ा राजनाथ राज़दान का है जो मेरा जिगरी यार था और जिसे सन् सैंतालीस में क़बायलियों ने गोलियों से छलनी कर दिया था। एक गोली उसकी खोपड़ी को दो-फाड़ कर गई थी। वह तो मर गया था परन्तु उसकी आँखें जीवित थीं और मुझे घूर रही थीं। मुझे बड़ा भय लगा था। अपने आप से......क़बायलियों के आतंक से और गाँव में फैली वहशत से। परन्तु मैं कुछ नहीं कर सका था। भला चौथी कक्षा में पढ़ने वाला लड़का कर भी क्या सकता था। मैंने अपने सहपाठी राजनाथ की घूरती आँखों को अपनी जेब में डाल लिया ताकि मित्र की प्रेम-निशानी को संभाल कर रख सकूँ। आँखों देखी इस घटना के कारण एक अंतराल तक सहस्रों बिच्छू मेरी आत्मा को, मेरे अन्तस को डंक मारते रहे। और मैं पीड़ा से कराहता रहा.....

राजनाथ राज़दान को मारने की घटना अज्जर में हुई थी जो बांडीपोरा का एक बदहाल गाँव था। इस घटना का वास्तविक अपराधी अहमद शेख़ था जिसकी ज़मीन का झगड़ा सम्सार चंद राज़दान के साथ चल रहा था। अहमद शेख़ की ज़मीन सम्सार चंद के खेतों के साथ मिलती थी। वह अहमद शेख़ की ज़मीन हथियाना चाहता था। वह गाँव का साहूकार था और आवश्यकता पड़ने वालों को ब्याज पर पैसा देता था। अहमद शेख़ ने भी सम्सार चंद से ब्याज पर पैसे लेकर बेटी का विवाह किया था और उसके पास ज़मीन रहन रखी थी। अहमद शेख़ इस स्थिति में ही नहीं था कि मूल रक़म और ब्याज के पैसे वापस कर सके। जिसके

कारण सम्सार पण्डित उसकी ज़मीन पर बलपूर्वक हल चला रहा था। बस यही झगड़ा सम्सार चंद और उसके बेटे एवं मेरे मित्र राजनाथ की हत्या का कारण बना। सम्सार चंद की मुख़बिरी अहमद शेख़ ने ही की थी। क़बायलियों ने साहूकार और उसके परिवार को निर्ममता से मार दिया था। सारे गाँव वाले सम्सार चंद के देनदार थे और उससे दुखी भी रहते थे परन्तु इस घटना के लिए वह अहमद शेख़ को दोषी समझते थे और उसकी निंदा कर रहे थे और बुरा-भला कह रहे थे। गाँव वालों ने अहमद शेख़ का हुक्का पानी बंद कर दिया और उसके साथ सारे सामाजिक सम्बन्ध भी समाप्त कर दिए थे। जिसके कारण अहमद शेख़ अपने परिवार सहित सीमा की दूसरी ओर पाकिस्तान शासित कश्मीर चला गया और फिर कभी वापिस नहीं आया।

मैंने बारामूला के सेंट जोज़फ़ स्कूल से दसवीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर श्री प्रताप सिंह कॉलेज श्रीनगर में प्रवेश लिया। वहाँ से बी.ए. पास करने के उपरान्त अलीगढ़ विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त की, फिर रेडियो कश्मीर श्रीनगर में प्रोग्राम प्रोड्यूसर की नौकरी प्राप्त की। मुझे पढ़ने और लिखने की रुचि बचपन से थी। इसी रुचि ने मेरे भीतर शायरी की चिंगारी को जन्म दिया और मैं शे'र कहने लगा। शीघ्र ही मेरा नाम कश्मीर के साहित्य जगत में उभरने लगा। मेरे पिता भी शायर थे और वह उर्दू एवं कश्मीरी के राष्ट्रीय स्तर के शायर थे। शायरी का शहद उन्होंने ही मुझे चटाया था और उस प्रभाव के बीज का ही परिणाम था कि मैं शायर बन गया। मैं देश के हर छोटे-बड़े शहरों में आकाशवाणी और तदोपरान्त दूरदर्शन के निदेशक के पद पर काम करता रहा। अन्ततः डिप्टी डायरेक्टर जनरल दूरदर्शन के पद से सेवामुक्त हुआ। इस सारी सरकारी और साहित्यिक आवारागर्दी में मुझे अपना मित्र राजनाथ राज़दान कभी नहीं भूला। सरकारी काम-काज तो हर कोई करता है परन्तु जब भी कभी किसी कश्मीरी पण्डित की मिस्ल मेरे पास आती तो राजनाथ की तस्वीर मेरे सामने आ जाती। ख़ून में लथपथ उसकी

आँखें मुझे फ़ाईल की स्वीकृति के लिए मेरी लेखनी बन जातीं। यह बात मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मैंने कभी किसी कश्मीरी पण्डित की फाईल नहीं रोकी। कभी ऐसा नहीं हुआ कि उनके काम में गम्भीरता न दिखाई हो। सदा उनकी बात सुनी अपितु दूसरे विभागों में भी उनके काम के लिए सिफ़ारिश करता रहता, क्योंकि वह मेरा लहू थे और मैं उनका ख़ून। हर कश्मीरी पण्डित के अन्दर मुझे राजनाथ दिखाई देता। जिसकी मृत्यु के लिए न जाने क्यों मैं स्वयं को उत्तरदायी समझता था।

मेरे कोट की दूसरी जेब में जो दो आँखें पड़ी हैं, वह मेरे घनिष्ठ मित्र, सहभोजी पण्डित लसा कौल की हैं जो रेडियो कश्मीर श्रीनगर का निदेशक था। हम दोनों इकट्ठे बैठ कर दारू पीते। कश्मीर की राजनीति, राजनैतिक चालों, अराजकीय तथा कभी-कभी राजकीय आतंकवाद पर बातें करते। कभी खुल कर बहस करते कि 1947 ई० के बाद भारत सरकार ने वह कौन-कौन सी भूलें कीं जिससे कि लोगों के मन जीतने में अविश्वास पनपा। इन भूलों को सुधारने के लिए सरकार को कौन-कौन से पग उठाने चाहिए थे। मैं उन दिनों दूरदर्शन श्रीनगर का निदेशक था। हम दोनों कश्मीरी नवयुवकों को आतंकवाद के चंगुल से बाहर निकालने के लिए नए-नए कार्यक्रम तैयार करते। दूरदर्शन से दिखाते और रेडियो से प्रसारित करते रहते। लसा कौल कश्मीर और कश्मीरियत का अग्रदूत था उसकी मित्रता हिन्दू, मुसलमान और सिखों के साथ थी। उसके सम्पर्क अफ़सरशाही के साथ भी थे। वह बहुत सुन्दर था। हँसमुख, चुटकुले बाज़ और महफ़िल परस्त। परन्तु तथाकथित मुजाहिदों की दृष्टि में वह भारतीय गुप्तचर एजेन्सियों का एजेन्ट था और इसी आरोप में उसकी हत्या कर दी गई। उसकी आँखें मुझसे पूछ रही थीं कि उसका दोष क्या था। मैं क्या बताता। क्योंकि इस धरती पर प्रायः लोग निर्दोष ही मारे जाते हैं। मुझे स्वयं पर क्रोध आता। मैं क्रोध की अग्नि झेलता रहता और फिर लज्जा से अपनी आँखें मींच लेता।

मुहमद आज़म सागर पुंछ के पहाड़ी होस्टल का वार्डन

था। उसका बेटा निशात आज़म कृषि विश्वविद्यालय लखनऊ से एम.एस.सी एग्रीकल्चर की डिग्री लेकर घर लौट आया था। एक दिन सागर साहिब ने उसे अपने गाँव नक्का मजोड़ी भेजा ताकि वह फ़सल की कटाई करा सके। रात को वह अपने पुरखी घर में अकेला सोया था कि सेना के जवान आतंकवादियों का पीछा करते-करते सागर साहिब के मकान के अन्दर प्रविष्ट हुए। फौजियों ने निशात को सोते में ही दबोच लिया। निशात ने अपने विषय में विस्तार से बताया कि वह लखनऊ एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी से अपनी शिक्षा पूरी करके वापस लौटा है। उसने प्रमाण भी दिए और समझाया कि वह आतंकवादी नहीं है परन्तु फौजी जवानों ने उसकी एक न सुनी और उसे उग्रवादी बना के बड़ी निर्ममता से मार दिया। पूरे गाँव में हाहाकार मच गया। फौजियों के विरुद्ध धरने, जलूस और प्रदर्शन होने लगे। फौजी अपनी बात पर अड़े हुए थे कि उन्होंने उग्रवादी को गोली मारी है। सारे गाँव में भय तथा आतंक फैला हुआ था। इस समाचार को हमने अपने चैनल से दिखाया था। जिसका निशात को बड़ा दुख था। सरकार ने लोगों को झूटी सांत्वना देने के लिए एक इन्क्वायरी कमीशन बनाया, जिसकी रिपोर्ट कभी नहीं आई। निशात के जनाज़े में पूरा पुंछ शामिल हुआ। मुहम्मद आज़म सागर मेरा शायर दोस्त था। इसलिए जनाज़े में सम्मिलित होने के लिए मैं विशेष रूप से श्रीनगर से आया था। जब निशात की मैय्यत को क़ब्र में उतारा गया तो उसकी आँखें कफ़न से बाहर निकल कर मेरे पास आ गईं और मुझे घूरने लगीं और कहने लगीं कि मैंने अपने चैनल से उसका झूटा समाचार क्यों चलाया। मैं कैसे कहता कि सरकारी निर्देशों की अवहेलना से नौकरी चली जाती है और संकटों के पहाड़ टूट पड़ते हैं। मैं निशात की आँखों की क्रोधाग्नि सह नहीं सका। मैंने उसकी आँखों को कोट की ऊपर वाली जेब में रख लिया और शान्त हो गया। परन्तु निशात की मृत्यु की पीड़ा एक अंतराल तक मेरे भीतर कराहती रही।

मेरे कोट की भीतरी जेब में पड़ी दो आँखें गुलाम हुसैन

की हैं जो तोता गली का रहने वाला था और फौज का मुख़बिर था। वह स्वयं को भारत माता का सच्चा सपूत समझता था और आतंकवादियों का कड़ा विरोधी था। वह समय-समय पर आतंकवादियों की ओर से होने वाली कार्रवाईयों और उनके ठहरने के ठिकानों की सूचना सेना को देता रहता। धीरे-धीरे आतंकवादियों को पता चल गया कि वह सेना का मुख़बिर है तथा उसकी मुख़बिरी के कारण उनके कई साथी मारे जा चुके हैं। उन्होंने गुलाम हुसैन को चेतावनी दी थी कि वह अपनी हरकतों से बाज़ आ जाए अन्यथा उसे और उसके परिवार को समाप्त कर दिया जाएगा, परन्तु उनकी धमकियों का गुलाम हुसैन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ और वह अपना काम करता रहा। अन्ततः एक रात्रि आतंकवादियों ने उसके घर पर हल्ला बोल दिया। गुलाम हुसैन और उसके बीवी-बच्चे गोलियों से भून डाले गए। किसी ने भी उनकी शहादत का शोक नहीं मनाया। न भारत माता के सपूतों ने और न ही सगे-सम्बन्धियों और मित्रगणों ने। जैसे मनुष्य नहीं, कुत्ते मरे थे। गुलाम हुसैन की आँखें यह व्यवहार देखकर बड़ी अधीर थीं और मुझसे गिला कर रही थीं कि देशभक्ति का सिला क्या ऐसे ही मिलता है? भला मैं क्या कहता। इस प्रकार की सरकारी और जनता की बेरुख़ी के कई तमाशे मैंने देखे थे। इसलिए मैंने गुलाम हुसैन की आँखों को कोट की भीतरी जेब में संभाल कर रख दिया।

हरनी गाँव में चार निर्दोष, मासूम हिन्दुओं को दिन दिहाड़े मिलिटेंटों ने मौत के घाट उतार दिया था। इस घटना के कारण लोग आघात तथा क्रोध से अनियंत्रित हो गए थे। मेण्ढर, सुरनकोट, पुंछ, राजौरी और नौशहरा से लोग इस दारुण घटना का सुनकर हरनी पहुँचे थे। सरकार के विरुद्ध नारेबाज़ी हो रही थी। नेताओं के पुतले जलाए जा रहे थे। इस घटना की आँखों देखी सच्चाई को दिखाने के लिए मैं स्वयं हरनी गया था। लोगों ने बताया कि एक दिन पहले बलनोई में तैनात सेना की बटालियन के कुछ सिपाही रात को शराब के नशे में सीमा पार कर के एक शादी वाले घर की छत पर सोए हुए सात लोगों को मार कर उनके

सिर काट कर ले आए थे। जिसका प्रतिशोध मिलिटेंटों ने इस जघन्य तथा आतताई कार्रवाई करके लिया था और चार मासूम निर्दोषों को जान से हाथ धोना पड़ा था। उस घर का वृद्ध कृष्ण लाल मरते-मरते अपनी आँखें मेरे हवाले कर गया था और कह गया कि कब तक हम बैर पालते रहेंगे और एक दूसरे के सिर काटते रहेंगे। क्या हम आपस में सुख-चैन से नहीं रह सकते? मैं कृष्ण लाल को क्या उत्तर देता। मैंने उसकी आँखें कोट की दूसरी भीतरी जेब में संभाल कर रख लीं ताकि जब कभी सीमा पार की दुख सहती आँखें मुझे मिलें तो कृष्ण लाल की आँखों के साथ दोनों की पीड़ाएँ साँझी करवा सकूँ।

मेरे कोट के छोटे-बड़े कई ख़ानों में और भी आँखें पड़ी हैं। जैसे छटी सिंह पोरा के सिख शहीदों की आँखें, या फिर पथरी बल के मासूम शहीदों की आँखें, जिन्हें फौजियों ने मिलिटैंट बना के मार दिया था परन्तु जब इन घटनाओं के विरुद्ध ज़ोरदार प्रदर्शन आरम्भ हुए और यह प्रमाणित हो गया कि मरने वाले आतंकवादी नहीं बल्कि सामान्य निर्धन नागरिक थे और सब निर्दोष थे तो परिस्थितियों की गंभीरता को समझते हुए सरकार ने एक इन्क्वायरी कमीशन बना दिया। मरने वालों के शवों को क़ब्रों से बाहर निकाला गया और उनका डी.एन.ए. टैस्ट कराया गया ताकि सरकार को लोगों की सच्चाई का विश्वास हो सके। दोषी फौजियों के विरुद्ध कोर्ट मार्शल किया गया। फौजी अदालत में यह केस एक लंबी अवधि तक चला परन्तु किसी को सज़ा नहीं हुई। जबकि छटी सिंह पोरा के शहीदों के लिए तो कोई कमीशन भी नहीं बनाया गया जिसकी ज़ोरदार माँग सिख भाईयों ने कई बार की थी।

हमारे अदालती तंत्र के काम काज करने के ढंग को देखकर शहीदों की आँखों से लहू बह रहा था। मैंने उन आँखों से लहू साफ़ किया और उन्हें अपनी जेबों में रख लिया। लेकिन यह आँखें मुझसे पूछती हैं कि हमारे देश में इस प्रकार की तानाशाही कब तक चलती रहेगी? सच परखने का काँटा कब बराबर तोलेगा? परन्तु मैं क्या बताऊँ। मैं तो चौथी कक्षा की उम्र से लेकर

आज तक देख रहा हूँ कि हमारे यहाँ तो भैंसें भी काली हैं और भेड़ें भी काली। जुनूनी धर्म और राजनैतिक व्यापार और हद से अधिक हड़बड़ी फैलाने वाले प्रचार ने मानवी आत्मा, मन-मस्तिष्क को रोगी कर दिया है। जिसका निदान अब धार्मिक पुस्तकें तथा ग्रन्थ भी नहीं कर सकते। सामान्य लोग अनजान हैं। सीधे-सादे हैं। वह कड़वे शब्दों के जाल में फँसे रहते हैं। उन्हें कौन समझाए कि चूहा साँप को कैसे निगल सकता है। चींटियाँ पर्वत को कैसे उखाड़ सकती हैं। हिरण भेड़िए का शिकार कैसे कर सकता है। मैंने देखा है कि सुक़रात, मनसूर और सरमद जैसे दोस्तों के हृदय मर चुके हैं। इस दुनिया में अब इनका कोई अस्तित्व नहीं है। इनके लिखे शब्दों के अर्थ अब किसी शब्दकोश में नहीं मिलते। नुन्द ऋषि, सुल्तान बाहू, शाह हुसैन और बुल्ले शाह सब कमले सौदाई बना दिए गए हैं। इसलिए मैंने निर्णय कर लिया कि इन आँखों को इस पीड़ा और तेज़ाब में सड़ने नहीं दूँगा.......मैंने एक बड़ी क़ब्र खोदी और कोट की जेबों से सारी आँखें निकाल कर क़ब्र में दफ़्ना दीं, और घर वापिस आ गया। घर पहुँचते ही मैंने अपने अन्तस के बखिए उधेड़ दिए। मन-मस्तिष्क में कीलें गाड़ दीं और अपनी आँखें बंद करके सोने का जतन करने लगा.

प्रातः समय जब मेरी आँख खुली तो मैं यह देख कर चकित रह गया कि दफ़्न की हुई सारी आँखें मेरे कमरे की दीवारों से मुझे घूर-घूर कर देख रही थीं और अपने जीवित होने का प्रमाण दे रही थीं।

✠✠●✠✠

कुआँ और खाई

शक्ति तथा शक्तिशाली सदा निर्बल प्राणियों का ही शिकार करते हैं और समाज को अपने कोड़े से चलाते हैं। निर्धन तथा दीन लोगों के जीवन का काफ़िया तंग करते रहते हैं। दब्बू और काय लोग घरों के भीतर छुप कर फक्कड़ तोलते रहते हैं और शब्दों का चेहरा घायल करके अपना मन हल्का करते हैं। वह और कर भी क्या सकते हैं। निःसन्देह वह अपनी आशाओं, इच्छाओं तथा कामनाओं के दीपकों से अपने घरों में उजाला करने का जतन करते हैं परन्तु उनके भाग्य का अन्धकार दूर नहीं होता। उनके सिरों की पगड़ी पैरों में रुलती रहती है। लोग चाहे अपनी-अपनी पसन्द की ऋतु में जीना चाहते हैं परन्तु जी नहीं सकते क्योंकि उनकी इच्छाओं का ईंधन सदा गीला ही रहा है। समय के उत्पीड़न ने उनका जीना हराम बना दिया है। शासक, जनता को अपना दास बनाने के लिए बल के साथ-साथ छल धर्तता और चालाकी से भी इतिहास लिखते हैं। शासक के आदेशानुसार लोग सिरों पर पगड़ी नहीं बाँध सकते अपितु गले में साफ़ा और मुँह में घास का तृण रखते हैं। स्वतंत्रता में दासता की रीत आज भी चलती है और न जाने कब तक चलती रहेगी। चाण्डालों और राजनीति के दलालों की चालों के कारण स्वतंत्रता एक अपराध की भांति उनके नाम लिखी गई है। अन्धी पीसे कुत्ता चाटे वाली सरकार है। जहाँ केवल अन्धकार है। उजाले का नाम-ओ-निशान नहीं। आज साधु झूटा और चोर सच्चा है। इस वातावरण में कोई भी अपने दिल की क्यारी में खुशी के फूल कैसे उगा सकता है। चारों ओर बारूद का धुआँ, धूल-मिट्टी, आँधी, सुनामी, आग की लपटें, शोर-शराबा और शवों की सड़ांध ने

वहशत फ़ैलाई हुई है। दुमूहें साँप प्रायः लोगों को डसते रहते हैं। आहत हृदयों का चीत्कार उनका शोक करता है -- और उन मातमी चीख़ों ने उस गाँव में भी रोना-पीटना व चीत्कार-क्रंदन पैदा कर दिया था। जहाँ कई स्त्रियों की इज़्ज़त लूटी गई थी। शासक के सिपाहियों ने आतंकवादियों और विद्रोहियों को पकड़ने के लिए पूरे गाँव को घेर लिया था। सारी बस्ती में क्रैक डाऊन लगा दिया गया था। एक जवान लाऊड स्पीकर पर घोषणा कर रहा था कि सारे लोग अपने-अपने घरों से बाहर आ जाएँ और स्कूल के मैदान में इकट्ठे हो जाएँ क्योंकि उन के मकानों की तलाशी लेनी है। और आतंकवादियों को पकड़ना है जो गाँव में छुपे हैं। स्त्रियाँ और बच्चे अपने घरों के भीतर रह सकते हैं। सभी गाँव वाले स्कूल ग्राऊण्ड में इकट्ठे होने आरम्भ हो गए। वर्दी धारियों ने उन्हें घेर लिया। चार जीपों में नक़ाब पहने मुख़बिर बैठे थे। जिनके सामने गाँव वालों की परिचय परेड होने लगी। जिस व्यक्ति की ओर नक़ाब पहने हुए उंगली उठाते, उसे पकड़ कर बक्तर बंद गाड़ी में बिठा दिया जाता। कई घंटों तक ये कार्रवाई चलती रही।

दूसरी ओर शेर जवानों के दो जत्थे गाँव के घरों में घुस कर तलाशी लेते रहे। बारह वर्ष की बच्चियों से लेकर सत्तर वर्ष की महिलाओं के अंग-अंग टटोलते रहे, और आपस में हँसते रहे। अनखिली कलियाँ, ताज़ा खिले और मुर्झाए फूलों को बेरहमी से मसला गया। एक प्रलय टूटी थी। फ़ाख़्ताएँ शिकार हो गई थीं। निर्दोष यौवनों, अबला जोगनों और अभागन सुहागिनों का स्वाद चखने के बाद शेर जवान स्कूल के मैदान में आ गए। क्रैक डाऊन समाप्त हो चुका था। शासक के हवारी अपना काम सम्पूर्ण कर के जा चुके थे और लोग अपने-अपने घरों को लौट आए थे।

घरों में प्रवेश करते ही उन्होंने अपनी माओं, बहनों, बच्चियों और बहुओं की चूड़ियाँ टूटी हुई देखीं। कपड़े तार-तार और रक्तरंजित थे। सभी महिलाएँ अपनी लाज और नंगेपन का शोक मना रही थीं। यह सब देखकर विवश और असहाय गाँव

वाले रोने लगे, चिल्लाने लगे और गाँव में आई सुनामी का शोक करने लगे। अपने भाग्य का शोक, अपनी विवशता और दीनता का शोक। उनके आँसुओं का पानी आँखें जलाने लगा। दुख, पीड़ा, चिंता, निराशा तथा अपमान ने उन लोगों की साँसें रोक ली थीं क्योंकि कानून की गर्दन बन्दूक़ की नाली में फँसी हुई थी और न्याय बल तथा छल के नीचे दबा हुआ था और प्रजातन्त्र जनता का परिहास कर रहा था। हड़तालों, जलूसों और सभाओं पर बारूद छिड़का गया था। दुखड़े रोते शव मिट्टी चूम रहे थे और अनाम अर्थियाँ विलाप कर रही थीं। गाँव के अव्यस्क, युवा तथा वयोवृद्ध लोगों के भीतर क्रोध और आक्रोश का ज्वालामुखी फट रहा था। किसी की माँ की आबरू लुटी थी, किसी की बहन की और किसी की बेटी उजड़ी थी। यदि सबसे अधिक किसी का शोषण हुआ था तो वह थी औरत।

सलाम पण्डित की बड़ी बहन तथा माँ के साथ भी ज़बरदस्ती हुई थी। कुछ दिनों तक वातावरण में क्रोधाग्नि भड़कती रही। फिर गाँव के कुछ उत्साही नवयुवकों ने प्रतिशोध लेने का निर्णय कर लिया। वह मिलिटैंटों के मुखियाओं से मिले। जिन्होंने उन्हें उलटी पट्टी पढ़ाई और उनके दिमाग़ असमंजस में डाल दिए। यह जानते हुए भी कि हथियार किसी के मीत नहीं होते, वह हथियार चलाने की सिखलाई लेने के लिए सीमा पार चले गए। सीमा पार करने वालों में सलाम पण्डित भी शामिल था। जो अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र था और पीरों-फ़कीरों की कृपा से ईश्वर ने यह मधुर फल उन्हें दिया था।

वहाँ उन्हें नीलम घाटी में लगाए गए एक सिखलाई कैम्प में भेजा गया। सिखलाई आरम्भ हुई। हथियार चलाने के साथ-साथ इस्लाम के नए-नए अर्थ भी समझाए जाने लगे। बुनियाद परस्ती के मंत्र रटाए गए। स्वर्ग के सपने और नरक की यातनाओं की कहानियाँ सुनाई जाने लगीं। शहीद और ग़ाज़ी के फ़लसफ़े बताए गए। काफ़िर और मोमिन के अन्तर बयान किए गए परन्तु सलाम पण्डित ने तो शरीर और शरीरी का पाठ पढ़ा था। विवेक तथा

ज्ञान में अपनी आँखें खोली थीं। उसकी आत्मा सूफियों-सन्तों, ऋषियों-मुनियों और दरवेशों का मस्कन थी।

वह केवल उन दरिन्दों से प्रतिशोध लेना चाहता था, जिन्होंने उसकी माँ तथा बहन की इज़्ज़त लूटी थी। अन्यथा उसे मिलिटैंट बनने या तहरीक में भाग लेने में कोई रुचि नहीं थी। वह सिखलाई कैम्प में शीघ्र ही उकता गया, और व्याकुल रहने लगा। कैम्प में हथियार चलाने की सिखलाई देने के अतिरिक्त लम्बी-लम्बी दाढ़ियों वाले तथाकथित मौलाना भी आते थे जो नवयुवकों को बहलाने-फुसलाने और प्रतिकूल बातें सिखाने के अतिरिक्त उनकी सोच और बुद्धि को ताले लगाने की तरकीबों पर अमल करते थे। सलाम पण्डित को कैम्प का वातावरण देखकर यह बात समझ आ गई थी कि यहाँ सुन्दर दाढ़ियों के पीछे काले प्रेतों का बसेरा है। यहाँ स्वतंत्रता की गणना कराने के पीछे विनाश का पाठ पढ़ाया जाता है।

सलाम पण्डित कई-कई रातें जाग कर व्यतीत करने लगा। वह मौन रहकर गगन को घूरता रहता और अपने दुर्भाग्य का शोक मनाता रहता। सिखलाई कैम्प में रहते हुए भी उसकी आँखें प्रतिदिन पलायन करती रहतीं। अपने घर की परिक्रमा करती रहतीं। माँ, बहन और बाप का स्मरण होते ही उसकी साँसें उखड़ने लगतीं तथा आँखें छलक पड़तीं। वह सोचता कि वह कुएँ से निकल कर खाई में फँस गया है। कैम्प में लोगों का व्यवहार देखकर उसके भीतर का समुद्र ज्वार भाटे का शिकार हो जाता। यहाँ जैसी संगत थी वैसी ही रंगत भी थी। यहाँ सलाम पण्डित को लोगों के घर जलाकर आग सेंकने वाले लोग मिले। उन्हें कौन समझाता कि जो हथियार घाव देते हैं उन्हें अन्ततः ज़ंग लग जाता है। सलाम पण्डित के लिए बहुत कठिन दिन आए थे। दुःखों की सुनामी में वह डूब चुका था। उसका मन कैम्प से उचाट हो चुका था। वह अपने साथियों से कहने लगा कि वह कैम्प छोड़ कर घर वापिस जाना चाहता है। इस बात की सूचना जब कैम्प कमाण्डर और गुप्त संस्थानों को हुई तो उसकी बहुत पिटाई की गई। उस

पर गन्दे और दुर्गन्धयुक्त शब्दों के पत्थर मारे गए परन्तु उसने कैम्प से भागने का मन बना लिया था क्योंकि उनके साथ रहते हुए भी वह स्वयं को अकेला अनुभव करता और रात-रात भर रोता रहता। उसके मन की सौंधी मिट्टी, गीली और कीचड़ सनी हो चुकी थी। अगली प्रातः, फ़जर की नमाज़ से पूर्व वह कैम्प छोड़ कर शारदा की ओर जाने की तैयारी कर रहा था ताकि वह किशन गंगा को पार कर के टीटोवाल के जंगलों में छुप कर रात होने की प्रतीक्षा कर सके परन्तु तभी उसी समय एक और जत्था गाईड की अगुवाई में कैम्प पहुँचा। उन नवयुवकों में से एक लड़के ने सलाम पण्डित को उसके बाप की चिट्ठी दी। जिसमें लिखा था कि वह घर वापसी के बारे में बिल्कुल विचार न करे क्योंकि पुलिस और सेना मुश्की कुत्तों की भांति उसे खोज रही है। सीमा के इस ओर आते ही मुख़बिर और इख़्वानी उसकी मुख़बिरी कर देंगे और उसे मार दिया जाएगा। इसलिए वह घर वापिस आने की भूल कदापि न करे। वह लड़का सलाम पण्डित का पड़ोसी था। उसने सलाम को बताया कि पुलिस वाले उसके बाप को कई बार पकड़ कर ले गए थे। उसे यातनाएँ भी दी गईं। उसके घरवालों का जीना हराम कर दिया गया है। ख़बरी, इख़्वानी और गुप्तचर संस्थान सलाम की खोज में स्थान-स्थान पर छापे मारते रहते हैं। इसलिए वापिस जाने का अर्थ मृत्यु को निमंत्रण देना है।

सलाम पण्डित बड़ी चिंता में था। उसे घरवालों की चिंता लगी हुई थी, परन्तु वह कुछ नहीं कर सकता था। वह अपने उजड़े घर को फिर आबाद करना चाहता था। माता-पिता का सहारा बनना चाहता था। इसी जन्नत से दंगा, भय, आतंक, अन्याय तथा विवशता की समाप्ति करना चाहता था। वह नहीं चाहता था कि सीमा की रेखाओं के कारण उसके सम्बन्ध अपनी धरती से टूट जाएँ। क्योंकि दीवार के पीछे परदेस ही तो होता है। इसलिए वह शीघ्र से शीघ्र अपने सम्बन्धों की डोर को पकड़ना चाहता था परन्तु पिता की चिट्ठी ने उसकी आशाओं की हाण्डी तोड़ दी थी। परन्तु यह बात निश्चित थी कि वह सिखलाई कैम्प

में बिल्कुल नहीं रहना चाहता था। वह जानता था कि आतंकवाद और खून-ख़राबे की शत्रुता भयानक होती है। इसलिए तो वह अवसर मिलते ही कैम्प से भाग गया और सारी रात चलता रहा और भोर के समय तंबोली क़स्बे में पहुँच गया। वहाँ उसकी भेंट एक नवयुवती से हुई जो किसी स्कूल में बच्चों को पढ़ाती थी। सलाम पण्डित ने उसे अपनी कहानी सुनाई। गोरा-चिट्टा और सुन्दर जवान देखकर उस लड़की को सलाम पर दया आ गई और वह उसे अपने घर ले आई। उसका नाम ज़ैनब था और उसके पिता का नाम रहीम बख़्श....

रहीम बख़्श ने कुछ राजनैतिक सिफ़ारिशों से और कुछ पैसों की बारिशों से सलाम पण्डित की मुक्ति कराई। रहीम बख़्श ने सलाम पण्डित को व्यापार करने का सुझाव दिया और उसकी आर्थिक सहायता भी की। रहीम बख़्श के सुझाव से सलाम ने तंबोली में ही किरयाने की दुकान खोल ली। जिसमें गाँव वालों की आवश्यकता का सारा सामान रख लिया। सलाम पण्डित का काम धीरे-धीरे चलने लगा और महाजनों के इस कथन पर पूरा उतरने लगा कि पहले साल चट्टी, दूसरे साल हट्टी (दुकान) और तीसरे साल खट्टी अर्थात् आमदनी। सलाम की दुकान अब लाभ में जाने लगी थी। वह ज़ैनब और रहीम बख़्श का धन्यवादी था, जिनका प्रेम तथा स्नेह एवं आर्थिक सहायता से सलाम पण्डित अपने पैरों पर खड़ा हो चुका था। सलाम पण्डित प्रायः उनके घर जाता। ज़ैनब के साथ मिलकर उसे बड़ी शान्ति मिलती। धीरे-धीरे प्रेम तथा स्नेह का यह सम्बन्ध, रिश्तेदारी में तब्दील हो गया। सलाम और ज़ैनब का विवाह हो गया, और दोनों सुखी जीवन व्यतीत करने, लगे। उनके यहाँ दो बच्चे पैदा हुए, जिनका नाम रखा गया इमरान तथा आमना। दिन आनन्द में व्यतीत हो रहे थे। पाकिस्तानी शासित कश्मीर में रहते हुए सलाम को सत्रह-अठारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उसके बच्चे आठवीं और नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। कई बार सलाम अपने बीवी-बच्चों के फोटो सीमा आर-पार करने वाले मुजाहिदों के हाथ अपने माता-पिता को

भेजता और उन्हें लिखता कि उसकी वापसी के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल बनाई जाएँ ताकि वह अपने घर लौट सके परन्तु ऐसा कुछ नहीं हो सका।

एक दिन सलाम पण्डित और ज़ैनब अपने किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए लीपा घाटी में गए थे। वापसी पर पुलिस ने सलाम को पकड़ लिया और थाने ले गई। थाने से उसे मुज़फ़्फ़र आबाद के पूछताछ केन्द्र में ले जाया गया। रहीम बख़्श तथा ज़ैनब पुलिस के बड़े अधिकारियों और डिप्टी कमीशनर से मिले और सलाम पण्डित के निर्दोष होने के प्रमाण प्रस्तुत किए परन्तु उनकी किसी ने नहीं सुनी। ज़ैनब ने बड़े अधिकारियों के द्वार खटखटाए परन्तु कुछ नहीं बना। पूछताछ केन्द्र में सलाम पण्डित की ख़ूब मार-कुटाई और धुनाई की गई। उसके टख़ने और बाँहें तोड़ दी गईं। उसे गंभीर घायलावस्था में मुज़फ़्फ़र आबाद के अस्पताल में दाख़िल किया गया। जब ज़ैनब और रहीम बख़्श को पता चला तो वह उसे मिलने अस्पताल पहुँचे परन्तु उनको सलाम से मिलने नहीं दिया गया.....कुछ समय बाद ज़ैनब को सूचना मिली कि सलाम पण्डित को गुप्त विभाग वाले रावलपिण्डी ले गए हैं। ज़ैनब की दुनिया लुट चुकी थी। निगोड़ों ने उसकी आँखों में आँसुओं की बाढ़ भर दी थी। वह गुप्त विभाग के हर अधिकारी के आगे सवाली बनी परन्तु उसकी आस ख़ाली रही। उसे हर जगह भयानक दरिन्दे ही मिले। वो सोचती थी कि शायद ईश्वर मनुष्य बनाने की कला भूल गया है। पतझड़ की ऋतु ने उसके घर आंगन में डेरे जमाए थे। उसके बच्चे हँसना भूल गए थे। सलाम के बिना वह आधी-अधूरी भी नहीं रही थी। उसका घर वीरान हो चुका था। उसके ऊबड़-खाबड़ जीवन ने ज़ैनब के हृदय की कुटिया भस्म कर दी थी। सिक्योरिटी अधिकारियों का छल, कपट और अपमानजनक व्यवहार उसकी आत्मा को नोच रहा था। दुख, पीड़ा, दुर्भाग्य तथा पराश्रय रात दिन छाया की भांति उसके साथ-साथ चलता। वह रावलपिण्डी गई और गुप्त संस्थानों के बड़े अधिकारियों से मिली और कहने लगी :

"हमने आपकी नमाज़ें पढ़ीं और आपने हमारे लोटे तोड़े। उधर के शासकों के अत्याचार के कारण सलाम पण्डित बेचारा इधर भाग आया था। परन्तु आपने उसकी जान अज़ाब बना दी। उस भागजले ने क्या कमाया और क्या गँवाया। हाकिम की सरदारी तो दोनों ओर एक जैसी है।"

"बीबी! उसने अपना अपराध स्वीकार किया है।"

"सरकार! लाठी के आगे तो भूत भी नाचता है। उस दीन की बिसात ही क्या है। परन्तु आप सच को आदर देना कैसे सीखेंगे। साहिब जी! सलाम सच्चा और खरा व्यक्ति है। उसने कभी कानून की अवहेलना नहीं की। वह मेरे माथे का झूमर था। हम दोनों मज़दूरी करके चूरी खाते थे और रब का शुक्राना पढ़ते थे। आप ने व्यर्थ मे सलाम को पकड़ा है। सरकार! दीन के आँसू और नाव का बाँस पाताल को हिला देते हैं। इसलिए ईश्वर का भय खाओ और सलाम को छोड़ दो। उसके जाने के पश्चात् हमारे घर में भूख नाचने लगी है। न चूल्हे में आग है और घड़े में पानी। यह है हमारी ज़िंदगानी। साहिब जी! जीवित लोगों पर मिट्टी नहीं डाला करते। आप चाहे पगड़ी बाँधो अथवा पटका, यह दुनिया चार दिनों का लटका है। फिर सब ने क़ब्रों में बसेरा करना है। यह रोना-पीटना सब समाप्त हो जाएगा। केवल ईश्वर का नाम रह जाएगा। हमारे यहाँ मुसलमान, फ़िरक़ों, मसलकों, लूट-खसूट और फूट में पड़ गए हैं और इस्लाम किताबों में बंद हो चुका है। किस के आगे फ़रियाद की जाए। भला आक के वृक्ष पर भी कभी शहद लगा है। परन्तु जब तक मेरे दम में दम है मैं दम नहीं हारूँगी। जब दम नहीं रहेगा फिर कैसा ग़म। सरकार! आपने एक बात मुझे समझा दी है कि जब्र के आगे सब्र के बिना कोई चारा नहीं होता। परन्तु मेरी बात भी याद रखें कि क़यामत वाले दिन मैदान-ए-हश्र में आपका गिरेबान मेरे हाथों में होगा।

"बीबी! ज़्यादा बकवास मत करो। तुम्हारे पति ने यह बात लिखित रूप में स्वीकार की है कि वह शत्रु देश का एजेन्ट है और उसकी मुख़बिरी पर हमारे कई मुजाहिद शहीद हो चुके हैं। इसलिए

हम सलाम पण्डित को छोड़ नहीं सकते।"

यह बात सुनकर ज़ैनब बड़ी चकित हुई और कहने लगी

"परन्तु साहिब! यदि वह शत्रु देश का एजेन्ट और जासूस है तो फिर उन्होंने सलाम पण्डित को जीवित या मृत पकड़ने के लिए दस लाख रुपए का ईनाम क्यों रखा हुआ है?"

ज़ैनब का तर्क सुनकर गुप्त संस्थान का अधिकारी हक्का-बक्का रह गया और ध्यान से ज़ैनब की ओर देखने लगा। फिर कहने लगा :

"मैं इस केस की इन्क्वायरी दोबारा स्वयं करूँगा परन्तु हमारे ख़बरी ग़लत बयानी नहीं कर सकते।"

दुर्भाग्य की मारी ज़ैनब अपना सब कुछ हार के उठी और विवशता में जाते-जाते कह गई।

"हाँ आप ठीक ही कहते होंगे। दोनों ओर के ख़बरी ही सच बोलते हैं। बाक़ी सब झूठ....."

खंडर ज़मीर

"जनाब-ए-वाला! मेरे साथ जितने भी अस्थायी एस.पी. ओ लगे थे, वह सभी विशेष पुलिस अधिकारी आपने स्थायी सिपाही बनवा दिए। कई सिपाहियों को आपने सिलेक्शन ग्रेड कान्स्टेबल और कई कान्स्टेबलों को हैड कान्स्टेबल बनवा दिया। आपकी सिफ़ारिशों ने कुछ सब-इन्स्पेक्टरों को इन्स्पेक्टर भी बना दिया। केवल मैं रह गया। हुजूर मुझे भी कान्स्टेबल बनवा दें। सभी आपके गुण गाते हैं। पुलिस लाईन में सब आपकी प्रशंसा करते हैं। कृपा करके मुझे भी स्थाई सिपाही बनवा दें। मेरे विषय में भी डायरेक्टर जनरल साहिब को सिफ़ारिश कर दें। मैं आपका यह एहसान उम्र भर नहीं भूलूँगा।" एस.पी.ओ इक़बाल अपने सुप्रिन्टेन्डेंट पुलिस से निवेदन कर रहा था।

आतंकवाद को जड़ से उखाड़ने के लिए जहाँ सेना, अर्द्धसैनिक बल और पुलिस बड़ी वीरता से आतंकवादियों के विरुद्ध लड़ रही थी, वहाँ सरकार ने हथियार डालने और राष्ट्रीय धारा में शामिल होने वाले भूतपूर्व आतंकवादियों और बेकार नवयुवकों को भी अस्थायी रूप से भर्ती किया है ताकि आई.एस. आई और पाकिस्तान के नापाक इरादों को असफल बनाया जा सके। सेना तथा पुलिस के जवानों को आतंकवादियों को मारने और बहादुरी के कारनामे दिखाने पर पदक मिलते, तरक्की दी जाती और नक़द ईनाम भी मिलता और अस्थायी भरती किए गए एस.पी.ओ स्थायी सिपाही बना दिए जाते।

"इक़बाल जब से तुम भर्ती हुए हो तुमने कोई बहादुरी का कारनामा नहीं दिखाया और न ही तुम्हारे हाथों आज तक कोई आतंकवादी मरा है। फिर मैं तुम्हारी सिफ़ारिश कैसे कर सकता हूँ।

पहले किसी आतंकवादी को मारो या ज़िंदा पकड़ो फिर अपने लिए कुछ माँगो।" एस.पी. साहिब ने इक़बाल को समझाया।

"हुज़ूर! मैं भी तो हर कार्रवाई में साथ रहा हूँ। जहाँ भी आपने मुझे भेजा वहाँ गया। आतंकवादियों के विरुद्ध हर कार्रवाई में भाग लिया। आपका हर आदेश माना। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मेरे हाथों कोई आतंकवादी नहीं मरा परन्तु जनाब! परसों जब हमारी टुकड़ी नूरगली में गश्त लगा रही थी तब मैंने एक आतंकवादी को जंगल में छुपे हुए देखा। मेरे ललकारने पर उसने अपनी बन्दूक़ से फायरिंग शुरू कर दी और दो हथगोले भी फेंके। चूँकि मैंने पोज़ीशन ले रखी थी, इसलिए वह मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सका, जबकि मैंने निशाना बाँध कर गोली चलाई और वह ढेर हो गया। मैंने उस साले को चटख़ा दिया था।"

"उसकी बन्दूक़ कहाँ है और लाश.....?" एस.पी.ओ साहिब ने पूछा।

"जनाब! बन्दूक़ शायद उसके साथी ले गए हैं, परन्तु वह लाश वहीं छोड़ गए थे।"

"इक़बाल तुम्हारी कहानी में कोई दम नहीं लगता। तुम्हारी बात का कैसे विश्वास किया जाए। तुम्हाने पास क्या प्रमाण है कि उस आतंकवादी को तुमने ही मारा है?" एस.पी.साहिब ने पूछा।

"हाँ जनाब हाँ! मेरे पास पक्का प्रमाण है। मैं आज प्रमाण के साथ आपके पास आया हूँ।".....और फिर.....वह कमरे से बाहर गया और अर्दली के पास रखा हुआ अपना थैला लेकर वापिस अन्दर आया। उसने थैला खोला और उसमें से एक कटा हुआ मनुष्य का सिर बाहर निकाला और एस.पी. साहिब की मेज़ पर बड़े गर्व से रख दिया और बोला।

"यह है जनाब सबूत। अब आप को आ गया न विश्वास कि मैं भी आतंकवादी मार सकता हूँ।" और एस.पी साहिब अपनी मेज़ पर कटे हुए मनुष्य के सिर को देख कर सकते में आ गए।

✠✠●✠✠

मनुष्य के भीतर का मानुष

"जनाब! देश क्या स्वतंत्र हुआ, हमारे लिए क़हर हो गया। हम तीसरे दर्जे के नागरिक बन गए। हमारी दशा शूद्रों से भी दयनीय हो गई। हमारा परिचय देशद्रोही, विद्रोही, जुनूनी और आतंकवादी बना दिया गया है। हमें हर क्षेत्र में पछाड़ दिया गया है। हम निर्धनता और दीनता की भट्टी में जल रहे हैं। हम निरीह हो चुके हैं। हमारी विवशता पर्वत से भी भारी है। हमारे भीतर दरारें ही दरारें हैं। हमारे घरों में फैली निराशा इन्हें खुशहाली दिखती है। यह त्रिशूल, नेज़े, भाले, तलवारों और बन्दूक़ों से हमारी पहचान समाप्त करना चाहते हैं। शेख़ सादी ने ठीक ही कहा है कि जिसके हाथ में तेग़, उसी के हाथ देग़ और यह लोग हमारी ही देग़ में हमारे ही लहू से हमारा ही माँस उबालते हैं और कुत्तों को खिलाते हैं। हमारी तो देश-माता सौतेली है और बाप क़साई। यहाँ समता, निष्पक्षता और स्वतंत्रता के नारे खोखले हैं क्योंकि स्वराज इनका, राज इनका, सिंहासन और ताज इनका। हमारा क्या है? हमारे न घुटने हैं न टख़ने। जभी तो सभी हमें बंधुआ समझते हैं। हम न सुई के योग्य हैं न सिलाई के।"

"ज़मीर अहमद! इतने भावुक नहीं हुआ करते। सभी एक जैसे नहीं होते। मनुष्य, मनुष्य में अंतर होता है। कोई हीरा तो कोई कंकर होता है। अधर्मी मनुष्य हर जाति, हर सम्प्रदाय और हर बिरादरी में होते हैं। संकीर्णता, इन्तिहा पसंदी और हैवानियत दोनों ओर है। हमारे पागल मौलवी भी तो अपने सिवाए सब को काफ़िर समझते हैं और लोगों को अशिक्षा की छड़ियाँ मारते रहते हैं। बाबा नानक कहते हैं :

अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे

एक नूर ते सब जग उपजया, कौन भले कौ मंदे

परन्तु यह मौलवी अपनी फूँकनी से मृत्यु के फ़तवे फूँकते रहते हैं। बेटा! हर कोई साँस का भूखा होता है, परन्तु यह निर्धन तथा निर्दोष नवयुवकों को धार्मिक जुनून का चोला पहना कर मृत्यु के मुँह में धकेल देते हैं जबकि इनके अपने बच्चे मज़े लूटते हैं। यह धर्म की आड़ में शरीर की भीतरी गदूदें बेचते हैं। इसलिए तुम चिंता करना छोड़ दो। हांडी उबलेगी तो अपने ही किनारे जलाएगी। तुम इतना भावुक न हुआ करो। ईश्वर पर विश्वास रखो क्योंकि विश्वास के फल मधुर होते हैं। फिर बड़े बुजुर्ग भी तो कहते हैं कि मौक़ा, वक़्त पहचानिए, कोई बके गालियाँ, मुस्करा के टालिए।"

"परन्तु क्यों? हम कब तक इनका उत्पीड़न सहन करते रहें। कब तक इनकी घृणा को सहते रहें। कब तक इनकी छुरी के नीचे साँस लेते रहें। कब तक उदासी और कसमपुरसी की ठंडी रातों में ठिठुरते रहें। हमारे चूल्हे आग है न घड़े पानी। हम अपनी दुर्दशा में पेच दर पेच उलझे हुए हैं परन्तु हमारी जीवन गुत्थी सुलझती ही नहीं। हम केवल पेट के लिए सोचने पर विवश हैं क्योंकि हमें चिड़िया की चोग का चौदहवाँ भाग भी नहीं मिलता। हमारे बर्तन ख़ाली रहें और यह मिठाईयाँ खाएँ। अण्डे सेवे फ़ाख़्ता और कौए बच्चे खाएँ। यह हम पर नित नए आरोप लगाते रहते हैं। अपनी दुर्बलताओं के ठीकरे हमारे सिरों पर फोड़ते रहते हैं। यह हमें अपमानित करते रहते हैं। घृणा और तिरस्कार से देखते हैं और दोषों के नश्तर चुभोते रहते हैं। यह हमें शक्कर तो नहीं दे सकते परन्तु मीठी बात भी नहीं करते। इसलिए हमें ईंट का प्रत्युत्तर पत्थर से देना होगा। हमारे शूरवीरों ने सिर पर कफ़न बाँध कर जिहाद का जो मार्ग चुना है वह ही समस्या का समाधान है क्योंकि दुनिया बलशाली को मानती है और दुर्बलों को लताड़ती है। फिर ज़माने ने भी हमें सिखा दिया है कि दीन का कोई मीत नहीं होता।"

"ज़मीर अहमद! तुम्हें क्या हो गया है? तुम क्यों अपनी ही लगाई आग में जल रहे हो। आग और लहू के दरिया में मृत्यु

का कोई साक्षी नहीं होता। तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि बर्फ़, कोहरा और यख़ एक ही वस्तु के तीन नाम हैं जो सूर्य की तपिश से पिघल जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भिन्न-भिन्न जातियों, आस्थाओं, धर्मों और परिवारों में बँटने के बाद भी मनुष्य ही रहता है। ऐसे ही जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु के दो नाम हैं। इसलिए अपने मन पर नियंत्रण रखो। सुलह और शांति रखो और सन्तोष की चूरी खाओ। सन्तोष का ईश्वर संगी होता है। शेष अच्छे-बुरे लोग यहाँ भी हैं और वहाँ भी। हर कोई सूफ़ी-साफ़ी नहीं होता और न ही हर कोई साध, साधु होता है। इन्तिहा पसंदी के चूल्हे में जुनूनी ईंधन जलाना धार्मिक ठेकेदारों का कारोबार है। कभी बाबरी मस्जिद को उछाला जाता है तो कभी गुजरात को। कभी अक्षर धाम को और कभी राम मन्दिर को। निर्दोष और निरअपराधों की हत्याएँ यहाँ भी होती हैं और वहाँ भी। सभी राजनीति खेलते हैं परन्तु क़ब्रिस्तान और श्मशान सबके लिए समान हैं। इसलिए मेरे भाई, अपनी सोच बदलो। भाषा के आगे खाई और कुआँ सब समान हैं। और अपनी खाट के नीचे भी झाड़ू फेरा करो। ज़मीर अहमद! हर कोई अपने कौशल का चोर होता है। इसलिए ईश्वर पर भरोसा रखो। जिसने श्वास दिया है वह रोटी भी देगा। केवल हीला करने की आवश्यकता है वसीला मिलेगा क्योंकि हीले रिज़क़ और बहाने मौत। आँधी जब आती है तो अपने साथ वर्षा भी लाती है। ईश्वर सबका दाता है। जब मौला राज़ी तो फिर कैसी मोहताजी। इसलिए अपने मुँह से विष न उगला करो। सयाने कहते हैं कि जो ज़ुबान विष उगले उसको काट देना ही बेहतर होता है। फिर चाहे वह अपनी हो या पराई।”

“परन्तु हुज़ूर काले कभी सफ़ेद नहीं होते, चाहे उन्हें सौ मन साबुन लगाओ। फिर उनका चूल्हा भी अपना और चौकी भी। यहाँ प्रजातंत्र के नाम पर ढोंग रचाया जाता है। केवल ठग और ठगी होती है। जिसके पल्ले नोट हों वोट उसी के होते हैं। यह फूट डाल कर लूट मचाते हैं और जनधर्म नहीं निभाते। यह दूसरों की मोरी में उंगली डालने से हिचकते नहीं। यह बड़े जाबिर हैं और

जाबिरों से मित्रता कैसी और फिर जब रंग न हो तो संग कैसा।"

"ज़मीर अहमद! तुम सदा ऊटपटांग बातें करते रहते हो। तुम्हारा दिमाग़ शैतान की बैठक है। इसलिए यह व्यर्थ बकवाद बंद करो और कल पाडर चलने की तैयारी करो। डॉक्टर अलताफ़ और तुम मेरे साथ पाडर चलोगे। गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीने वाले लोगों के लिए याक, चौंर और चौंरी, जरसी गाय और ख़च्चरों की खरीद के लिए जम्मू कश्मीर बैंक की पाडर शाखा ने पचास केस स्वीकृत किए हैं। ज़िला डिवैल्पमैंट कमीशनर की ओर से सरकारी सहायता की रकम भी मिल चुकी है। मार्ग दुर्गम है। इसलिए हम जिप्सी में जायेंगे।"

ज़मीर अहमद भद्रवाह का रहने वाला है। भद्रवाह एक सुन्दर घाटी है। यहाँ के लोग सुन्दर, परिश्रमी और पढ़े-लिखे होते हैं परन्तु यह बुद्धिमान कई बार अल्पबुद्धियों जैसी बातें करते हैं और प्रायः हिन्दू और मुसलमान की डफली बजाते रहते हैं। इनमें ज़मीर अहमद भी है जो साम्प्रदायिकता की अग्नि भड़काने में आगे-आगे रहता है। वह आतंकवादियों के कारनामे बड़े गर्वीले अंदाज़ में सुनाता है। एक दिन कहने लगा :

"जनाब! कल सेना ने हमारे मुहल्ले की नाकाबन्दी की थी। मेरे घर के साथ ही दूसरे घर में मुजाहिद ठहरे हुए थे। दो अफ़ग़ानी, दो पाकिस्तानी और चार कश्मीरी। अपनी जान की कीमत पर भी कश्मीर को स्वतंत्र कराने को तैयार यह मुजाहिद उस घर में रात व्यतीत करने के लिए आए थे। खाना खाने के पश्चात् सोने की तैयारी कर ही रहे थे कि पास में रहने वाले एक काफ़िर ने मुख़बिरी कर दी। सेना ने मकान को घेर लिया और पूरे मुहल्ले की तलाशी लेना आरम्भ कर दिया लेकिन आफ़रीन है अपने मुजाहिद भाईयों पर कि उन्होंने बड़ी दिलेरी के साथ सैनिकों का सामना किया। और अंधेरे का लाभ उठाते हुए सेना की घेरा बंदी तोड़कर भाग निकले। जनाब! स्वर्गिक आत्माएँ मृत्यु से नहीं डरतीं। साहिब! वह कोतवाल है ना हमारे ब्लॉक अफ़्सर का भाई। कट्टर फ़िरक़ा परस्त है। उसका बस चले तो हमें गोलियों से भून

डाले। उसके बाप ने भी सन् सैंतालीस के दंगों में हमारी हत्याएँ करवाई थीं।" इस प्रकार की बातें सुन-सुनकर मेरे कान पक गए हैं परन्तु ज़मीर अहमद जैसे लोगों की काली जीभें घृणास्पद बातें करती थकती नहीं हैं। मानवी शवों को देखकर इनकी आँखें झपकती नहीं हैं।

पाडर ज़िला किश्तवाड़ का एक ब्लॉक है जो हिमाचल प्रदेश के ज़िला चम्बा की पांगी घाटी के साथ मिलता है। प्रेमियों का दरिया चिनाब भी पांगी से ही पाडर में प्रवेश करता है। पाडर नीलम की खान के लिए भी सारी दुनिया में प्रसिद्ध है परन्तु लोग निर्धनता की चक्की में पिस रहे हैं। सरकारी सहायता और बैंक ऋण के कारण लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए दूध देने वाले पशु याक, जरसी गायें, चौंर आदि खरीद करके पाडर निवासियों को दिए गए। काम पूरा होने पर हमने वापसी की यात्रा आरम्भ की और शाम ढलते किश्तवाड़ पहुँच गए। डॉक्टर अल्ताफ़ और ड्राईवर तेज राम का कहना था कि रात किश्तवाड़ में ही व्यतीत की जाए, क्योंकि रात का सफ़र ख़तरे से ख़ाली नहीं है। सेना के जवान और आतंकवादी प्रायः रात को घात लगा कर बैठे होते हैं। इसलिए वह प्रातः चलने पर बल दे रहे थे जबकि ज़मीर अहमद का कहना था कि एक डेढ़ घंटे का सफ़र है और नौ बजे तक हम सब डोडा पहुँच जाएँगे। घर जल्दी पहुँचने के लोभ में हमने ज़मीर अहमद की बात मान ली और फिर हमारी जिप्सी डोडा की ओर दौड़ने लगी। अभी ठाठरी से कोई चार किलोमीटर आगे ही पहुँचे होंगे कि सड़क के बीचों-बीच सेना की वर्दी पहने दो हथियार बंद जवानों ने ड्राईवर तेज राम को रुकने का संकेत किया। तेज राम ने जिप्सी रोकी। दोनों फौजी जवान हमारे पास आए। वह हमें घूरने लगे। फिर उनमें से एक बोला :

"सभी अपनी-अपनी सीटों पर परिचय पत्र, बटुए और दूसरे काग़ज़ात रखकर जीप से नीचे उतर आओ।"

हमने उन्हें बताया कि हम सरकारी कर्मचारी हैं और पाडर से आ रहे हैं परन्तु उन्होंने हमारी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया

और जिप्सी की सीटों पर पड़े परिचय पत्र और दूसरे काग़ज़ात देखने लगे। फिर उनमें से एक सैनिक सारे काग़ज़ात, बटुए और परिचय पत्र लेकर पहाड़ की ओर चला गया। हमने समझा कि वह हमारी फौज के सिपाही हैं और हमारे परिचय के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होना चाहते हैं। कुछ देर पश्चात् लम्बे बालों और ऊँचे क़द वाला एक सुन्दर जवान पठानी लिबास में पहाड़ी से नीचे उतरा और हमारे पास आया। उसके साथ चार जवान और भी थे। वह कभी पश्तो और कभी उर्दू में बात कर रहे थे। उनकी बातों से हमें पता चल गया कि हम आतंकवादियों के चंगुल में फँस चुके हैं, जिन्होंने फौजी वर्दियाँ पहनी हुई हैं।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"अरक़म चौधरी।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम डॉक्टर अल्ताफ़ है।"

"तुम्हारा?"

"मेरा नाम ज़मीर अहमद है।" नाम बताते हुए ज़मीर अहमद के चेहरे पर ख़ुशी और उत्साह झलक रहा था।

"इस बात का क्या विश्वास कि तुम मुसलमान हो। चलो एक-एक करके सारे कलमे सुनाओ। हम तीनों ने दो-दो कलमे सुनाए, परन्तु ज़मीर अहमद कहने लगा "हुज़ूर! आप ने मुझे पहचाना नहीं। कुछ दिन पहले आप भद्रवाह के क़िला मुहल्ला में जान मुहम्मद के घर खाना खा रहे थे। वहाँ आप से भेंट हुई थी। जान मुहम्मद मेरा मौसेरा भाई है।"

"ठीक है ठीक है। ये चौथा व्यक्ति कौन है। ओए तुम्हारा नाम क्या है?"

"महाराज मेरा नाम तेज राम है और मैं इस जिप्सी का ड्राईवर हूँ।" तेज राम ने भयभीत होते हुए कहा। वह सहमा हुआ था। उसके चेहरे का रंग भय से पीला पड़ गया था।

"अच्छा, तो तुम काफ़िर हो। तुम्हें तो हम नहीं छोड़ेंगे। गुलज़बान! ख़ंजर लाओ। इसकी गर्दन काटनी है। मैं इसको मारने

के लिए गोली नष्ट नहीं करना चाहता।"

"अभी लाया सरकार।" मृत्यु को सामने देखकर तेज राम रोने लगा और अमीर के पाँव पर गिरकर जीवनदान माँगने लगा।

"सरकार मुझे न मारो। मेरी जान बख़्श दो। मेरी पाँच बेटियाँ हैं। उनके हाथ पीले करने हैं। उनकी पढ़ाई, शादी, मुझ पर बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं और मैं कमाने वाला अकेला हूँ। इसलिए मुझ पर दया करो। मुझे छोड़ दो। हुजूर मेरा घर बरबाद हो जाएगा। मेरी बच्चियाँ दर-दर की ठोकरें खाने पर विवश हो जाएँगी। उनका कोई सहारा नहीं है। वह भीख माँगने लगेंगी। मुझ पर तरस खाएँ। परमात्मा आपका....नहीं नहीं अल्लाह आप का भला करेगा।"

"कमाण्डर! इस पर रहम खाने की कोई ज़रूरत नहीं, यह काफ़िर है। अधर्मी है इसलिए इसका सिर धड़ से अलग कर दो।" दूसरा आतंकवादी बोला।

"यह ख़ुदा को छोड़कर पत्थरों की पूजा करते हैं। इनके फौजी हमारी क़ौम पर अत्याचार करते हैं। हमारी बहू-बेटियों की इज़्ज़त लूटते हैं। सुहागिनों को विधवा और बच्चों को अनाथ बनाते हैं। इसलिए इसकी गर्दन पर ख़ंजर फेर दो। इसको बख़्शना और मुआफ़ करना बहुत बड़ा पाप है। जल्दी करो। अल्लाह का नाम लो और इसका काम तमाम कर दो।"

आतंकवादियों की आपसी बातचीत में तेज राम के जीवन की परछाईं कभी घटती और कभी बढ़ती थी। वह काँप रहा था और रोए जा रहा था।

"जनाब! इसको बख़्श दें। यह बिल्कुल सच बोल रहा है। इस ग़रीब पर रहम करें। इसे न मारें।"

"बकवास बंद करो। तुम इसके मामे लगते हो, कुत्ते कहीं के।" एक आतंकवादी बोला।

"अमीर समय नष्ट मत करो। हमने दूसरे मिशन पर भी जाना है। इस मरदूद को जल्दी जहन्नुम रसीद करो।"

"तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम तेज राम को नहीं मार सकते। इस निर्दोष निर-अपराध ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है।

निहत्थे और बलहीन को मारना किस धर्म में लिखा है। ख़ुदावंद करीम तो रब्ब-उल-आलमीन है। वह केवल मुसलमानों का रब नहीं है। हम सब मिट्टी के पुतले हैं और आदम की सन्तान हैं। हम सब का लहू एक जैसा है। हमें मनुष्य रूप ख़ुदा ने प्रदान किया है। तुम ख़ुदा की ख़ल्क़त को मारने वाले कौन होते हो। तुम्हें किसी ने बताया नहीं कि ख़ल्क़त को दुख देने से ख़ुदाई क़हर नाज़िल होता है। तुम लोग मानसिक गुलामी का शिकार हो और अतिवादियों का हथियार हो। तुम्हारी ज़बान कड़वी है और तुम्हारे दिल पत्थर। तुम मिम्बर की लकड़ी हो, न जलाने के योग्य, न बेचने के योग्य।"

ओए बदबख़्त! हम तुम्हें काफिरों की गुलामी से स्वतंत्र कराने के लिए लड़ रहे हैं। हम यहाँ कुरआन और शरीअ़त का तंत्र स्थापित करना चाहते हैं और तुम इस काफ़िर की तरफ़दारी कर रहे हो। तुम्हें शर्म आनी चाहिए।"

शर्म तो तुम लोगों को आनी चाहिए। तुम इनको काफ़िर कहते हो, परन्तु क्यों? काफ़िर तो वह होता है जो ईश्वर के अस्तित्व को न माने। परन्तु यह लोग तो ईश्वर के अस्तित्व को कई शक्लों-सूरतों में मानते हैं। यह अल्लाह तआला को परमात्मा, ईश्वर और ओम के नामों से पुकारते हैं। हमारी तरह इनकी भी आस्था है कि यह दुनिया या सृष्टि ईश्वर ने बनाई है और इसे चलाने वाला केवल ईश्वर है। फिर यह काफ़िर कैसे हुए। तुम्हारे कट्टरपंथी आक़ाओं ने या तुमने वेद नहीं पढ़े। जो हज़ारों वर्ष प्राचीन हैं और जिनमें मानवी बुद्धि को चकित करने वाली बातें दर्ज हैं। फिर हमें ऐसी स्वतंत्रता कदापि स्वीकार नहीं जिसमें दूसरे धर्मों और आस्थाओं के मानने वालों को अपनी इच्छा के अनुसार जीने का अधिकार न हो। हम भेड़ियों के वन में नहीं रहते। हम मनुष्य हैं और मानवता के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन जीना चाहते हैं। हम ईश्वर से डरने वाले लोग हैं। तुम भी ईश्वर से डरो। मृत्यु हिन्दू अथवा मुसलमान नहीं देखती। मृत्यु जिहादी या फसादी नहीं देखती। मृत्यु देशभक्त या शत्रु नहीं देखती। ख़ंजर

और बारूद निःसन्देह बड़े संगदिल और निर्दयी हैं परन्तु दिल तो पत्थर नहीं होते। उनमें जीवन धड़कता है। तुम्हें लड़ना है तो अत्याचार के विरुद्ध लड़ो। अपने भीतर के शत्रु के विरुद्ध लड़ो और हमें अपने हाल पर छोड़ दो।"

"अमीर! यह साला ख़बीस बहुत ज़्यादा बकवास कर रहा है। इसके सीने में भी गोली उतार दो। इसकी बातों पर न जाओ। बात बातों में गई तो बात गई। जल्दी से इस काफ़िर की गर्दन पर छुरी फेरो और सवाब कमाओ।"

तुम्हारे पुण्य ने हमारा जीवन कष्टप्रद बनाया हुआ है। तुमने नहीं देखा कि धरती से घास उगती है और घास भेड़-बकरियाँ चट कर जाती हैं। भेड़िये भेड़-बकरियों का शिकार करते हैं। गैंडे भेड़ियों को फाड़ देते हैं। शेर गैंडे को चीर देता है। मृत्यु शेर को समाप्त कर देती है और यह क्रम चलता रहता है। इसलिए शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं। तुम भ्रम में न रहो। शक्ति का प्रमाण यह नहीं कि तुम निहत्थे और निर्दोष लोगों को मारो अपितु शक्ति का अर्थ अपनी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पाना है। अपनी घृणा और लोभ को मारना है। हमारे नबी करीम की हदीस है कि जो कोई मुसलमान किसी ग़ैर मुस्लिम को व्यर्थ मारेगा वह नरक में जाएगा। अल्लाह तआला का फ़रमान है कि धरती पर रहने वाले लोगों पर दया करो। अल्लाह तुम पर दया करेगा। तुम निःसन्देह मुझे गोली मार दो परन्तु मैं तेज राम को मरने नहीं दूँगा। मेरी सोच के अनुसार सच और हक़ बात कहना ही सबसे बड़ा जिहाद है।"

इतनी दिलेरी और निर्भयता से अपनी बात कहने वाले और तेज राम को बचाने के लिए अपनी जान तक देने वाले व्यक्ति को मैं बड़े विस्मय से देखे जा रहा था क्योंकि यह व्यक्ति कोई और नहीं अपितु ज़मीर अहमद था जिसका आज मैं एक नया रूप देख रहा था। अमीर ने दो रकअत-नफ़ल पढ़े और फिर तेज राम को घूरने लगा। तेज राम की आवाज़ बंद हो चुकी थी। वह अमीर की ओर बड़ी विवशता और निरीहता से देख रहा था। अमीर तेज राम की ओर बढ़ा। उसने तेज राम के कन्धों पर हाथ

रखा और उसे तीखी नज़र से देखने लगा परन्तु मुँह से कुछ न बोला। तेज राम के होंठ सूख चुके थे। उसका शरीर ठंडा पड़ चुका था। उसकी साँस उखड़ी हुई थी। अमीर के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान उभरी उसने तेज राम के हाथों को मज़बूती से पकड़ा। फिर उसकी पीठ थपथपाने लगा। तेज राम की आँखों में थोड़ी-सी चमक आई। उसे जीवन फिर अँगड़ाईयाँ लेता हुआ अनुभव हुआ। अमीर ने तेज राम के हाथ छोड़ दिए। फिर वह हमारी ओर मुड़ा। वह मुस्कराता रहा। उसने हम तीनों से हाथ मिलाए और अपने साथी को हमारे पहचान पत्र और बटुए हमें लौटाने का आदेश दे दिया।

दर्द विछोड़े का हाल

सलोतरी की मस्जिद से घोषणा हो रही थी.....

"बड़े दुख के साथ सब को सूचित किया जाता है कि क़ासिम मिन्हास आज रात मृत्यु को प्राप्त हो गया। वह अपने घर में सोया हुआ था कि सीमा पार से होने वाली फायरिंग में एक गोला उसके मकान के भीतर गिरा। गोला फटने से क़ासिम मिन्हास उसी क्षण दम तोड़ गया। ईश्वर का धन्यवाद है कि उसकी पत्नी और बच्चे बच गए क्योंकि वह पड़ोस में सोमनाथ के घर विवाह के गीत गाने गए थे। नमाज़-ए-जनाज़ा दिन ढले चार बजे पढ़ी जाएगी।"

सलोतरी पुंछ, रावलाकोट सड़क पर हमारा अन्तिम गाँव है। आजकल यह सड़क सेना चौकी पर समाप्त हो जाती है। गाँव के ठीक सामने और सीमा के दूसरी ओर तेतरी नोट का गाँव है और बीच में पुंछ दरिया। इस दरिया को आप यहाँ "नो मैन लैंड" भी कह सकते हैं। सीमा के दोनों ओर सैनिकों का गोला-बारी करना प्रतिदिन की दिनचर्या है। फायरिंग और जवाबी फायरिंग अपनी सैन्य शक्ति का एहसास दिलाने, जवानों को हमेशा तत्पर रखने और शत्रु को पाठ पढ़ाने के लिए बड़ी आवश्यक समझी जाती है। इस सैन्य शक्ति के प्रदर्शन में सुन्दर धरती झुलस जाती है फिर झुलसी हुई धरती से मृत्यु उगती है। भयाक्रांत फैलता है। निर्दोष लोगों की जान जाती हैं। परन्तु इतना मूल्य तो चुकाना पड़ता है.....सीमाओं की सुरक्षा और देशों की सलामती के लिए।

.....मस्जिद से घोषणा होते ही लोग समूह-दर-समूह क़ासिम मिन्हास के घर पहुँचने लगे। बच्चे, पुरुष, स्त्रियाँ, मित्रगण, सम्बन्धी कस बलाड़ी, झलास, मँगनाड़, दर्रा और दूसरे गाँवों से

लोग जनाज़े में शामिल होने, मैय्यत को कन्धा देने, क़ब्र पर मिट्टी डालने और शोकाकुल परिवार का दुख बाँटने के लिए आने लगे। ऐसी दुर्घटनाएँ यहाँ आए दिन होती रहती हैं। यहाँ लोक ऐसे हृदयविदारक आघात सहन करने के अभ्यस्त हैं। अभी कुछ दिन पूर्व गोबिन्द राम के घर पर मोर्टार का गोला गिरा था। जिसमें उसकी माता का देहान्त हुआ था। दो भैंसें और एक गाय भी मृत्यु का ग्रास बन गईं थीं। खेत में काम कर रहे सुनील को भी तो दरिया पार से छूटी गोली छलनी कर गई थी। अपनों का शोक करना और आँसू बहाना यहाँ का चलन है। सुन्दर जीवन पर असुन्दरता के मन्हूस रंग चढ़ने से लोग यहाँ आक्रोश नहीं करते। मानवी जानें नष्ट होने पर यह लोग भावुक नहीं होते। आपसी भाईचारे को यह तोड़ते नहीं। किसी को दोष नहीं देते क्योंकि ऐसा ही प्रतिदिन दरिया के पार भी तो होता है। इधर से गोले वहाँ भी दाग़े जाते हैं। मकान वहाँ भी ढहते हैं। निर्दोष लोग वहाँ भी मरते हैं। शोक वहाँ भी किया जाता है। शोकाकुल चीत्कार दोनों ओर सुना जाता है। आँसुओं की बाढ़ में भावनाएँ और अनुभूतियाँ दोनों ओर डूबती-उभरती रहती हैं। यह लोग पीले पत्तों की भांति हैं जो सीमा के दोनों ओर बिखरे पड़े हैं.....अपने-अपने शरीरों का बोझ उठाए। इनके धड़कते दिलों की कहानियाँ कोई नहीं लिखता। इनके अपमान और यातनाओं की कहानी कोई नहीं सुनाता।

क़ब्र खोदने, कफ़न सीने और नहलाने का प्रबन्ध होने लगा है। मित्रगण क़ासिम मिन्हास की अच्छाईयों की चर्चा कर रहे हैं। प्रेम, शालीनता और ईमानदारी की बातें हो रही हैं। सलोतरी में नियुक्त बटालियन कमाण्डर कर्नल जार्ज, मेजर फ़ारूक़ी और मेजर चक्रवर्ती भी पहुँच चुके हैं। ज़नाज़े में शामिल होने और शोकसंतप्त परिवार के साथ सहानुभूति जतलाने के लिए। घर की स्त्रियाँ रो-रो कर विलाप कर रही हैं। उन लोगों को भी स्मरण किया जा रहा है जो इस बारूद की ज़द में आकर अपनौ को बिछोड़े के दाग़ दे चुके हैं परन्तु रोने की आवाज़ें कहीं दूर से भी तो आ रही हैं।

"इतनी दूर से यह रोने की आवाज़ें कहाँ से आ रही हैं?" मेजर चक्रवर्ती शोक प्रकट करने आए एक ग्रामीण से पूछ रहा था।

"सर! यह आवाज़ें दरिया के पार वाले गाँव तेतरी नोट से आ रही हैं।" अमर नाथ बोला।

"शायद वहाँ भी किसी की मृत्यु हो गई है। हो सकता है कि कोई निर्दोष इधर से चलाई गई गोली का निशाना बना हो।"

"हाँ तुम ठीक कहते हो भाई अमर नाथ! बन्दूक़ और तोपों से निकलने वाला बारूद भला किसी को बख़्शता थोड़ी है।" मौज़ा झलास के बुज़ुर्ग सरपंच यश पाल ने कहा।

"पण्डित जी! आप सत्य कहते हैं। देश चाहे भिन्न-भिन्न हों अथवा भाषाएँ अलग-अलग हों परन्तु हँसने, रोने और विलाप करने की आवाज़ें एक-सी होती हैं। यह मनुष्य का स्वाभाविक कार्य है। ये आवाज़ें यहूदी अथवा ईसाई नहीं होतीं और न ही यह आवाज़ें हिन्दू और मुसलमान होती हैं।" चौधरी फ़िरोज़ कह रहा था।

"राजनीति का एक दमन चक्र चल रहा है। कभी आग भड़काई जाती है और कभी बुझाई जाती है। गोला बारूद का यह खेल दोनों ओर से खेला जा रहा है। उन्हें कौन समझाए कि बारूद का कोई धर्म नहीं होता। टैंक और तोपें किसी आस्था से सम्बन्धित नहीं होतीं। यह हमारे पास हों या उनके पास इनका काम विनाश और बरबादी फैलाना है। इनका धर्म धरती को बांझ बनाना है। जानें लेना है। गोली अपनी हो या पराई....यह जीवन का शिकार करती है। आँसू रुलाती है। सुहाग उजाड़ती है। अनाथ बनाती है। माओं की गोद सूनी करती है। धरती ने यहाँ नरक का परिधान ओढ़ रखा है। उस धरती ने जिसे कभी "फ़िरदौस बर रूए-ज़मीं अस्त" कहा जाता था!!!

कफ़न सिया जा चुका है। मैय्यत को नहलाया जा रहा है। क़ब्र खोदने वालों ने क़ब्र खोद डाली है। जनाज़ा उठने का समय समीप आ रहा है। बच्चे विस्मित दृष्टि से यह दृश्य देख रहे हैं. ....बच्चे.....कि जिनका बचपन और बाल सुलभता भय तथा आतंक ने छीन ली है। यह कभी खिलौनों से नहीं खेले। उन्होंने तो

खिलौने देखे ही नहीं हैं। हाँ बन्दूकें और पिस्तौलें देखी हैं। हथगोले देखे हैं जिनको खेतों में पड़े देखते ही यह बच्चे गेंद समझ कर उठा लेते हैं और उनसे खेलने लगते हैं.....और जिनके फटने से उनके परख़च्चे उड़ जाते हैं। कई बेचारे तो उम्र भर के लिए अपाहिज हो जाते हैं।

यह लोग आशंकाओं की धुंध में घिरे रहते हैं। भय तथा घबराहट में जीते हैं। इनकी सच्चाईयाँ तथा वास्तविकताएँ, राजनीति की बलिवेदी पर भेंट चढ़ती रहती हैं।

चार बज रहे हैं। जनाज़ा उठने को तैयार है। लोग कलमा शहादत पढ़ रहे हैं। मित्रगण तथा सम्बन्धी जन क़ासिम मिन्हास के ताबूत को कन्धा देने के लिए तैयार हैं। जनाज़े का जलूस चलने लगा है। क़ासिम मिन्हास को उसके अन्तिम विश्राम स्थल तक ले जाने के लिए। क़ब्र में दफ़्नाने के लिए। दरिया पार से भी रोने की आवाज़ें अब स्पष्ट सुनाई दे रही हैं। स्त्रियाँ वहाँ भी विलाप कर रही हैं। रोने की उन्हीं आवाज़ों में एक आवाज़ वहाँ की मस्जिद के लाऊड स्पीकर से उभर रही है....

"गाँव वालो! अत्यन्त शोक के साथ यह समाचार दिया जा रहा है कि मेरा छोटा भाई क़ासिम मिन्हास हमारे पैतृक गाँव सलोतरी में आज मृत्यु को प्राप्त हो गया है। उसकी अनुपस्थिति की नमाज़-ए-ज़नाज़ा शाम छः बजे जामिया मस्जिद तेतरी नोट में पढ़ी जाएगी। मरहूम के सवाब पहुँचाने के लिए सब को ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा में शामिल होने की गुज़ारिश की जाती है। अल्लाह हम सब को अपनी पनाह में रखें और अमन से जीने की तौफ़ीक़ अता करे। आमीन!!

जनाज़े का जलूस क़ब्रिस्तान पहुँच चुका था। क़ासिम मिन्हास का शव क़ब्र में उतारा जा चुका था। इमाम साहिब मरहूम की मग़फिरत के लिए दुआएँ माँग रहे हैं और परिवार के लिए सब्र-ए-जमील। दुआएँ हवा, पानी और मिट्टी में विलीन हो रही हैं कि जिनकी कोई सीमा नहीं होती।

✠✠●✠✠

साँझी पीड़ा

"अपना कश्मीर" संगठन की ओर से एक सभा इंदिरा भवन में आयोजित की गई थी। जिसमें कश्मीर से पलायन करके आए अल्पसंख्यकों के हज़ारों कश्मीरी सम्मिलित हो रहे थे। आतंकवाद के विरुद्ध और कश्मीर को भारत से पृथक करने वाली शक्तियों के षड्यन्त्रों को किसी भी मूल्य पर असफल बनाने के लिए धुआँदार भाषण हो रहे थे। "वन्दे मातरम" और "भारत माता की जय" के गगनभेदी नारे लग रहे थे। आतंकवादियों को नरक में पहुँचाने का संकल्प दोहराया जा रहा था। आई.एस.आई और उनके स्थानीय एजेन्टों की ओर से रचे गए षड़यन्त्र के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों को कश्मीर घाटी से निकलने पर विवश करने पर उनकी कड़ी निंदा की जा रही थी। पण्डित गाश लाल कौल का भाषण सबसे अधिक उत्साहवर्धक था। वह कह रहा था :

"हम कश्यप ऋषि की सन्तान हैं। हम कश्मीर के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। कश्मीर हमारा है। कल्हन की राजतरंगिणी पढ़ कर देख लें कि ऋषियों-मुनियों की इस धरती पर सहस्रों वर्ष से हमारा राज रहा है। कश्मीर भारत का अटूट अंग हैं और जो लोग इस बात को मानने से इन्कार करते हैं वह कश्मीर को छोड़ दें और उस देश में चले जाएँ जहाँ से उनको आतंकवाद फैलाने के लिए पैसा और हथियार मिलते हैं।"

गाश लाल कौल कश्मीर के विषय में सरकार की दुर्बल नीतियों की भी कड़ी आलोचना कर रहा था। वह कह रहा था:

"कश्मीर के विषय में सरकार की कोई स्पष्ट नीति नहीं है। यहाँ मकर चक्र की कहानी, आधा तेल, आधा पानी" वाली बात है। सरकार कभी अलगाव वादियों और आतंकवादियों से बातचीत

करने की घोषणा करती है तो कभी आतंकवाद को समूल नष्ट करने के लिए सैनिक कार्रवाई जारी रखने की बात करती है। कभी फ़ायर बंदी करती है तो कभी फ़ायर बंदी समाप्त करने की घोषणा। ऐसा पिछले कई वर्षों से हो रहा है। लोगों की आँखों में धूल झोंकी जा रही है परन्तु न हीर समाप्त हुई है न सारंगी टूटी है। सरकार कभी कश्मीर को भारत का अटूट अंग कहती है और लोकसभा से इसका विधेयक पारित कराती है, तो कभी इसको एक समाधान खोजती समस्या कहती है। कभी पड़ोसी देश के शासकों को कोसती है तो कभी उनको कश्मीर समस्या पर बातचीत करने का निमंत्रण देती है। ताशक़न्द, शिमला, आगरा, देहली, इस्लाम आबाद और लाहौर.....केवल बातें ही बातें। इन बातों ने लोगों की मुस्कानें छीन ली हैं परन्तु सब व्यर्थ। सरकार कश्मीर में उन लोगों के नाज़ उठाती है जो देश के टुकड़े करना चाहते हैं, उन लोगों के पाँव चाटती है जिन्होंने हमारी हत्या की, हमें कश्मीर से पलायन करने पर विवश किया और हमें अपने ही देश में शरणार्थी बना दिया। हम लोग जिन्होंने कश्मीर में भारत का तिरंगा ऊँचा रखा, कड़कती धूप, भयानक वर्षा ऋतु तथा अकड़ा देने वाली ठंड में खुले गगन के तले रहने पर विवश हैं। हमें तो जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हैं।"

उसने कश्मीर में पृथकता का अभियान चलाने वालों और आतंक फैलाने वालों को जी भर के अपशब्द कहे और माँग की कि उन्हें कश्मीर में अलग से होम लैंड दिया जाए। पण्डित गाश लाल कौल का भाषण सुनकर लोगों में एक उत्साह, एक उमंग जागी थी। वह उसको अपना सच्चा प्रतिनिधि मानने लगे। तालियों की गूंज में गाश लाल कौल ने अपना भाषण समाप्त किया। सभा समाप्त होने के पश्चात् ढेर सारी प्रशंसाओं के शब्द दिल की गुल्लक में डाकर वह अपने आवासीय कैम्प की ओर चल पड़ा। रघुनाथ बाज़ार में उसने एक वयोवृद्ध व्यक्ति को देखा जो फिरन पहने, सिर पर पगड़ी और कान्धे पर पश्मीने का शाल लटकाए चल रहा था। गाश लाल कौल अवचेतनावस्था में उस व्यक्ति की

ओर लपका और अनायास उससे गले मिला और कहने लगा :

"बन्दगी जनाब, बन्दगी ख़्वाजा साहिब! क्या हाल है आपका? आप ठीक हैं। आपके बच्चे राज़ी-ख़ुशी हैं?"

"नमस्कार हुज़ूर! ईश्वर की कृपा है कि अभी तक जीवित हैं और ठीक-ठाक हैं। आप बताएँ पण्डित जी! यहाँ सब कुशल मंगल है? आपके बच्चे भी ठीक-ठाक हैं?"

"हाँ ख्वाजा साहिब! भगवती की कृपा से और दस्तगीर साहिब की दुआ से हम यहाँ कुशलपूर्वक हैं। आप बताएँ, वहाँ कश्मीर में अब परिस्थितियाँ कुछ सुधरी हैं या मार-काट का बाज़ार अभी भी गर्म है।? अब तो वहाँ कोई मुख़बिरी नहीं करता होगा? अब तो वहाँ कोई विश्वासघाती नहीं होगा? क्या आप लोग हमें याद करते हैं?" गाश लाल कौल ख़्वाजा साहिब से पूछ रहा था।

"हम आप को एक पल के लिए भी नहीं भूले पण्डित जी। भला हम आपको कैसे भूल सकते हैं। हम तो शताब्दियों से इकट्ठे रहे हैं। भाईयों की भांति। अपनों की भांति, प्रेम-प्यार के साथ रहते आए हैं। शान्ति व चैन से जीवन व्यतीत किया है। हमारा लहू एक है। हमारी नस्ल एक है। हमारी भाषा एक है। हमारी सँस्कृति एक है। सभ्यता एक है। हमारे सन्त-फ़क़ीर और ऋषि सांझे हैं। हमारे गीत साँझे हैं। हमारे दुःख और खुशियाँ सांझी हैं। हम आप को कैसे भूल सकते हैं। हम तो आपके बिना अधूरे हैं। बाक़ी पण्डित जी! वहाँ कुछ भी ठीक नहीं है। वहाँ कौन मुख़बिर है और कौन मुजाहिद, कौन विश्वासघाती है और कौन देशप्रेमी, कौन दंगाई है और कौन जिहादी, कौन जनता में से है कौन सरकारी, कुछ पता नहीं चलता। वहाँ हर कोई अपने फल को मीठा कहता है। खोटा तो हमारा भाग्य है। बड़ी शक्तियाँ वक्तव्य देकर हमारे घावों पर नमक छिड़कती रहती हैं। ऐसे समझें कि रंडी के घर मंडी लगी हुई है। मानवता मर गई है। परिस्थितियाँ वैसी ही हैं, जैसी बाईस वर्ष पूर्व थीं। आग और लहू का नंगा नाच जारी है। हैवानियत का राज है। लोग बहुत तंग हैं। दोनों पक्ष बन्दूकों के शिकार हैं। सारा कश्मीर जल रहा है। हर ओर विनाश

ही विनाश है। पण्डित जी! ईश्वर हमारे भाग्य के जीर्ण-शीर्ण वस्त्र किसी को न पहनाए। हमारी उजड़ी घाटी में रंग-बिरंगे लंगूर पटवारी बने हुए हैं।" वृद्ध व्यक्ति बड़ी निराशा में बोल रहा था।

"भगवान आप पर दया करे। नुन्द ऋषि कश्मीर में शान्ति लाए और हम सब दोबारा इकट्ठे मिलकर रह सकें। गाश लाल कौल ने कहा।

"हाँ! हम भी हर दिन यही दुआ माँगते हैं, परन्तु पण्डित जी! आप बुरा न मानें, मैंने आप को पहचाना नहीं। शायद बुढ़ापे के कारण मेरी स्मृति साथ नहीं दे रही है। आप का नाम क्या है और आप कश्मीर में कहाँ के रहने वाले हैं?" उस व्यक्ति ने बड़े स्नेह से पण्डित गाश लाल से पूछा।

"ख़्वाजा साहिब! मैंने भी भला आपको कहाँ पहचाना है। मैं तो आपको बिल्कुल नहीं जानता। आपको कश्मीरी पहनावे में देखकर मैं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख सका और भावनावश आपको गले लगा लिया। आपको गले लगाकर मुझे एक शान्ति प्राप्त हुई। आपसे गले मिलकर मुझे लगा कि मैं कश्मीर को गले लगा रहा हूँ और पण्डित गाश लाल कौल ने ख़्वाजा साहिब को एक बार फिर अपनी बांहों में ले लिया.... और भावुकता की अधिकता में दोनों की आँखों से जेहलम उमड़ पड़ा।

बेबे नूरां

"माई! तुम्हारे घर में मौलवी आए थे?" मेजर शरमा अपने जवानों के साथ गाँव में घर-घर तलाशी लेता हुआ वृद्ध नूरां से पूछताछ कर रहा था। सेना के मुख़बिर ने उन्हें पक्की सूचना दी थी।

"माँ वारी जाए मेरे बेटे! हाँ आए थे।" बेबे नूरां ने उत्तर दिया।

"कितने मौलवी आए थे?" मेजर शर्मा ने पूछताछ जारी रखी।

"मैं बलिहारी जाऊँ मेरे लाल! वह चार थे।"

"उनके पास क्या-क्या सामान था?"

"उनके पास बन्दूक़ें थीं। दो के पास पिस्तौल भी थे और दो नौजवानों के हाथों में रेडियो भी थे। जिनके साथ वह किसी से बातचीत कर रहे थे।" बेबे नूरां बोली।

"उनका हुलिया कैसा था?"

"उन्होंने तुम्हारी तरह शलवारें और क़मीज़ें नहीं पहनी थीं। वह तो फौज की वर्दी पहने हुए थे। वह लम्बी कद-काठी, और बलिष्ठ शरीर वाले थे। उन सब के बाल लम्बे और दाढ़ियाँ थीं।" बेबे नूरां मेजर शर्मा को उनका हुलिया बता रही थी। वह इस भाग्यहीन गाँव की सबसे वयोवृद्ध स्त्री थी, जहाँ के गगन पर अक्सर चीलें उड़ा करती हैं।

"मेरे बच्चो तुम खाना खाओगे। चाय पिओगे?" बेबे नूरां चारपाई पर सफेद चादर बिछाते हुए मेजर शर्मा से पूछ रही थी।

"नहीं नहीं! हम चाय नहीं पिएँगे, परन्तु यह बताओ क्या तुमने उनको खाना खिलाया था?" मेजर शर्मा ने डाँटते हुए पूछा।

"हाँ बेटा! मैंने उनको खाना खिलाया था। उनको भूख लगी थी और उन्होंने मुझसे खाना माँगा था। मैंने उन्हें रोटी खिलाई, पानी पिलाया और फिर वह ऊपर वाली पहाड़ी की ओर चले

गए।" उसने पीरपंचाल की ओर संकेत करते हुए बताया।

फागला गाँव का यह क्षेत्र बड़ा पिछड़ा है। यहाँ प्रायः आतंकवादी आते-जाते रहते हैं क्योंकि यहीं से एक मार्ग पीरपंचाल पहाड़ी सिलसिले की ओर जाता है और दूसरा मार्ग बफ़लियाज़, डेरा गली, थन्ना मंडी और बुद्धल दरिया से होता हुआ। बुद्धल व ज़िला उधमपुर के पहाड़ी क्षेत्रों म्हौर और गूल के लिए जाता है। जभी तो इस सारे क्षेत्र में आतंकवादियों का जमाव रहता है जिसके कारण पुलिस और सेना प्रायः इस क्षेत्र का घेराव कर लेती है। यहाँ मिलिटेंटों के साथ इनके मुकाबले होते रहते हैं जिनमें दोनों ओर की प्राण-हानि होती रहती है और इसकी लपेट में ग्रामीण भी आते रहते हैं। गाँव वालों की जान और माल की हानि प्रतिदिन होती है। कभी मिलिटेंटों के हाथों और कभी पुलिस और सेना के हाथों। यह लोग बड़े संकटों का शिकार हैं। चक्की के दो पाटों में पिस रहे हैं। यह लोग अपने साथ हुए उत्पीड़न की शिकायत प्रशासन से करते रहते हैं परन्तु ऐसा लगता है कि परिस्थितियों ने सब को विवश कर दिया है।

"माई तुमने उनको रोटी क्यों खिलाई, तुम को पता नहीं कि वह हमारे शत्रु हैं। वह शत्रु देश से सिखलाई लेकर आते हैं और यहाँ विनाश करते हैं। निर्दोष लोगों को मारते हैं और तुम लोग उनको खाना खिलाते हो। उनको सोने के लिए स्थान देते हो। यह एक गंभीर अपराध है। इसका दण्ड मृत्यु भी हो सकता है।"

"मेरे लाल! मेरे जिगर के टुकड़े! तुम कैसी बातें कर रहे हो, भला यह कैसे संभव है कि कोई मेरे घर भूखा-प्यासा आए और मैं उसे खाना न खिलाऊँ। यह तो हमारे धर्म के विरुद्ध है। हमारे रिवाज के विरुद्ध है। हम गाँव वाले गँवार पहाड़ी लोग यात्रियों को खाना खिलाना, उनको रात व्यतीत करने के लिए जगह देना पुण्य समझते हैं। ये रिवाज हमारे यहाँ शताब्दियों से चल रहे हैं। हमने अपने पुरखों से सीखा है। क्या तुम्हारे क्षेत्र में ऐसा रिवाज नहीं है? क्या तुम लोग घर आए यात्रियों को बिना खिलाए-पिलाए निकाल देते हो......और यह शत्रु कौन है?

हमारा तो कोई शत्रु नहीं।" बेबे नूरां मेजर शर्मा को बता रही थी।

"तुम लोग खड़े क्यों हो। तुम सब बैठो। यह चारपाई मैंने तुम्हारे लिए बिछाई है। मेरे बच्चो! मैं तुम्हें चाय पिलाए बिना यहाँ से नहीं जाने दूँगी। मेरा ईश्वर मुझसे रूठ जाएगा। तुम भी तो मेरे बेटे नसीरे जैसे हो जो आजकल मज़दूरी के लिए पँजाब गया हुआ है।" उसने चाय बनाना शुरू की और मेजर शर्मा से पूछने लगी।

"मैं वारी जाऊँ मेरे बेटे! तुम मुझे यह बताओ कि इन मौलवियों से तुम्हारी क्या शत्रुता है? वह भी जब आते हैं तो मुझसे यही पूछते हैं कि यहाँ खतरी तो नहीं आए थे। शायद बेटा वह तुम लोगों को खतरी कहते हैं। वह तुमसे घृणा क्यों करते हैं? तुम भी उनसे बड़ी घृणा करते हो। सच बात क्या है। तुम दोनों क्यों एक दूसरे के लहू के प्यासे बने हो। तुम्हारा आपस में झगड़ा क्या है? मेरे लाल तुम बताओ कि तुम किस बात पर झगड़ रहे हो? मैं तुम दोनों की सुलह करा दूँगी ताकि तुम एक दूसरे के साथ शान्ति व मैत्री के साथ रह सको और एक दूसरे की जान के बैरी न रहो।"

"माई! वह हमारे शत्रु हैं। वह हमारे कैम्पों पर हमला करते हैं। वह यहाँ के लोगों को मारने आए हैं। हम इनको नष्ट किए बिना दम नहीं लेंगे।" मेजर शर्मा ने कहा।

"न मेरे लाल न! ऐसा नहीं कहते। भला मनुष्य की नस्ल को कोई समाप्त कर सका है। हम हर दिन कितने ही भेड़-बकरे काटते और खाते हैं। क्या इनकी नस्ल दुनिया में नष्ट हुई। जान लेना और देना ईश्वर के हाथ में है। ऐसा कुरआन में लिखा है। बेटा! लड़ाई-झगड़े से कुछ प्राप्त नहीं होता। लड़ाई विनाश का नाम है। माँओं की गोद उजड़ जाती है और प्रेम प्यार से धरती में बरकत आती है। हरियाली और खुशहाली होती है। तुम मुझे बताओ बेटा कि तुम्हारी आपस में शत्रुता क्या है। मैं तुम्हारा निर्णय करवा दूँगी और यदि मैं तुम्हारा निर्णय न करवा सकी तो फिर तुम्हारा मामला क्षेत्र के चौधरी खटाना के पास ले जाऊँगी। वह हमारे क्षेत्र का सबसे बड़ा चौधरी है। बड़ा नेक और बुद्धिमान

है। उसने दो हज भी किए हैं। हम सब उसके निर्णय को मानते हैं। तुम लोग भी मेरे साथ चौधरी के पास चलो। वह तुम दोनों का निर्णय करवाएँगे। बेटा! आपस में मत लड़ो। एक दूसरे के पीछे इन जंगलों में अपनी जवानी नष्ट मत करो।" बेबे नूरां फौजियों को समझा रही थी और चाय के कप उनके हाथों में थमा रही थी।

मेजर शर्मा वृद्धा नूरां की बातें सुनकर मुस्कराया। उसने चाय पी और अपनी नफरी लेकर दूसरे गाँव की ओर चल दिया।

दिल की गलियाँ

हुसैनी-वाला कस्टम चौकी पर ज़रूरी दस्तावेज़ और सामान की जाँच-पड़ताल के बाद जुम्मन बाबा को सीमा पार जाने की अनुमति मिल गई। कस्टम गेट पार करके मैं उसे बस में बैठा पाकिस्तान की धरती की ओर जाते देख रहा था। पंजाब रोड़वेज़ की बस उसे गंडा सिंह वाला की कस्टम चौकी की ओर ले जा रही थी। 75 वर्षीय वृद्ध के चेहरे की झुर्रियाँ मुस्कुरा रही थीं। बुझी आँखों में जीवन की चमक थी और बुझे दिल में ईद की सी रौनक़। वह बड़ा ख़ुश था, और क्यों न होता, आज तीस वर्ष के पश्चात् उसकी मुरादें जो पूरी हुई थीं। आज याकूब को उसका यूसफ़ मिलने वाला था। आज बाबा अपने बेटों-बेटियों, पोते-पोतियों, नाती-नातिनों और शायद उनके भी बच्चों को मिलने जा रहा था

1947 के दंगों में जुम्मन बाबा का पूरा परिवार पाकिस्तान चला गया था। उन्होंने तो बाबा को भी साथ ले जाने का बड़ा जतन किया, मिन्नत समाजत की परन्तु बाबा नहीं माना। वह अपनी धरती, अपना घर और अपने लोग छोड़ने के लिए तैयार नहीं था।

वह अपने घर में अकेला रह गया। उस घर में -- जहाँ सब से पहले मौलवी साहिब ने उसके कानों में अज़ान कही थी। वह घर जिस के आँगन में उसने बचपन व्यतीत किया था, वह गलियाँ जहाँ खेलता हुआ वह जवान हुआ था। वह घर -- जहाँ वह दूल्हा बनकर -- घोड़ी पर बैठ कर गया था और डोली में दुल्हन को बिठाकर लाया था। वह घर जिसके आंगन में उसने अपने बच्चों को हँसते-खलते, गाते-मुस्कुराते देखा था। वह उस घर को छोड़कर कैसे जाता -- जहाँ उसके बचपन, यौवन तथा वृद्धावस्था की स्मृतियाँ बिखरी पड़ी थीं -- बच्चों के चले जाने पर

शुरू के दिनों में वह बहुत दुखी रहा -- परन्तु फिर धीरे-धीरे उसका मन लगता गया। उस चारदीवारी में बसी पुरानी स्मृतियों और घर में रहने वाले नए लोगों के साथ जो जुम्मन बाबा के किरायेदार बन गए थे।

बाबा मुझे बहुत प्यार करता है। अपने सगे-सम्बन्धियों के बिछड़ जाने के बाद उसे पहली ख़ुशी मुझी से मिली थी। बाबा ने स्वयं अपने हाथों से मेरे बाल काटे थे, ख़तना कराया था -- वह सारा-सारा दिन मुझे गोद में लिए उठाए फिरता -- नमाज़ पढ़ते हुए और तिलावत करते हुए -- मैं जुम्मन बाबा की गोद में जा बैठता, उसके कपड़े गंदे कर देता। परन्तु उसके माथे पर कभी शिकन नहीं आई। उसका मुख सदा खिला हुआ रहता। बाबा की गोद में खेलते हुए ही तो मेरे दूध के दाँत टूटे थे। उसी के प्यार और आशीष की सुगन्धित छाया तले, मैंने दुनियादारी की गली में पैर रखा था -- और आज उसी जुम्मन बाबा को छोड़ने मैं हुसैनी वाला सीमा तक आया था।

चिट्ठी-पत्री से पता चला था कि जुम्मन बाबा का परिवार पाकिस्तान में बड़ा सम्पन्न है। एक बेटा रावलपिण्डी में ठेकेदारी करता है। कुछ दिन पहले ही उसका पत्र आया था। लिखा था कि आर्य मुहल्ले में उसने नया मकान बना लिया है और बहुत आनन्द में है -- बाबा का दूसरा बेटा, पाकिस्तानी सेना में कर्नल है -- सियालकोट में निवास है -- बाबा की एक बेटी डॉक्टर है तो दूसरी लंदन में रहती है। उसका पति वहाँ कपड़े का व्यापार करता है -- बाबा कभी-कभी बड़े प्यार, बड़े चाव से उनकी बातें मुझे सुनाया करता। परन्तु पिछले कुछ महीनों से बाबा चुप-चुप रहने लगा था। वह ठंडी-ठंडी आहें भरता रहता था -- एक दिन मुझसे कहने लगा :

"बेटा ख़ुदा जाने कौन-सी घड़ी का मेहमान हूँ। मौत तो आनी ही है पर मरने से पहले बाल-बच्चों को मिलने की इच्छा मन में ही रह जाएगी। इन राजनैतिक भेड़ियों ने तो देश का बेड़ा ही ग़र्क़ कर दिया है -- एक समय था जहाँ जी चाहे चले जाते

थे। न कोई विद्रोही था, न राष्ट्रवादी। बस सीधे-सादे भारतीय थे, परन्तु आज़ादी क्या मिली हर ओर विनाश लीला मच गई। देश बंट गया परन्तु दिल तो नहीं बंटे। एक धरती और कई नाम -- भला क्यों? या खुदा आज फिर कोई वली या महात्मा भेज जो हमें एक कर दे। काश मैं एक बार अपने बाल-बच्चों से मिल लेता -- परन्तु शायद -- यह मेरे भाग्य में नहीं है।

और फिर मैं बाबा की इच्छा पूर्ण करने का प्रयास करने में जुट गया। पूरे वर्ष भर की दौड़-धूप के उपरान्त कहीं पासपोर्ट बना और फिर पाकिस्तान जाने के लिए तीन महीने का वीज़ा भी मिल गया।

बाबा को छोड़ने के उपरान्त दूसरे दिन मैं घर लौट आया और अपने कामों में लग गया। बैसाखी आई, दीवाली आई, ईद आई परन्तु बाबा नहीं आया, न ही उसका कोई पत्र। हम समझे कि या तो बाबा अल्लाह् को प्यारा हो गया है या फिर बेटों ने आने ही नहीं दिया। और उसने भी संभव है यही सोचा हो कि क्यों न जीवन के शेष दिन तो सुख-चैन से अपने बेटे-बेटियों में रह कर बिता ले। और न सही मरते समय पानी का घूंट तो पिलाएँगे।

दिन व्यतीत होते गए। सारे किरायेदार प्रसन्न थे कि बूढ़ा तो गया -- अब मकान के मालिक वह स्वयं हैं। किराये के बारे में भी कोई नहीं पूछेगा। बाबा की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए वह उसके सम्बन्धी बन गए थे। अब वह किसी का चाचा था तो किसी का ताया -- किसी का मामू था तो किसी का फूफा।

और फिर एक दिन -- बाबा का एक नया सम्बन्धी प्रकट हो गया। एक महिला मुँह अंधेरे मकान में घुस आई और कहने लगी, "सगी बहन की बेटी हूँ बाबा की -- यहाँ उसकी असली वारिस मैं ही तो हूँ -- ख़ाली करो मेरा मकान -- मुझे इसकी मुरम्मत करानी है।"

"परन्तु बीबी तुम्हारे पास क्या सबूत है कि तुम उसकी भांजी हो। हमारा भी तो चाचा लगता है वह और भाई की सन्तान

का अधिकार तो होता भी अधिक है।

"अरे -- मामू का तो कोई भाई था ही नहीं -- झूठ बकते हो तुम। अब वह तो वापस आएँगे नहीं -- मुझे खुद पाकिस्तान से पत्र लिखा है कि नागरिकता मिल गई है उन्हें पाकिस्तान की। अब तुम लोग अपना सामान समेटो और दो दिन के अन्दर-अन्दर मकान ख़ाली कर दो मेरा।"

आए दिन इन तथाकथित सम्बन्धियों में बहस व झड़प होती रहती। दावे और जवाबी दावे होते रहते -- और फिर एक दिन मुझे एक साया सा अपने घर की ओर आता दिखाई दिया -- किसी भूत का? -- नहीं-नहीं आदमी का -- लम्बी सफेद दाढ़ी, सिर पर पगड़ी, बग़ल में गठरी दबाए हाथ में छड़ी और पीछे-पीछे एक मज़दूर। वह इन्सानी ढाँचा धीरे-धीरे मुस्कुराते हुए ओजस्वी मुख में बदल गया और वह मुख, वह सदाबहार सा प्यारा मुख, मेरे जुम्मन बाबा का था।

"असलाम अलेकुम" -- "वअलेकुम असलाम।" --

"बाबा आ गया -- बाबा आ गया" बच्चों ने घर सिर पर उठा लिया -- सारे बाबा की कुशलक्षेम पूछने लगे -- "बाबा इतनी देर क्यों लगा दी आपने।"

"बेटा वह तो मुझे आने ही नहीं दे रहे थे। सब को नाराज़ करके आया हूँ मैं तो, तुम तो सब ठीक रहे ना, गली मुहल्ले वालों का क्या हाल है?"

"हाँ बाबा सब ठीक हैं। तुम वहाँ अच्छी तरह तो रहे, बच्चे कैसे हैं?" --

"अल्लाह का शुक्र है। सब खुश हैं। बड़ी सेवा करते थे मेरी। सारा-सारा दिन कार में घुमाए फिरते। तुम लोग सुनाओ, मिस्त्री करम दीन का क्या हाल है। मास्टर रामलाल की बेटी की शादी हो गई या नहीं। पंडित ईशर दास क्या मेरे बाद यहाँ आते रहते थे?"

"हाँ कभी-कभी तुम्हारे बारे में पूछने आ जाते थे। पर बाबा यह तो बताओ जब वह लोग तुम्हारी इतनी सेवा करते थे

तो फिर तुम वहीं क्यों नहीं रह गए। यहाँ क्या लेने आए हो?"

"ठीक है बेटा! वहाँ मेरे सारे अपने थे। वह मेरी बड़ी सेवा करते थे, बहुत चाहते थे मुझे। पर तुम समझ नहीं सकते बेटा! वहाँ मुझे अपना वातावरण नहीं मिला। उस मिट्टी में मुझे अपने पुरखों की आत्माएँ दिखाई नहीं दीं। उन घरों में माँ की लोरियाँ नहीं सुनाई दीं। उस मिट्टी में मुझे अपनेपन की सुगन्ध नहीं मिली -- वहाँ न यार दोस्तों के ठहाके थे न झगड़े -- वहाँ मेरा मन नहीं लगा बेटा -- बिल्कुल नहीं लगा मुझे घर की याद सताने लगी। मैं बेचैन हो गया। और वहाँ से चला आया -- अपने बच्चों को नाराज़ कर के मैं आ गया -- उस धरती की ओर -- उस मिट्टी में -- उन गलियों मुहल्लों में जो मेरे अपने हैं -- जिन्हें मैं भूल नहीं सकता -- " और बाबा की आँखों से मोती छलक पड़े --

✠✠●✠✠

प्रेम खेलन का चाव

हर बड़े व्यक्ति के उत्थान व पतन की कहानी प्रभावशाली, प्रसन्नतादायक, कड़वी और कसैली होती है। मेरी कहानी भी ऊँचाई और निचाई की दुर्घटनाओं से भरी पड़ी है। यही कारण है कि मैं अपनी कहानी हुमायूँ के मक़बरे की सीढ़ियों पर बैठ कर लिख रहा हूँ क्योंकि मेरी कहानी के महत्त्वपूर्ण पात्र का नाम भी मिर्ज़ा हुमायूँ बेग है और उसका भाग्य भी हुमायूँ के साथ मिलता-जुलता है। हुमायूँ के मक़बरे को देखकर हृदय प्रसन्नता एवं दुख की अनुभूति से दो-चार हो जाता है। मुग़ल कारीगरी का एक शानदार नमूना। यदि ताजमहल को ध्यान से देखो तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उसका नक़्शा हुमायूँ के मक़बरे के साथ बहुत सीमा तक मिलता है। इस महान इमारत में जहाँ एक ओर शहनशाह हुमायूँ अपनी क़ब्र में सोया पड़ा है वहाँ मक़बरे के चारों ओर मुग़ल शासन के अन्तिम शहज़ादे दफ़्न हैं, जिनको अँग्रेज़ों ने बड़ी निर्ममता से मार दिया था और देहली पर अधिकार कर लिया था। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार आज के युग में इराक़ के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन, उसके बेटों और भाईयों को अमरीकियों ने मार डाला और इराक़ पर अधिकार कर लिया। दुनिया की सबसे सुन्दर इमारत ताजमहल की कहानी भी हुमायूँ के मक़बरे से मिलती-जुलती है। अपनी प्यारी और दिलरुबा पत्नी का स्मारक बनाने वाला खुर्रम अथवा शाहजहाँ भी अपने बेटे के हाथों अपमानित होकर और कई वर्षो का कारावास व्यतीत करके और अपने सारे दुख अपने साथ लेकर संगमरमर के इस मक़बरे में दफ़्न हो गया था।

मेरा पात्र हुमायूँ की भांति कोई शहनशाह नहीं है जिसने

अपने भाईयों को प्यार और स्नेह से पाला और उनको भिन्न-भिन्न प्रान्तों का शासक बना दिया परन्तु उन दुर्भागियों ने विद्रोह किया और शत्रुओं से मिलकर हुमायूँ के शासन को समाप्त कर दिया। हुमायूँ शेरशाह सूरी के हाथों पराजित होकर कई वर्षों तक दरबदर फिरता रहा। शायद उसके उज़्बिक लहू तथा तातारी दूध में कोई खोट था कि उसके पड़पोते के साथ भी वैसा ही हुआ। वह भी बेटों के हाथों ख़्वार हुआ, जिस प्रकार मेरे पात्र को होना पड़ा। मेरे पात्र हुमायूँ ने भी अपने भाईयों, मित्रों और सम्बन्धियों के हाथों गहरे घाव खाए परन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा अपितु अथक परिश्रम की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उच्च स्थान प्राप्त किया। दिन-रात काम किया, धन कमाया, सम्पत्ति बनाई और समाज में अपनी पगड़ी को मान-सम्मान दिलाया। उसने अपनी सन्तान को नाज़ों से पाला। उन्हें वह सब कुछ दिया जिसका वह कभी सोच भी नहीं सकते थे। उनके विवाह धूम-धाम से कराए तथा भव्य कोठियाँ बना कर दीं, ताकि वह अपना जीवन स्वयं जी सकें।

परन्तु वह अभी भी हुमायूँ के कन्धों पर चढ़कर दहाड़ते रहते हैं। कीड़े-मकौड़े, पशु-पक्षी और चौपाये होश संभालते ही अपने जन्म देने वालों से पृथक हो जाते हैं। माता-पिता के बनाए घोंसलों से उड़ जाते हैं और अपने घोंसले और ठिकाने अलग बना लेते हैं। वह फिर उनके साथ चिपके नहीं रहते। परन्तु मिर्ज़ा हुमायूँ बेग के जीव-जन्तु उड़ने का नाम ही नहीं लेते हैं। हुमायूँ ने उन्हें अपने कन्धों से उतारने के बहुत जतन किए परन्तु वह उसको छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं होते। वह हुमायूँ के कन्धों पर सवार रहते हैं। उसके शरीर के माँस को नोचते रहते हैं। उसका शरीर पीड़ा से कराहता रहता है परन्तु उन पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता।

एक समय था कि लोग हुमायूँ के चमत्कार को नमस्कार करते, परन्तु अब उसका कारोबार भी समाप्त हो चुका है और सरकार, दरबार का सत्कार भी। ऐश्वर्य भोग का युग लद चुका था, परन्तु उसके दोनों बेटों को भ्रम नहीं अपितु विश्वास था कि हुमायूँ के पास क़ारून का ख़ज़ाना दबा पड़ा है। जो कभी समाप्त

नहीं हो सकता। परन्तु वह नहीं जानते थे कि दौलत तो मुंडेर पर बैठने वाली चिड़िया है जो कभी एक डाल पर नहीं बैठती। यह किसी से नहीं निभाती परन्तु वह फिर भी अपनी आवश्यकताओं के लिए उसकी पगड़ी उछालते रहते और स्वयं चिड़ियाँ उड़ाते रहते। अब हुमायूँ के पास न धन था न मान-सम्मान। वह कंगाल अब सूखे पत्तों की कथा बन चुका था। उसकी गृहस्थी कब की जल चुकी थी परन्तु वह मन्दभागी जले हुए घर की राख को भी शुद्ध धन समझते और उसे कुरेदते रहते। वह अनाज के कीड़े थे और नशे के रोगी। उन्होंने पहले शराब के संग यारी लगाई। फिर अफ़ीम की दिलदारी और अन्ततः चरस और गांजे की मस्ती भी साथ मिला ली थी। इस काम में वह इतने मस्त रहते कि सवेरे ही अफीम के डोडों को पाछते रहते। उन्होंने निर्लज्जता के आगे घुटने टेक दिए थे। उनको परिश्रम तथा ईमानदारी की रोटी हज़्म नहीं होती थी। वह हठधर्मी, गर्व तथा अभिमान का शिकार थे। उनके व्यवहार में ढंग और विनम्रता नाम की कोई वस्तु नहीं थी। वह हर एक के साथ अपशब्दों का प्रयोग करते। सम्बन्धियों और पड़ोसियों के साथ ऐसी भाषा में बात करते कि शब्दों की पंखुड़ियाँ भी घायल हो जातीं। वह बात-बात पर गालियाँ बकने पर उतारू हो जाते और कानून की गर्दन दबोच लेते। वह दोनों अक़्ल के भूखे थे क्योंकि अक़्ल ज़ात रब की, यह वारिस नहीं सब की। हुमायूँ अपने बेटों से परेशान था क्योंकि वह हुमायूँ को एक कूड़ादान समझते जिसमें वह अपनी अनैतिक आवश्यकताओं का कूड़ा-करकट फेंकते रहते।

जिन लोगों को अपना जीवन संवारने और खुशहाल जीवन व्यतीत करने की इच्छा होती है वह सफलता के लक्ष्य पार कर लेते हैं परन्तु निकम्मे और निर्लज्जों को तो आस्तानों से भी धक्के मिलते हैं। वह नहीं जानते कि पक्की हांडी का हर कोई यार होता है परन्तु बुझे चूल्हों का कोई शरीक नहीं होता। हुमायूँ के बेटों के लिए बाप का माल गुड़ से भी मीठा था। वह ख़ाली बर्तन थे जो घर में ही खनकते रहते। वह सेवा करके मेवा खाने में विश्वास नहीं रखते थे। उनके घर की यह दशा थी कि अण्डे बबूल में

और बच्चे खजूर में। यह सब देख-देखकर हुमायूँ असहाय हो चुका था। वह दुःखों का मारा अपनी आँखों के आँसू पोंछता रहता था। उसकी नज़रें प्रतिदिन पलायन करती रहतीं परन्तु निराश व विवश होकर दोबारा अपने दीदों को आ जातीं। उसके भाग्य की नाव दुःखों के तूफ़ान में डोलती रहती। उसका शोक उसके हृदय का रोग बन गया था। उसके निखट्टू बेटे उसका सौभाग्य लूट कर ले गए थे। उदासी और चुप्पी के नाग उसके भीतर कुण्डली मार कर बैठ गए थे। वह जानता था कि रूप, यौवन, राज्य तथा धन सब ठग हैं। यह तीतर किसी के मित्र नहीं होते परन्तु वह कुछ नहीं कर सकता था क्योंकि वह सम्बन्धों के कीचड़ में धंसा पड़ा था और समझता था कि उसके कर्मों का कोई भागीदार नहीं। विवशता की झुर्रियाँ हुमायूँ के चेहरे पर स्पष्ट दिखाई देती थीं। उसके जीवन की दीवार का पलस्तर स्थान-स्थान से उखड़ रहा था और दीवार नंगी हो रही थी। ऐसा लगता था कि एक-आध बरसात में यह दीवार ढह जाएगी।

हुमायूँ अपने जीवन में किसी आस्था अथवा दर्शन की काल कोठरी में बन्द नहीं हुआ बल्कि उसने मन मस्तिष्क के द्वार खुले रखे और अपनी आत्मा को पवित्र और निर्मल रखा परन्तु अब वह चाहता था कि उसकी आत्मा शरीर छोड़कर कहीं भाग जाए और अपमान और बदनामी से बच जाए क्योंकि पहले शालीनता उसके घर की दासी थी और अन्तस की कल्ग़ी उसकी पगड़ी का ताज परन्तु आज पगड़ी गिर चुकी थी। इज़्ज़त लुट चुकी थी। मान-सम्मान लूटने वाले भी कोई और नहीं, उसके अपने ही बेटे थे।

हुमायूँ के बेटे अपने अवगुणों तथा दुर्बलताओं के कारण सदा अपनी पत्नियों के दान्तों में दबे रहते। वह अपनी पत्नियों के पैरों के घुंघरू थे जो ताल-बेताल बजते रहते। वह "पत्नी-दास" सूखा दरिया थे, जिनमें बुद्धि की बाढ़ कभी नहीं आती। उनकी मुर्गियाँ अण्डे तो पराए घरों में देतीं परन्तु कुड़-कुड़ अपने घर में करतीं। सारे हुमायूँ के साथ जादूगरियाँ और छल फ़रेब करते रहते। भला निर्लज्ज लोगों के नाक काटने वाले भी तो आख़िर

थक जाते हैं और उन्हें अपने हाल पर छोड़ देते हैं।

हुमायूँ ने भी उन नालायकों को उनके हाल पर छोड़ दिया। वह अब एक टूटा-फूटा पिंजर था। उसका सब कुछ समाप्त हो चुका था। उसके दिल का मर्म कोई नहीं पहचानता था। वह दुःखी सुख खोजता फिरता परन्तु सुख ने तो आँखें फेर ली थीं। उसके बेटे उसकी उम्र के टुण्ड-मुण्ड पेड़ पर फिर हरियाली लाने के योग्य नहीं थे और न ही वह उसकी छाया बनने के योग्य। हुमायूँ के जीवन के कमाल और जमाल का पतन आ चुका था।

वह लम्बे अंतराल तक सोचता रहा। अपने अतीत में झाँकता रहा। फिर उसने अपने मन के किवाड़ खोल कर देखा तो उसे पता चला कि दुनिया एक मृगतृष्णा है और जीवन इस मरुभूमि में पानी का एक बुलबुला। फिर उसने निर्णय कर लिया कि झूठे सम्बन्धों के जाल से जितनी शीघ्रता से बाहर निकला जाए उतना ही भला है। उसके पास जितने भी श्वास शेष बचे थे वह उसके जीवन की कुल पूंजी थे और वह अपने बचे हुए श्वासों को अब नष्ट नहीं करना चाहता था। उसने अपने हृदय के आले से स्मृतियों की पुस्तकें, मोह की पोटलियाँ और इच्छाओं की गठरियाँ उठाकर बाहर फेंक दीं और फ़क़ीरी चोला पहन लिया और मुरशिद के इस कथन के अर्थ तलाश करने लगा :

जो तुम प्रेम खेलन का चाओ
सिर धर तली गली मेरी आओ

उसने अपने साथ बीती दुर्घटनाओं के इतिहास को सीने की क़ब्र में दफ़्न कर दिया। अपने कर्मों की रुई को धुना। कर्मों के चरख़े पर सूत काता। अनहद की खेसी बुनी। आत्मा को खेसी में लपेटा और ऐसे जीवन के दरिया को शान्त सागर के भीतर समो दिया।

उत्थान-पतन की व्यथा

सूर्य धरती को उजाला प्रदान करता है और धूप की ऋतुएँ जगत में बाँटता है, परन्तु सूर्य अन्ततः अस्त हो जाता है और अन्धकार धूप को निगल जाता है। दिन रात की यही वास्तविकता है। यही प्रभु की वाणी है और यही धूप-छाँव की कहानी है।

धूप-छाँव की यह कहानी जगतू जट के माथे पर पुरखों ने बहुत पहले पढ़ ली थी परन्तु पराए बेलने में बाँहें देने से भय खाते हुए उन्होंने मौन साध लिया था। जगतू जट के बड़े बुजुर्ग देखते रहते थे कि उसने जीवन में कभी कोई ढंग का काम नहीं किया था बल्कि सदा मकर चक्र और छल से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने का जतन किया करता।

उसकी मित्रता लुच्चों, लफ़ंगों और गुण्डों के साथ थी जिनकी संगत में रह कर वह जल्दी धनवान होने की योजनाएँ बनाता रहता। अपनी चतुराई और धूर्तता के कारण वह अपने मित्रों के गिरोह का मुखिया बन गया। वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी निर्धनता की बेड़ियाँ अपने गले से उतारना चाहता था और धनवानी का पट्टा गले में डालना चाहता था, परन्तु उसे कौन समझाता कि आज के लगाए उपले आज नहीं जलते और जलने के लिए उनका सूखना आवश्यक है, जिसके लिए सब्र करना पड़ता है। परन्तु वह तो अपनी इच्छाओं का झूला ऊँचे से ऊँचे वृक्ष पर डालना चाहता था। वह चाहता था कि उसकी पगड़ी का तुर्रा ऊँचा हो जाए ताकि निर्धनों और दीनों को नमस्कार करने का दण्ड भुगतना पड़ा। उसका मानना था कि जिसके पास धन हो वह नर होता है, अन्यथा खर।

जगतू जट ने ख़च्चरों पर रेत, मिट्टी, ईंट और बजरी ढोने का काम किया। ड्राईवरी की, ट्रक चलाया, ट्रैक्टर चलाया,

देसी शराब की भट्टियाँ लगाईं। अपने साथियों के साथ मिलकर सीमा के आर-पार तस्करी की। चरस और हेरोईन बेची। चोरी का सीमेंट और लोहा बेचा। कौड़ियों के भाव ज़मीनें खरीदीं और सोने के भाव बेचीं और इस प्रकार दस-पन्द्रह वर्षों के भीतर-भीतर जगतू जट चौधरी जगत सिंह बन गया। और यह कहावत सच्ची हो गई कि रब की बेपरवाई, कुत्ते खाएँ मलाई।

कच्चे कोठों के स्थान पर पक्की कोठियाँ और हवेलियाँ बन गईं। ख़च्चरों के स्थान पर कीमती कारें आ गईं और नांदों के स्थान पर पक्के गैराज बन गए। जीवन ने ऐसी पलटी मारी कि दौलत की रेल-पेल हो गई। छप्पर फाड़ कर भी इतना माल-ख़ज़ाना नहीं मिलता, जितना चौधरी जगत सिंह के पास आ गया था। लोग ठीक ही कहते हैं कि अल्लाह मेहरबान तो गधा पहलवान" चौधरी जगत सिंह बड़े-बड़े ठेके लेने लगा। ट्राँस्पोर्ट कम्पनी बना ली। ठेके लेने और दूसरे काम करवाने के लिए सरकारी अधिकारियों को उपहारादि दिए जाने लगे। भाई भतीजे और साले बहनोई सब कारोबार में दो आने या चार आने के भागीदार बनाए गए। इन्कम टेक्स और सेल टेक्स भरने के लिए अकाउन्टेंट रखे गए। दफ़्तर बन गए। उच्च शिक्षा प्राप्त कर्मचारी रखे गए। बैंक खाते खोले गए। ब्याज पर पैसा दिया जाने लगा। लुच्चे यार दादागिरी करते। गुंडागर्दी और मारकुटाई करते। भय तथा आतंक फैला कर पैसे प्राप्त करते। इस प्रकार जगतू जट अपनी दुनिया का बादशाह बन गया।

उन्नति का यह मार्ग तय करने के लिए चौधरी जगत सिंह ने कितने लोगों का अधिकार मारा था उसको स्वयं भी स्मरण नहीं था। उसके मवालियों ने कितने लोगों पर गोलियाँ चलाई थीं और कितनों को घायल किया था, उसका भी कोई लेखा-जोखा नहीं था। हर घटना को पुलिस दबा देती क्योंकि रोज़नामचे सिक्कों की सियाही से लिखे जाते। सन्तरी, मन्त्री और जनता जत्तरी सभी चौधरी के रौग़नी घड़े का शरबत पीते रहते थे।

फिर उसकी पत्नी ने एक बच्चे को जन्म दिया और सारे गाँव में उत्सव का क्रम आरम्भ हो गया। बधाईयाँ और मिठाईयाँ

बाँटी गईं। ढोल-ढमाके, नाच और गाने कई दिनों तक चलते रहे। बेटे को बड़े लाड-प्यार से पाला। इतने लाड-प्यार से कि उसका नाम ही लाडी सिंह रख दिया गया। लाडी चौधरी की आँखों का नूर और दिल का सुरूर था। उसके पालन-पोषण में कोई कसर न छोड़ी गई। उसे बढ़िया से बढ़िया स्कूलों और कालेज़ों में पढ़ने के लिए भेजा गया.....परन्तु सब व्यर्थ।

लाडी ने जब पंख निकालने आरम्भ किए तो वह चौधरी जगत सिंह की जूती में अपने पाँव डालने लगा और बाप की रंगत के साथ संगत करने लगा। बातचीत में उसे अपने बाप का अंदाज़ इतना भाया कि उसकी जीभ भी तीखी और तेज़ हो गई, जिसके कारण पानी में भी आग लग जाती। और यह प्रमाणित हो जाता कि जैसा बाप, वैसा बेटा। कालेज में उसका ऐसे दोस्तों से पाला पड़ा जो उससे भी दो हाथ आगे थे। उनकी संगति में लाडी को शराब, कबाब और शबाब के साथ-साथ चरस और गाँजे का भी चस्का लग गया। फिर वह गाँव छोड़ कर शहर वाली कोठी में रहने का हठ करने लगा। वह बाप से कहता "बसना शहर, चाहे हो क़हर"। लाडी के लाड-प्यार ने चौधरी को उसके हठ के आगे हथियार डालने पर विवश कर दिया और इस प्रकार लाडी शहर वाली कोठी में मौज-मस्तियाँ करने लगा। यार-दोस्तों की महफ़िलें सजने लगीं। शबाब और रबाब से दिल बहलने लगे। चाची और ताई ने लाडी की करतूतों की ओर जब उसकी माँ का ध्यान दिलाया तो उसने नाक मुँह चढ़ाते हुए उत्तर दिया :

"इस आयु में लड़के ऐसे खेल खेलते रहते हैं। विवाह के पश्चात् सब ठीक हो जाएगा। आने वाली दुल्हन लाडी को अपने प्यार की बेड़ियों में ऐसा जकड़ेगी कि वह आवारागर्दी का नाम भी न लेगा और फिर जलने वालों के मुँह बन्द हो जाएँगे।

फिर वह समय भी आ गया जब बाप-बेटा इकट्ठे खाने-पीने लगे। दो-तीन पैग पीने के बाद चौधरी लाडी को समाज में मान-सम्मान कमाने के गुर बतलाने लगता और उसे समझाता कि वह गुंडागर्दी छोड़ कर सारा ध्यान अपनी पढ़ाई पूरी करने की

ओर लगाए ताकि वह व्यापार संभाले और बाप का हाथ बंटाए। वह उसे कहता कि भाषा रसीली हो तो दुनिया रंगीली हो जाती है। लाडी बाप की नसीहत को एक कान से सुनता और दूसरे कान से बाहर निकाल देता क्योंकि उसने कभी बाप को रसीली भाषा में बात करते नहीं देखा था। वह सदा उसके मुँह से अपशब्दों के बम फटते देखा करता था। फिर वह दिन भी आ गए जब लाडी के पैर चौधरी जगत सिंह की जूती को फाड़ कर बाहर निकलने लगे। उसने अपनी एक अलग मंडली बना ली। जिसका काम था अपनी आयु के लड़के-लड़कियों को तंग करना, गालियाँ बकना, धमकियाँ देना, धौंस जमाना और रोकने-टोकने वालों के हाथ-पैर तोड़ना। चौधरी की पैठ और चोगा डालते रहने की कार्यप्रणाली के कारण लाडी सदा पुलिस कार्रवाई से बच जाता। उसे शह मिलती गई और वह अपराध पर अपराध करने लगा। एक हत्या के केस में भी फँसा परन्तु चौधरी के दुलार ने उस पर कोई आँच नहीं आने दी। लाडी एक ऐसा करेला था जो सदा नीम पर चढ़ा रहता। उसकी दिन-प्रतिदिन की दृष्टताओं से चौधरी और उसके भाई बहुत दुखी थे। यह जानते हुए भी कि "काले पट न चढ़े सफेदी और काग कभी न बने बगला" सब ने मिलकर यह निर्णय कर लिया कि उसका विवाह कर दिया जाए। विवाह हुआ और धूमधाम से हुआ। सारा शहर और गाँव विवाह में शामिल हुआ। दूल्हा-दुल्हन को हनीमून के लिए स्विट्ज़रलैंड भेजा गया। वहाँ पहले दिन से ही लाडी ने अपना रंग दिखाना आरम्भ कर दिया। वापसी पर जब चौधरी और चौधराईन ने दुल्हन के चेहरे पर घावों के चिन्ह देखे तो वह चकित रह गए। उनके पूछने पर दुल्हन ज़ोर से रोने लगी। चौधरी उसे ढाढ़स देने लगा और समझाने लगा :

"बेटी! किसी से बात नहीं करना। सब ठीक हो जाएगा। तुम सब्र करो, सब्र करने से फल मिलता है परन्तु वह जान गई थी कि लाडी के साथ रह कर उसके हाथ सदा मेंहदी रंगे नहीं रहेंगे और न ही सदा उसकी बाँहों में चूड़ियाँ खनकेंगी। वह समझ गई थी कि उसको अपना चरख़ा स्वयं संभालना पड़ेगा और

अपना सूत भी स्वयं ही कातना पड़ेगा। क्योंकि विवाह के बाद भी लाडी के रंग-ढंग में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। वह चौधरी को दुःख की कंकरियाँ मारता रहता। चौधरी का हृदय पीड़ा से कराहता रहता और वह स्वयं से बात करने लगता :

"एक अण्डा, वह भी गंदा।"

लाडी चौधरी की सहनशीलता में एक ऐसा तवा था जो आग के ताव में सदा तपता रहता और बाप के कलेजे को जलाता रहता। उसकी करतूतें देखकर चौधरी कई बार उसे बद-दुआएँ देता और कहता "बेटा कपूत, मरे मरदूद।"

फिर भाग्य का लिखा कोई न टाल सका। लाडी शराब के नशे में अपने मित्रों के साथ एक अन्य मित्र के घर गया। वहाँ किसी बात पर दोनों में तकरार हुई। फिर बात तू-तू, मैं-मैं और गाली-गलौच तक पहुँच गई। मित्रों ने बीच बचाव का जतन किया परन्तु लाडी की आँखों में खून उतरा हुआ था। उसने देसी पिस्तौल से गोली चला दी और उसे मौत के घाट उतार दिया। लाडी तो घटनास्थल से भाग गया परन्तु उसके दोनों मित्र पकड़े गए।

जिसका बेटा मरा था, वह राजनीति का एक मंझा हुआ खिलाड़ी था और सरकार, दरबार में उसका बड़ा मान-सम्मान था। उसकी पहुँच सीधी मुख्य मंत्री और प्रधानमंत्री तक थी। उसने पुलिस और सरकार की चारपाई की चूलें हिला कर रख दीं। एक थरथराहट मच गई। सब ने अपने हाथ खींच लिए और कोई भी चौधरी की सहायता करने को तैयार न हुआ। पुलिस ने लाडी को हथियार सहित पकड़ लिया और हवालात में बंद कर दिया। सरकार ने घटना की जाँच-पड़ताल के लिए एक विशेष टीम बनाई जिसने अपना काम थाने के रोज़नामचे से आरम्भ किया जिस में चौधरी का शहद और शक्कर मिला हुआ था और जिसमें लाडी को बचाने के लिए सारी सामग्री विद्यमान थी। फॉरेंसिक लेबारेटरी के विशेषज्ञों की रिपोर्ट भी केस की मिसल के साथ शामिल कर दी गई। जिसके अनुसार गोली ज़ब्त की गई पिस्तौल से नहीं चली थी......और यह बात सच भी थी क्योंकि पुलिस थाने में सबकी

मिली भगत से हत्या का हथियार बदल दिया गया था जिसके लिए लाखों का प्रसाद बांटा गया था। लाडी चाहे "लाडला पूत, कनाली में मूत" ही सही, पर था तो चौधरी के जिगर का टुकड़ा। इस दुर्घटना ने उसके कलेजे पर हाथ डाला था। इसलिए वह अपने लाडले को बचाने के लिए सभी हथकण्डे प्रयोग करने लगा। परन्तु हर चाल उलटी पड़ रही थी। आरम्भिक जाँच-पड़ताल से पूछताछ की टीम इस परिणाम पर पहुँची कि वह पिस्तौल छुपा दी गई है जिससे गोली चली थी और इस षड़यन्त्र में पुलिस अधिकारियों के साथ-साथ फॉरेंसिक लेबारेटरी के विशेषज्ञ भी शामिल थे। ऐसा इसलिए किया गया था कि हत्या का केस किसी अन्य व्यक्ति पर डाला जाए और लाडी को बचाया जाए।

विशेष तफ़्तीशी टीम के नेतृत्व कर्ता की सिफ़ारिश पर ज़िला पुलिस अफ़्सर, थानेदार, मुन्शी थाना और फॉरेंसिक लेबारेटरी के दोनों विशेषज्ञ गिरफ़्तार कर लिए गए। चौधरी और उसके भाईयों ने बड़ी दौड़-धूप की परन्तु कुछ न बना। अपराध को मिटाने और अपराधी को बचाने के षड़यन्त्र में चाधरी और उसके भाई हवालात में बंद कर दिए गए। लाडी और उसके दोस्तों पर हत्या का अभियोग दर्ज किया गया। शेष सब पर पूरा रणबीर पैनल कोड उंडेल दिया गया।

सभी आरोपी पहले पुलिस रिमाण्ड पर हवालात में बंद हुए और पूछताछ चलती रही। फिर साठ दिनों के भीतर सभी आरोपियों के विरुद्ध न्यायालय में चालान पेश कर दिया गया और वह अदालती हिरासत में जेल भेज दिए गए। ज़मानतों के लिए जज साहिबान को अर्ज़ियां दी गईं। हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक अपीलें की गईं। देश के नामी वकीलों ने ज़मानतों के लिए बहस में भाग लिया परन्तु किसी को भी ज़मानत न मिली। समाचार पत्रों और टेलीविजन चैनलों ने इस घटना को इतना उछाला कि हर ओर से जनता की प्रतिक्रिया चौधरी भाईयों के विरुद्ध थी। चौधरी के हाथों अपमानित और तकलीफ़ें सहन करने वाले कई लोगों ने भी उसके विरुद्ध न्यायालय में अर्ज़ियाँ दायर

करनी आरम्भ कर दी थीं। ऐसा लगता था कि सारा शहर ही चाधरी जगत सिंह और उसके भाईयों के काले कारनामों को उछाल रहा है। जभी तो किसी को भी जेल की सलाखों से मुक्ति प्राप्त न हो सकी। इस मीडिया ट्रॉयल के कारण भी सभी निराश थे, अधीर थे, चिंतित थे और एक दूसरे को कोसते रहते और आपस में उलझते रहते।

लाडी.....चौधरी जगत सिंह के सिर की जूँ था। जिसने उसका सारा सिर ही गंजा कर दिया बल्कि शेष लोगों के सीने भी छलनी कर दिए। चौधरी ने अपनी इज़्ज़त का सदका माल और दौलत से अदा किया परन्तु इज़्ज़त फिर भी मिट्टी में मिल गई। लाडी के कारण चौधरी का घर-बार उजड़ा और सब बरबाद हो गए। मौला साईं ने आँखें क्या फेरीं कि कुल जहान बैरी हो गया। नौकर धोखा, छल करने लगे जिसके कारण व्यापार नष्ट हो गया। काम बंद हो गए। कोठियाँ और हवेलियाँ उजाड़ हो गईं। संकटों, कष्टों और दुखों ने घरों में डेरे डाल दिए। कर्मचारियों ने घर की स्त्रियों को अपमान और बदनामी की खाई में धकेल दिया। चौधरी को अपनी बोई हुई फसल पर बड़ा गर्व था परन्तु उसके औज़ार भी ढीले निकले और दाने भी गीले निकले। उसके वीरान मन्दिर के नेवले पुजारी बन बैठे। सब कुछ समाप्त हो गया। अदालती पेशियाँ आरम्भ हो गईं। गवाहों के बयान लिए जाने लगे। वकील बहस करने लगे। तारीखें पड़ने लगीं। गवाहों पर जिरह होने लगी और समय व्यतीत होता गया। लाडी और उसके दोस्त दुखी थे। चौधरी और उसके भाई तथा निलंबित अधिकारी जेल में सड़ने लगे। चौधरी बीमार रहने लगा। उसे मधुमेह के कष्टदायक रोग ने जकड़ लिया था। जिसके कारण दिल, जिगर और गुर्दे भी प्रभावित हो रहे थे। कुछ ऐसी ही दशा शेष आरोपियों की भी थी। पुलिस कभी उन्हें अस्पताल लेकर जाती कभी अदालत और फिर जेल के सीखचों के अन्दर। प्रतिदिन का यह आना-जाना लगा रहा। इस प्रकार मुक़द्दमे में पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। अन्ततः अदालत ने अपना फैसला सुना ही दिया। लाडी को फाँसी की सज़ा सुनाई गई। हत्यारे का साथ देने के अपराध में उसके दोनों दोस्तों को पाँच-पाँच वर्ष का कारावास हुआ। आरोपी को बचाने और हत्या

के प्रमाणों को मिटाने के अपराध में चौधरी और उसके भाईयों को सात-सात वर्ष की सज़ा और इस षड़यन्त्र में शामिल निलंबित किए गए ज़िला पुलिस अधिकारी, थानेदार और मुन्शी को चार-चार वर्ष और फॉरेंसिक लेबारेटरी के दोनों कर्मचारियों को तीन-तीन वर्ष की सज़ा सुनाई गई। निचली अदालत के फैसले को हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में चैलेंज किया गया परन्तु बड़ी अदालतों ने भी निचली अदालत का फैसला बरक़रार रखा और इस प्रकार सारा खेल समाप्त हो गया। आस-उम्मीद के रिक्त प्याले टूट गए। चौधरी की दुनिया न्याय ने लूट ली। उसका पैसा कुछ न कर सका। उसके पालतू विवश हो गए। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। उसका कुछ भी शेष न बचा था।

लाडी, उसका बेटा फाँसी लगने की प्रतीक्षा में था परन्तु चौधरी अपनी आँखों के उजाले को फाँसी पर लटकता नहीं देख सकता था। उसने लाडी से पहले अपने आपको समाप्त करने का निर्णय कर लिया और फिर एक दिन जेल वासियों ने उसका शव कमरे में लगे पँखे के साथ लटकता हुआ देखा। शव को श्मशान ले जाया गया। उसे कन्धा देने वाले उसके भाई और उसके कुछ समीप के सम्बन्धियों के अतिरिक्त और कोई न था। निलंबित ज़िला पुलिस अधिकारी अपने अपराधों पर पछता रहा था। उसने अपनी नौकरी के दौरान न जाने कितने निर्दोषों का एनकाउण्टर किया था और ईनाम और उन्नतियाँ प्राप्त की थीं। कितने लोगों को झूठे केसों में फँसाया था। कितने ही बच्चों का अपहरण करा के पैसे वसूल किए थे। यही सोच-सोच कर वह पछतावे की अग्नि में जल रहा था और इस अग्नि को शीतल करने के लिए आजकल वह प्रतिदिन गुरुबाणी का पाठ करता है। सब कैदियों को एकत्रित करके उन्हें फ़रीद वाणी, कबीर वाणी और अन्य सन्त-सूफ़ियों का कलाम सुनाता है और उन्हें समझाता है :

रोटी मेरी काठ की लावन मेरी भुक्ख।
जिन्हाँ खाद्धी चोपड़ी घने सैहूणगे दुक्ख।।

पथरीले पानियों में नाव

नीलू और अरफ़ात का अल्पायु का प्रेम जब विवाह की कड़ियों में जकड़ा गया तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। पन्द्रह वर्ष की नीलू और सत्रह वर्ष के अरफ़ात का निर्दोष चुलबुलापन नदी के पानी की भांति चंचल और झरनों की भांति अल्हड़ था। वह खिली हुई फसलों की भांति लहराते रहे। पक्षियों के जैसे चहचहाते रहे और समय अपने पँख फैलाए उड़ानें भरता रहा। भला बीतते हुए समय को कौन नकेल डाल सकता है। पता ही नहीं चला कि छः वर्ष किस प्रकार व्यतीत हो गए। नजमा, सुग़रा और यासर, प्रेम की शहनाई से निकले तीन सुर। इश्क़-पिटारी से निकले तीन कबूतर -- देखते ही देखते नीलू और अरफ़ात के दड़बे में बाजरा चुगने लगे।

जीवन की सच्चाईयाँ प्रेम के मार्ग में काँटे बिखेरने लगीं। हँसी, ठहाके, चिंता के गहरे कुएँ में डूबने लगे। कठिनाईयाँ बढ़ने लगीं -- नजमा, सुग़रा और यासर -- मोतियों के से बच्चों का लालन-पालन, घर की ज़रूरतें और एक साधारण क्लर्क -- चिंताओं का व्यापारी अरफ़ात -- जीवन को सहल बनाने का प्रयास करने लगा। उसने नौकरी के साथ-साथ फिर पढ़ाई आरम्भ की -- उसने नीलू का भी शिक्षा की ओर ध्यान आकर्षित किया। अनेकों प्रयास किए परन्तु वह फिल्मी पत्रिकाओं और रोमांटिक उपन्यासों से आगे न बढ़ सकी। एम.ए. की डिग्री लेते ही अरफ़ात ने अच्छी नौकरी के लिए हाथ-पैर मारने शुरू कर दिए और बहुत प्रयत्न करने के बाद उसे एक कार्पोरेशन में मैनेजर की नौकरी मिल गई।

शिक्षा ने उसके मस्तिष्क के द्वार खोल दिए और उसे ज्ञान

के दरिया में डुब्कियाँ लगाने पर उकसाया। वह साहित्यिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकें पढ़ता रहा। उसे किसी भी अच्छे लेखक की कोई भी पुस्तक मिलती तो पढ़ डालता और अपने परिचितों-मित्रों अर्थात् साहित्यिक साथियों के साथ ज़ोरदार बहस करता। वह अध्ययन की सीढ़ियों से ज्ञान के प्रकाशमय कुएँ में धीरे-धीरे उतरता रहा और फिर प्रकाश उसके अस्तित्व को चमकाने लगा। उसका दिल बाग़-बाग़ होता गया। वह एक कवि तथा कहानीकार के रूप में उभरने लगा। शे'र उसके मन की अनन्त गहराईयों से फूटने लगे। कहानी उसकी भावनाओं को अभिव्यक्ति देने लगी। वह दिन-प्रतिदिन संवेदनशील होता गया। उसने अपने चिंतन, विचारों और भावनाओं की जकड़ से बाहर निकलने से स्पष्ट रूप से मना कर दिया था।

इससे नीलू और अरफ़ात में तनाव, कटुता जन्म लेने लगी। स्वभाव थे कि गले ही न मिलते थे -- अरफ़ात बिल्कुल काँच की भांति कोमल, ज़रा सी ठेस लगने पर टूट जाए और नीलू -- लापरवाह, कठोर पत्थर की भांति, भला शब्दों के कुठार से कहाँ टूटे -- अरफ़ात, चिंतन का व्यापारी, जीवन के भीतरी पक्ष को देखने की इच्छाओं में खोया हुआ तथा नीलू उत्तम दर्जे की दुनियादार तथा रीतिवादी, परम्परावादी -- अरफ़ात रोमांटिक स्वभाव का स्वामी और नीलू प्राण त्यागते हुए बूढ़े समाज की बांदी -- ख़ैर -- समय था कि व्यतीत होता गया। नीलू की चौधराहट ने घर को नियंत्रण में ले लिया था। अरफ़ात निरीह समझौते के जोड़-तोड़ में लगा रहता, परन्तु डोर उलझती ही रहती। वह चाहता कि उसकी पत्नी उसके साथ टूट के प्यार करे और हर पल उस पर जान छिड़कने को तैयार रहे। लेकिन नीलू का सारा प्यार फरमाईशों की एक भारी गठरी बन कर उसके मन मस्तिष्क पर सवार हो जाता -- वह कोई अलिफ़ लैला की कहानी का राजकुमार तो था नहीं कि गाँठ को उठाए देश-विदेश संकट झेलता फिरे। वह चाहता कि जब शाम को घर पहुँचे तो नीलू बच्चों को खाना खिलाकर और सुलाकर स्वयं भूखी बैठी हो -- पहले उसे

खिलाए, फिर स्वयं खाए -- परन्तु वह जब भी घर पहुँचता नीलू गहरी नींद सो चुकी होती। अरफ़ात स्वयं ठंडा खाना खा लेता और सब्र के घूंट पी लेता। फिर पलंग पर बैठ कोई किताब पढ़ने लगता या फिर लिखने लगता। कभी-कभार तो उसका मन चाहता कि वह अपनी नई लिखी रचना नीलू को सुनाए, फिर दोनों उस पर बहस करें। नीलू अपनी राय दे परन्तु वह एक ही उत्तर सुनकर मौन हो जाता - "मेरा दिमाग़ मत खाओ। मैं आपकी भान्ति निठल्ली नहीं। घर के सौ काम होते हैं। यदि आपकी कहानियाँ और कविताएँ सुनती रहूँ तो घर का बस खुदा हाफ़िज़।" -- परन्तु रेडियो या टी.वी. पर सुनाई गई कहानी का चेक माँगना वह अपना अधिकार समझती थी। अरफ़ात इस अधिकार को मानने से इन्कार कर देता। घर में भगदड़ मच जाती। बच्चे बेचारे घबरा जाते। अरफ़ात चिंतित हो जाता और सोचने लगता कि किसी ने ठीक ही कहा है कि पेड़ अपने फलों से पहचाना जाता है।

समय भागता रहा -- अरफ़ात एक प्रसिद्ध शायर बन गया। उसके तीन काव्य-संग्रह और दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। उसका नाम ख्याति प्राप्त कर चुका था। उसे साहित्यिक उपलब्धियों पर अनेकों सम्मान भी मिल चुके थे। कॉलेजों और युनिवर्सिटियों के समारोहों में उसे आमंत्रित किया जाता। कहानी-गोष्ठियाँ सजतीं और कवि सम्मेलन होते। वह बहुत नाम कमा रहा था। उसकी कविता से प्रभावित होकर अनेकों लोग उसके समीप होते गए -- इतने समीप कि उसके दिल में उतर गए। उसे बड़ा भला लगता, उनके साथ बातचीत करके। साहित्य और साहित्यिक कठिनाईयों पर बहस करके -- तृप्त, रानो, चमन, सागर, उषा, सोमा, अख़्तर, रीतू, बृज, ललित -- अरफ़ात के मित्रगण, वह उनके साथ घूमता रहता। बागों में, राजमार्गों और बाज़ारों में, चाय की दुकानों और काफी हाऊसों में बैठ कर उसके मन की भूख शान्त होती। वह कुछ क्षणों के लिए सब कुछ भुला देता, घर को, घर के विषयों को -- परन्तु घर पहुँचते ही अरफ़ात को पूछताछ के कई चरणों को लांघना पड़ता।

"क्यों जी! आप आज काफ़ी हाऊस में किस बोबो के साथ गुलछर्रे उड़ा रहे थे"?

"वह मेरे साथ सुखबीर और रानो थीं। दोनों मेरी साहित्यकार साथी हैं। काफ़ी का कप पीने बैठ गए थे, वहाँ रानो की नई कहानी भी सुनी। उसके पश्चात् उस पर अच्छी बहस हुई परन्तु तुम्हें कैसे पता चला?"

"उन आवारा औरतों के साथ काफ़ी पीने और बातचीत करने में आप को बहुत मज़ा आता है। कभी मुझे भी बाहर ले गए हैं! वह आपकी साथी हैं और मैं ठहरी आपकी मोल ली हुई दासी। आपकी नौकरानी। आपके बच्चों को पालूँ, हर तरह की कठिनाईयाँ सहन करूँ और आप उन रंडियों के साथ आवारागर्दी करें।"

"लेकिन तुम्हें किस ने बताया?"

"मुझे बिल्लू भाई ने बताया था कि भाई जान अक्सर जवान लड़कियों के साथ घूमते दिखाई देते हैं, और आज भी दो लड़कियों के साथ काफ़ी हाऊस में बैठे हुए थे और हँस-हँस कर बातें कर रहे थे -- देखिए जी! आप कान खोल कर सुन लें, मैं छोटे दिल की मालिक तो हूँ नहीं कि रोना-धोना शुरू कर दूँगी या रूठ कर अपने मायके चली जाऊँगी। आप अपनी हरकतों से बाज़ आ जाएँ नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा।"

"यह तो बिल्कुल सच है।"

"मज़ाक़ को रहने दें। आपको तो किसी की शर्म ही नहीं। भला लड़कियों के साथ कैसी दोस्ती। आपको तो न इज़्ज़त प्यारी हैं न आबरू का ध्यान है, न छोटे-बड़े की परवाह और न समाज का डर। लोग क्या कहते होंगे। कान खोल कर सुन लीजिए। आज के बाद आप घर से दफ़्तर और दफ़्तर से सीधे घर आया करेंगे। आज से आपकी सारी साहित्यिक और दूसरी गतिविधियाँ समाप्त।"

दूरी बढ़ती गई। अब अरफ़ात को नीलू के साथ रहने का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता।

"सुना है आपकी तनख़्वाह बढ़ रही है। साथ ही डी.ए.

की सात किश्तें भी इकट्ठी मिल रही हैं?"

"जी हाँ! आपने बिल्कुल सच सुना है।"

"तो फिर पैसे मुझे देना। ईद आ रही है बच्चों के लिए नए कपड़े सिलवाने हैं। उनके पास कहीं आने-जाने के लिए लिए ढंग का कोई कपड़ा ही नहीं है। यासर और सुग़रा के स्वेटरों के लिए ऊन भी खरीदनी है। नग्गी के लड़के की सालगिरह है वहाँ भी कुछ देना-लेना है। वह हमारे साथ कितना कुछ करती है। अभी पिछले हफ़्ते ही यासर के लिए उसने जापानी टेरालीन की एक पैंट लाकर दी थी। राजाँ के लड़के का अक़ीक़ा भी अगले महीने की दस को है और राजाँ मेरी बहुत प्यारी सहेली है, उसे भी ज़रा अच्छा सूट देना है और भी छोटे-मोटे कई ख़र्चे हैं। ख़बरदार! अगर फ़िज़ूल किताबों या रिसालों की गठरी खरीद कर घर लाए कीड़ों की खुराक बनाने के लिए -- सुन लिया आपने?"

"मैंने तो सुन लिया, परन्तु जितनी तुम्हारी फ़रमाईशें हैं उतने तो पैसे भी नहीं मिलेंगे।"

"मैंने कौन-सा आपको पॉलिस्टर का सूट सिलवाने के लिए कहा है। आजकल बाज़ार में इतने सुन्दर कपड़े बिक रहे हैं। शामो साटन, टेरी करेब, स्पन्न और दूसरे बढ़िया कपड़े। कभी मेरे लिए भी कोई अच्छा सूट लाए हैं आप? फरमाईशें पूरी करने कें लिए पैसे नहीं -- यह तो दुनियादारी है, निभानी ही पड़ती है। इसमें फ़रमाईशें कैसे हुईं। आपका क्या है, सवेरे घर से निकल जाना और रात को वापस आना। घर को तो होटल समझ रखा है आपने। किसी आए-गए की खबर ही नहीं। मिलने-जुलने का ध्यान ही नहीं। केवल किताबें पढ़ना, ऊट-पटांग लिखना या फिर आवारागर्दी करना। कभी कोई कवि-गोष्ठी और कभी कोई साहित्यिक समारोह। आग लगे आपकी गोष्ठियों को।"

"बकवास बंद करो। आग तुम्हारी दुनियादारी को न लगे। झूठी रीत, झूठे रिवाज और झूठी शान -- तुम्हारे घर में किस चीज़ की कमी है। तुम्हारी कौन-सी उचित आवश्यकता मैं पूरी नहीं करता। परन्तु व्यर्थ की बातें निभाने के लिए मेरे पास पैसे

नहीं है -- मैं कोई हराम की कमाई नहीं करता। सिर्फ़ तनख़्वाह का सहारा है।"

"और जिन्हें रोज़ाना होटलों और काफ़ी हाऊसों पर लिए फिरते हैं, उसके लिए आपके पास पैसे कहाँ से आ जाते हैं?"

"तुम भी जानती हो कि मैं पूरी तनख़्वाह तुम्हारे हाथ में थमा देता हूँ। बाक़ी रह गई बात होटलों की और काफ़ी हाऊसों पर जाने की, तुम्हें पता होना चाहिए कि मेरे साहित्यिक साथी भी कमाते हैं। हिसाब सभी का बराबर रहता है -- कभी कोई दिल ख़ुश करने की बात भी की है तुमने। जब देखो लड़ाई के लिए कमर कसे रहती हो।

अरफ़ात एक अकेला व्यक्ति -- नीलू उस पर समाज का वर्चस्व स्थापित करना चाहती थी। वह इसे सोसायटी की आवश्यकताओं पर बलि चढ़ाना चाहती थी। वह अरफ़ात को समाज का प्रचारक बनाना चाहती थी। नीलू उसे एक घुटन और जकड़न के वातावरण में बन्द कर देना चाहती थी परन्तु वह तो खुले वातावरण का वासी था। उसके लिए शब्द 'समाज' व्यर्थ था -- अरफ़ात अपने मन में विचारों की ठीकरियाँ इकट्ठी करता रहता। वह उनको गोल-गोल गढ़ता और फिर अपने दिल की गेंद से सन्तोलिया खेलता। गेंद इतने ज़ोर से पड़ती कि ठीकरियाँ चकनाचूर हो जातीं -- और अरफ़ात की आँखों के सामने नजमा, सुग़रा और यासर आ जाते, तीन कबूतर -- दड़बे में दाना चुगते -- वह बड़ी देर तक अपनी दुनिया को नाचते, कूदते और हँसते-खेलते देखता रहता। उसे एक सरूर-सा मिलता। वह एक मीठी हँसी हँसता और फिर कोई किताब पढ़ने में लग जाता --

✠✠●✠✠

अपना आंचल अपनी आग

जगत को अस्त्तिव में आए हुए लम्बा अंतराल बीत चुका था। आकाश पर बसने वाला वह बड़ा परिवार कब का धरती की प्रवृत्तियों में खो चुका था कि फिर वही दुर्घटना हो गई -- हाँ वही -- हाबील और क़ाबील वाली। फिर एक लड़की जात-बिरादरी की लड़ाई का कारण बनने लगी। लड़की जो हेलेन थी या क्लियोपैट्रा -- सोहनी थी या हीर -- सस्सी थी या शीरीं -- अपने मौलिक अधिकारों का उपयोग करती हुई, एक लड़के के साथ भाग गई थी। आकाश की अनन्त ऊँचाईयों में खो जाने के लिए। चाँद की शीतल छाया में आश्रय लेने के लिए -- लड़की अपने प्यारे सूर्य को हाथों में लिए दौड़ रही थी। यह सूर्य उसने स्वयं तराशा था। यह सूर्य उसके गले का हार था। उसके माथे का झूमर -- और उस सूर्य का नाम दुष्यन्त था। वह दुष्यन्त को किसी भी परिस्थिति में किसी अन्य को सौंपने के लिए तैयार न थी। लड़की सुन्दर थी, चंचलता और बांकपन ने उसके रंग-रूप को संवारा था। गुलाबी अधरों से निकलने वाले शब्दों में अद्‍भुत माधुर्य था। उसका शरीर कवितामयी था। उसका धर्म प्रीत था, प्रेम उसकी आस्था। उसके सभी सम्बन्ध प्रेम से आरम्भ होकर प्रेम पर ही समाप्त होने वाले थे। प्रेम की उष्णता ने उसके अस्तित्व को बिजली बना दिया था। उसकी आँखें बातें करने लग गई थीं। जीभ ने देखना आरम्भ कर दिया था। कान बोलने और हाथ सुनने लगे थे। यह सब दुष्यन्त के कारण था जो उसकी आँखों के शीतल अलाव प्रज्जवलित कर गया था -- और वह समाज से विद्रोह कर बैठी थी।

वह बड़ी लगन से अपने दुष्यन्त के लिए जोगन बनी थी और उसे वन-वन लिए घूम रही थी। उसकी आँखों में एक सपना

था। उज्जवल भविष्य का सपना। खुले वातावरण में दुष्यन्त के संग झूला झूलने का सपना। उसके अन्तर में समा जाने का सपना -- वह प्रेम को मुक्ति का साधन समझती थी। वह कहती कि स्वयं को पहचानने के लिए प्रेम अनिवार्य है, प्रेम ही ब्रह्माण्ड के प्रकट होने का वास्तविक कारण है। उसके विचारों के अनुसार प्रेमी एवं प्रेमिका मानवी अस्तित्व की पूर्ति का नाम थे। उसका कहना था कि उस अस्तित्व से भिन्न जो कुछ भी है, वह कुछ भी नहीं है। वह प्रेमी के भीतर विलीन होने को स्वर्ग समझती थी। शेष प्रत्येक वस्तु को नरक -- वह ध्यान तथा विवेक की ज्योति जलाए अपने सपनों को साकार करने की खोज में थी -- और खोज मनुष्य की स्वाभाविक रुचि है, इसी रुचि में मग्न वह घर से नंगे पैर निकली थी। तन के कपड़ों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था उसके पास। फिर भी वह प्रसन्न थी, अपने दुष्यन्त के साथ --

घनी आबादी वाले शहर में उसका जीवन नीरसता का शिकार था। वही शताब्दियों से चली आ रही रीतियाँ, वही रिवाज, वातावरण की वही एकरूपता, वही प्रदूषण, घृणा और गंदगी की चारदीवारी में बंद पड़ा बूढ़ा समाज -- और इसमें आत्माओं की हत्या करने वाले ऐश्वर्यशाली शासकों का आधिपत्य, शहर की इस भीड़ में उसकी भावनाएँ और अनुभूतियाँ सिसक-सिसक कर मर रही थीं। बूढ़े समाज के चौधरी ज़मज़म के पानी को गंगाजल में मिलते कभी भी नहीं देख सकते थे। उनके विचार में इस प्रकार दोनों पानियों की पवित्रता भंग हो रही थी -- और पवित्रता भंग होने से दरियाओं में बाढ़ भी आ सकती थी -- और बाढ़ से लोगों के जान और माल की हानि हो सकती थी -- परन्तु लड़की की आस्था थी कि पानी चाहे ज़मज़म का हो या गंगा का -- वह केवल पानी है। बिना किसी रंग, बिना किसी धर्म, बिना किसी वंश, बिना किसी जाति के -- हाँ केवल पवित्र, निर्मल और स्वच्छ -- निरंतर चलता, बहता, हँसता-गाता --

शहर की इस भीड़ में उस पर फेंके जाने वाले शब्दों के बाणों ने उसे छलनी कर दिया था -- वह स्वयं तो शब्दों को वुज़ू

कराकर उपयोग में लाती थी परन्तु उस पर सदा मलिन शब्दों का आक्रमण होता रहता। उसकी आत्मा तड़पती रहती। शहर में वह जितने दिन रही -- दुःखी ही रही, थकी-थकी सी -- और अन्त में उसने भागने का निर्णय कर लिया -- अपने दुष्यन्त को साथ लेकर। आकाश की अनन्त ऊँचाईयों में खो जाने के लिए।

वह स्वभाव के प्रदान किए हुए वनों में आ निकली जो पथरीली चट्टानों और हरे-भरे मैदानों के आभूषणों से सुसज्जित थे। बर्फ से ढके पर्वतों, बादलों की मस्त चाल, पहाड़ी नालों की लय -- और पहलू में प्रेमी को हँसता देखकर उसकी स्थिर मुस्कानें पिघल गई थीं। वह प्रिय की बाहों में झूलती, अंगड़ाईयाँ लेती, दुष्यन्त उसके गालों को सहलाता, मनमोहक हरियाले मैदानों, उतराईयों-ढलानों पर रेंगती, झरनों की बौछारों से अपने शरीर की चिंगारियों को बुझाती -- और फिर दुष्यन्त को साथ लिए बादलों की चादर ओढ़ कर लाल भूमि में गुम हो जाती -- रब की इस निष्कलंक घाटी में वह बहुत प्रसन्न थी।

समय तीव्रता से व्यतीत होता गया। एक लम्बा अंतराल बीत गया। उसके प्यार में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। वह अपने प्रेमी की आत्मा में विलीन हो चुकी थी -- परन्तु उसका प्रेमी एक ही ढंग की रुत से उकता गया था, और उसके चंगुल से निकलने की विधि खोजने लगा था। सूर्य का ताप दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा था। परन्तु वह प्यार के दरिया में इतनी गहराई तक डूब चुकी थी कि आने वाले जोखिम को अनुभव ही न कर पाई -- दुष्यन्त आदि-सौन्दर्य को पहचानने की बजाय अपने अस्तित्व को ईश्वर समझने लगा। वह क्षण-प्रतिक्षण उसकी मुट्ठी से फिसलने लगा... और कहने लगा --

"अपने जीवन को मैं तुम्हारी आवश्यकताओं की वेदी पर बलि नहीं चढ़ा सकता। क्योंकि मैं स्वयं बलि नहीं होना चाहता।"

"दुष्यन्त के शब्द सुनकर वह तड़प उठी और अपने भीतर टूटती-बिखरती भावनाओं को समेटे हुए बोली,

"दुष्यन्त! यह सब अनुभूति की बात है अन्यथा हर वस्तु

वही है जो पहले थी। केवल तुम में परिवर्तन हुआ है।"

मुझमें परिवर्तन नहीं आया है। मैं मानव हूँ तथा मानव के रूप में ही जीना चाहता हूँ, देवदूत के रूप में नहीं।"

और अपने आप को मानव समझ कर जीने वाला दुष्यन्त उसकी मुट्ठी से फिसलता रहा। फिसलन की इस निरंतर प्रक्रिया से उसकी इच्छाओं के गुलाब मुरझाने लगे। दिल की दुनिया वीरान होने लगी। वह सोचने लगी कि व्यापार के इस बाज़ार में उसने तो सच्ची भावनाओं का व्यापार किया था परन्तु उसके बदले में उसे क्या मिला। दुःख, पीड़ा और यातनाएँ -- उसे क्या पता था कि इतनी लम्बी दूरी तय करने के बाद एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ योग नहीं हो पाएगा। उसने अपने माहीवाल को दिल का माँस खिलाया था, आत्मा का शरबत पिलाया था परन्तु उसकी सारी आराधना, सारा तप भंग हो कर रह गया था --

फिर लाल वादी की भूमि में छेद हो गए -- और उन छेदों से नेवले बाहर निकल आए। नेवले अपनी तेज़ नुकीली आँखों से उसे ढूँढने लगे। नेवलों को देखकर हरे वन, हरे-भरे मैदान, बर्फ से लदे पर्वत, पहाड़ी नाले -- सब काँप उठे। आंधियाँ चलने लगीं। पेड़ घायल हो-होकर गिरने लगे। वीरानी फैलने लगी -- नेवलों की आवाज़ों से हर ओर हताशा के सरकंडे उभर आए -- और उसका नाग देवता दुष्यन्त नेवलों का सामना करने की बजाए भाग गया। उसे अकेला छोड़ कर। वह रेत का घर निकला जो धड़ाम से ढह गया। जीवन के भार को कन्धा देने की बजाय उसने भाग जाने का मार्ग अपनाया और सारी कहानी को अन्ततः समाप्त कर दिया।

दुष्यन्त के भाग जाने के पश्चात् उसकी मस्ती की रुतें सो गईं। अंधेरा फैल गया और वह असुरक्षा की शिकार हो गई। समाज के अंगारों से बैर मोल लेने से उसके हाथ जल गए। दिल बुझ गया। अभाव, घुटन, भय और विनाश, उसके लिए समाज की ओर से दिए गए उपहार थे। उसके जीवन की नाव टूट गई और पीड़ा की गूंगी सेनाएँ टूटी नाव को डुबोने लगीं। अत्याचारों का

तूफ़ान उमड़ पड़ा। अनसुनी चीख़ों का अजगर उसे निगलने लगा। दंगाई कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें उसे सताने लगीं। कुत्ते गुर्राते रहे, भौंकते रहे -- और वह थकी-थकी, भयभीत, दुखी, बोझिल -- क्षण प्रतिक्षण समाप्त होने लगी। उसकी वाक्-शक्ति क्षीण होने लगी, शब्द गूंगे होने लगे -- और फिर गूंगे शब्द काया की गुफा में गुम होने लगे -- फिर बड़ी देर के पश्चात् खोए हुए शब्दों की सलीब लिए गुफा में एक शव प्रकट हुआ -- और शहर के बीच खड़े मीनार पर जम गया, ताकि -- खोए हुए शब्दों की लिखावट को आने-जाने वाले यात्री पढ़ते रहें। शव के नंगे कफन पर शब्दों के अर्थ इस प्रकार बिखरे थे।

"जीवन का धर्म केवल प्रेम है। मृत्यु का कोई धर्म नहीं। शव का कोई धर्म नहीं।"

सूर्य का गीत

आजकल मरना भी उतना ही कठिन है जितना कि जीना। कफ़न के लिए अठारह गज़ लट्ठा कोई सस्ता तो मिलता नहीं। फिर नहलाना, क़ब्र बनाना, कुल करना, दसवाँ और चिलहम करना। लोगों का आना-जाना, सगे-सम्बन्धियों का इकट्ठा होना -- ख़र्च ही ख़र्च -- हमारा समाज, हमारी रस्में -- सोच पर ताले, भावनाओं की बेड़ियाँ -- तोड़े भी न टूटें -- बातों से तो हम समाज सुधारक और बड़े प्रगतिशील बनते हैं परन्तु अमल की कसौटी पर हम सदा खोटे सिक्के ही प्रमाणित हुए हैं -- ये बातें मैं उस रोगी के सिरहाने बैठ कर सोच रहा हूँ जिसकी दवा-दारू ने मेरी कमर तोड़ कर रखी है। यह रोगी शरीर अपने गले में कफ़न पहनने की तैयारी पिछले वर्ष से कर रहा है ताकि क़ब्र खोदने वाला गैंती, कड़ाही और बेलचा लेकर क़ब्रिस्तान को जगाने जाए। समाचार पत्र मुख्य समाचारों में छापें, दूरदर्शन और रेडियो पर समाचार आए -- "स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और सुप्रसिद्ध साहित्यकार परवेज़ हाशमी, मृत्यु की गहन निद्रा में सो गया। राष्ट्र की महा-हानि, नेताओं के वक्तव्य, श्रद्धांजलि" -- और ऐसे एक महान साहित्यकार, स्वतंत्रता संग्राम का सैनिक, जीवित हो जाएगा -- परवेज़ हाशमी, मेरा बाप, मेरी माँ का हत्यारा, मेरे जीवन की उजड़ी वाटिका का माली -- जो अपने सिद्धान्तों, आदर्शों के फूलों को आयु पर्यन्त चुनता रहा और काँटे मेरी झोली में डालता रहा। उसने अपनी सारी आयु काग़ज़ी फूलों की कृत्रिम सुन्दरता में व्यतीत की, परन्तु मेरे लिए वह असुन्दरता का एक भयानक समुद्र छोड़ गया जिसमें मेरे उजड़े जीवन की नैय्या डगमगा रही है -- डूब रही है -- मेरी अम्मी! स्वतंत्रता सेनानी के उस सिपाही की

प्रेयसी, उसकी कविताओं की पगली -- चमेली की किसी ऊँची बेल से फिसली और मेरे अब्बा के जीवन की कविता में ढल गई। कविता फैलती गई -- लड़ी टूटती गई -- कविता बिखरती गई। उसमें प्रासंगिकता न रही, संतुलन न रहा। उसमें विष भरता गया, विष -- सिद्धान्तों का -- आदर्शों का -- वास्तविकताओं का, सच्चाईयों का -- कविता एक रात बन गई, सियाह काली रात -- रात लम्बी होती गई -- नायिका सिकुड़ती गई -- नायिका एक बिन्दु बन गई -- और बिन्दु मेरे अब्बा के सिद्धान्तों की चक्की में पिस कर अपना अस्तित्व खो बैठा - परन्तु मेरे अब्बा ने अपने अस्तित्व के चारों ओर ऐसी चादर ओढ़े रखी कि आज तक कोई भी उसे फाड़ न सका। कोई उस चादर को फाड़ता भी क्यों। भला उसे ऐसा करने से क्या मिलता -- सिद्धान्तों की कटुता और आदर्शों के शूल -- आज हमारे सिद्धान्तों का उपयोग बड़े वैज्ञानिक ढंग से होता है। शालीनता की चादर के नीचे बड़े सम्मानजनक ढंग से सारा वार्तालाप भली-भांति नियत हो जाता है। फिर कोई आदर्शों का पुराना नुस्ख़ा क्यों प्रयोग करे।

मेरे अब्बा, परवेज़ हाशमी -- प्रगतिवाद के संस्थापकों में से थे। किसी समय में यह लहर एक तूफ़ान बनी हुई थी। हमारा घर उन दिनों प्रातः उस तूफ़ान के भंवर में फँसा रहता। लेखनी के नए-नए ग़ाज़ी, जो आज शीशों के कुतबमीनारों में अन्धे, गूंगे और बहरे बने बैठे हैं, अपने-अपने जौहर दिखाते, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और दासता की बेड़ियाँ काटने, देश की स्वतंत्रता के लिए, भूख व नंग मिटाने और सोशलिज़्म लाने के लिए कितने ही पन्ने काले किए जाते। साहित्य वास्तविक जीवन का परिचायक बनने लगा। "ताज महल" में निर्धनों का लहू दिखाई देने लगा। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में छपा हर शब्द आग की लपट बना हुआ था। शब्द बन्द मस्तिष्कों के द्वार खोल रहे थे। चिंगारियाँ अंदर जा रही थीं। बर्फ़ पिघल रही थी। उजले शासक आग की लपटों में जल रहे थे। अत्याचार का व्यवसाय हर ओर व्याप्त था -- यह उन दिनों की बात है जब मैं उन हंगामों से परे

-- "अत्तर-पत्तर" और गेंद चक्कर खेला करता -- पर अब्बा कभी-कभी चाचा ग़फ़ूर से बातें किया करते।

"मेरी तरह मन्टो भी जीवन की वास्तविकताएँ लिखता-लिखता बटोत के सेनिटोरियम में जा पहुँचा परन्तु वहाँ भी उसे "बेगो", "मिसरी की डली" बन के मिली। जीवन की एक और वास्तविकता ये प्रगतिशीलता के अग्रदूत कितने दूर जा पहुँचे हैं लेकिन पीछे रह गए सआदत हसन मंटो और परवेज़ हाशमी। जिनके हिस्से में केवल जीवन के कड़वे सत्य ही आए या मैंगो सिगरेट या शराब -- जो तेज़ाब बन कर हम दोनों को फूँक गई। पर हमारे दिल उन स्वर्णिम लक्ष्यों को छूने के लिए कभी नहीं मचले परन्तु आज हर वस्तु मचल रही है। हर वस्तु बदल रही है। धरती दिन-प्रतिदिन अंदर धंसती जा रही है, फटती जा रही है -- और आकाश ऊँचा हो रहा है, और ऊँचा -- ईश्वर से भी ऊँचा -- धरती बंजर बनती जा रही है। ख़ाली-ख़ाली -- उजड़ी-उजड़ी। आकाश में इन्द्रधनुष के रंग बिखरते जा रहे हैं -- और मैं -- इस धरती का एक कग -- आकाश नहीं बन सकता प्रयत्न करने पर भी नहीं। मेरी शिराओं में परवेज़ हाशमी का रक्त है -- और परवेज़ हाशमी -- डॉक्टर कुछ नहीं बताते। मैं क्या करूँ। मेरे पास तो अब केवल ईश्वर का ही नाम है। एक क्लर्क। तीन बच्चों का पिता और वेतन दवाईयों की चन्द बोतलें।

कल लोक सभा में वित्त मंत्री जी भाषण दे रहे थे -- "देश की आर्थिक स्थिति सुधर रही है" -- रुपए का मूल्य 60 पैसे रह गया है। आर्थिक स्थिति 60 पैसे किलो, कितनी सस्ती और दृढ़ वस्तु है। पर आटा, चावल, दाल, तेल और कपड़े का भाव -- उफ़ मेरे ख़ुदा, जीवन एक संकट बन चुका है। कल सैक्रेटरी साहिब कह रहे थे --

"भाई! तुम लोग महँगाई एलाऊंस के लिए कब जलूस निकाल रहे हो। हमारे पास तो कार में पैट्रोल डालने के लिए पैसे भी नहीं बचते।"

सैक्रेटरी साहिब को पैट्रोल चाहिए -- कार में डालने के

लिए -- और हमें -- पेट की मशीन के लिए -- परन्तु पैट्रोल तो बड़ा महँगा है, प्रतिदिन महँगा हो जाता है। बेड़ा ग़र्क़ हो जाए इन अरबों का -- तेल न हुआ -- बकावली का फूल हो गया और मौला आबाद रखे। अपने माननीय और सम्माननीय नागरिकों को, भला महँगाई के लिए इनका क्या दोष है।

अब्बा ने करवट बदली और आँखें खोल कर मेरी ओर देखने लगे। लम्बी बीमारी के बाद भी उनके चेहरे पर शान्ति थी, धैर्य था। उनकी आँखें मेरे चेहरे के फीके रंगों को पढ़ने लगीं। उन्होंने संकेत से दवाई पिलाने के लिए कहा। मैंने घड़ी देखी। दवाई का समय हो चुका था। मैंने उन्हें दवाई पिलाई। दवाई पीने के बाद एक दीर्घ श्वास लिया और मुझसे सम्बोधित हुए,

"मेरे इस लम्बे रोग ने तुम्हें बड़ा तंग कर दिया है। मैं स्वयं भी तंग आ चुका हूँ। साल भर से चारपाई पर पड़ा हूँ। सब कुछ छूट चुका है। सब समाप्त हो चुका है। वह उत्साह, उमंगें, भावनाएँ, वह साहित्य, वह साहित्यकार -- आज के बड़े-बड़े ढिंढोरची, मैं उनके साथ नहीं चल सका। अपने सिद्धान्तों के कारण, जो मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं और जब तक इन बूढ़ी हड्डियों में आत्मा कहीं अटकी हुई है। मैं अपने प्रेम से छल नहीं कर सकता -- बेटा! हमने बड़े परिश्रम से धरती पर चरख़ा काता था। पर कुछ तो करघे ही ढीले निकले और कुछ कपास ख़राब निकली। काश मैं एक जीवित शव न होता। मुझ में तो अब शक्ति नहीं रही। यह मिट्टी अब मिट्टी में मिल रही है परन्तु तुम युवा हो, तुम्हें मेरे पास बैठ कर क्या मिलेगा। तुम्हें ईश्वर ने शक्ति दी है, समझ दी है। तुम खेती-बाड़ी के नए-नए ढंग सीख सकते हो। क्रन्तिकारी खाद और निर्मल पानी से चारों ओर हरियाली ला सकते हो। तुम्हें चिंता क्यों हो -- चिंता का समाधान घर में बैठ कर नहीं होता। उठो मेरे बेटे! बाहर निकलो, तुम्हारे जैसे कितने ही साथी तुम्हें तैयार मिलेंगे। तुम्हें उनके साथ मिलकर चलना है। कन्धे से कन्धा और हाथ से हाथ मिलाकर। उठो! सच्ची लगन और प्यार से हल चलाओ -- अच्छी फसल उगाओ। बंजर धरती

आबाद करो। बड़े-बड़े पत्थरों को बारूद से उड़ा दो। धरती को साफ़ करो, उन पत्थरों को हटाकर धरती को समतल बनाओ -- फिर देखना बेटा! इस धरती का हर कण सूर्य हो जाएगा।"

बातें सुनकर मुझे लगा कि परवेज़ हाशमी, मेरे अब्बा जान -- आज भी युवा हैं -- लोहे के साथ खेलने वाले, और मैं -- उनका बेटा, उनके स्थान पर -- चारपाई पर लेटा हूँ -- एक रोगी मस्तिष्क, सिकुड़ा अस्तित्व -- फिर मैं सहसा उठा। मैंने कमरे की खिड़की खोली -- मैंने देखा -- बाहर, दूर -- लाखों मील दूर --

सूर्य किरणों की सीढ़ी से धीरे-धीरे धरती पर उतर रहा है, मैं घर से बाहर निकल आया -- और सूर्य को पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा -- मेरी आवाज़ पर हज़ारों, लाखों, करोड़ों आवाज़ें मेरे साथ मिल गईं। आवाज़ों ने गीत बनाया, क़दमों ने ताल दिया। क़दम बढ़ रहे हैं -- गीत गूँज रहा है -- गीत सूर्य का -- गीत धरती का -- और सूर्य समीप आता जा रहा है --

पानी पर रेखाएँ

सीमा सुरक्षा बल के हवालदार करनैल सिंह ने अपने चौकी अधिकारी रंधावा को सैल्यूट मारा और कहा,

"साहिब! दो पाकिस्तानी जासूस सीमा पार करते पकड़े गए हैं। वापिस पाकिस्तान जा रहे थे कि हमारे नौजवानों ने पकड़ लिया।"

"जामा तलाशी ली?" इन्सपैक्टर ने वर्दी पहनते हुए पूछा।

"जी हाँ! एक की जेब से दो रुपए वाला पाकिस्तानी नोट और दूसरे की जेब से हमारी करंसी के एक-एक रुपए वाले चार नोट मिले। और कुछ नहीं मिला साहिब!"

"और कुछ नहीं मिला......?" इन्सपैक्टर ने बड़े विस्मय से पूछा।

"नहीं साहिब! लेकिन एक की जेब से मूँगफली के दाने और दूसरे से रेवड़ियाँ मिली थीं। दोनों मूँगफली और रेवड़ियाँ खाते हुए और फिल्म "बॉबी" का गीत......हम तुम इक कमरे में बंद हों और चाबी खो जाए (और बॉबी आ जाए) गाते-गाते सीमा पार कर रहे थे कि रंजीते, कृष्णे और डेविड ने दोनों को जा पकड़ा, बहुत फड़फड़ाए.....लेकिन हमने फड़कने नहीं दिया। कहते हैं कि बैसाखी का मेला देखने आए थे। भला....यहाँ बैसाखी के मेले में उनकी अम्माँ नाच रही थी। जिससे मिलने आ गए। मुसले.....कहीं के।"

"चलो भई करनैल सिंह! दिखाओ तो भला, कौन से जासूस पकड़े हैं आप लोगों ने।" उसने अपने तम्बू से निकलते हुए कहा और दोनों चौकी की तरफ चल पड़े।

"सत्तोवाली की इस चौकी पर इन्सपैक्टर रंधावा को आए अधिक दिन नहीं हुए थे। यही कोई चार महीने हुए होंगे। देश के

लिए अपनी जान न्यौछावर करने की भावना ने उसे पढ़ाई पूरी नहीं करने दी। उसे 1971 के भारत-पाक युद्ध में आपातकालीन पदोन्नति मिल गई। और फिर उसे युद्ध के किसी अगले मोर्चे पर भेज दिया गया। जहाँ उसकी भावना के उबाल ने उसकी बड़ी सहायता की। उसने दिलेरी के कई कारनामे कर दिखाए। युद्ध समाप्त होते ही रंधावा को भी दूसरे अस्थाई भर्ती किए गए सैनिकों की तरह सेना से निकाल दिया गया परन्तु उसके वीरचक्र ने उसे कई चक्कर कराने के बाद सीमा सुरक्षा बल में इन्सपैक्टर बना दिया। उन चक्करों ने रंधावा की सारी भावनाओं को ठंडा कर दिया था। और अब उसे अच्छे-बुरे की पहचान हो गई थी। उसने भारत माता के वास्तविक शत्रु अपनी आँखों से देख लिए थे।

-- उसने दोनों जासूसों का सिर से लेकर पाँव तक निरीक्षण किया। बारह-बारह, तेरह-तेरह वर्ष के अवयस्क लड़के, गोरे-चिट्टे चेहरे, चाँटे पड़ने से और भी लाल हो गए थे। आँखें सूजी हुईं, चेहरे पर उंगलियों के निशान, दोनों सहमे हुए एक दूसरे से सटकर बैठे हुए थे।

"क्यों भई लड़को! तुम कहाँ से आए हो।" इन्सपैक्टर रंधावा ने रौब से पूछा।

"हम जनाब कजलियाल से आए हैं।"

"कजलियाल तो पाकिस्तान में है, तुम यहाँ क्या लेने आए थे?"

"पतंग लूटने!"

"पतंग लूटने?"

"जी हाँ!"

"तो लूटी फिर तुमने पतंग?" इन्सपैक्टर रंधावा ने जिरह की।

"नहीं जी!?"

"क्यों?"

"पतंग हमारे हाथ नहीं आई। वह आम के पेड़ की टहनी से जा अटकी।"

"फिर तुम लोग वापिस क्यों नहीं लौट गए। यहाँ क्या

करते रहे?"

साहिब! यह बिल्कुल झूठ बोल रहे हैं। बकवास कर रहे हैं। इन्होंने पहले यह बयान दिया कि बैसाखी का मेला देखने आए थे। साहिब यह पक्के जासूस हैं। ऐसे कई लड़कों को शत्रु देश ने जासूसी की सिखलाई दे कर हमारे देश में भेजा है। ताकि हम पर एक और हमले की तैयारी की जा सके। यह शत्रु की नई चाल है।" हवालदार करनैल सिंह ने इन्सपैक्टर रंधावा को समझाते हुए कहा --

"तुम दोनों का नाम क्या है?" इन्सपैक्टर ने पूछा।

"मेरा नाम तुफ़ैल है।" निक्कर पहने हुए लड़के ने जवाब दिया।

"मेरा पूरा नाम अब्दुल अज़ीज़ बाजवा है। लेकिन मुझे सभी जीजी कहते हैं। पतलून पहने हुए लड़के ने जवाब दिया।"

"तुम दोनों की उम्र क्या है?"

"मेरी उम्र तेरह साल है।" तुफ़ैल ने जवाब दिया।

"माँ कहती हैं कि मैंने चौदहवें साल में पाँव रखा है।" अज़ीज़ ने कहा।

"तुम आपस में क्या लगते हो?"

"जी! हम दोनों मौसेरे भाई हैं।"

"रहते कहाँ हो और क्या काम करते हो?"

"मैं गवर्नमैंट हाई स्कूल डालोवाली में सातवीं में पढ़ता हूँ, और हम रहते भी वहीं हैं।" तुफ़ैल ने जवाब दिया।

"मैं भी सातवीं जमात में पढ़ता हूँ और उस सामने वाले गाँव कजलियाल में रहता हूँ। आजकल हमारी छुट्टियाँ हैं। इसी लिए तुफ़ैल हमें मिलने आया हुआ था।"

"अच्छा तो अब सच-सच बताओ कि तुम यहाँ लेने क्या आए थे? देखो! अगर तुम लोगों ने सच बताया तो हम तुम्हें छोड़ देंगे। वरना तुम्हारी चमड़ी उधेड़ कर उसमें भूसा भर देंगे। और तुम्हारा गोश्त चीलों और कौओं को खिला देंगे। सच बताओ कि तुम्हें यहाँ किसने भेजा है। तुम्हें कौन-सा काम सौंपा गया था?

यहाँ तुम किन के पास रहे? तुम्हारे कितने आदमी यहाँ काम कर रहे हैं?" इन्सपैक्टर रंधावा ने एक ही साँस में ढेर सारे सवाल कर डाले। उसकी आँखें दोनों लड़कों के चेहरों पर केन्द्रित थीं -- सपाट चेहरे वाले दोनों एक-दूसरे की तरफ देखते और कभी इन्सपैक्टर की तरफ़।

"जनाब हम बिल्कुल सच कह रहे हैं।" जीजी ने रोते हुए कहा।

"खुदा पाक की क़सम! हम यहाँ पतंग लूटने ही आए थे। बात यूँ हुई कि हम दोनों छत पर पतंग उड़ा रहे थे। एक कटी हुई पतंग को देखते ही मैंने अपनी पतंग की डोर छोटे भाई शरीफ़े को दी और खुद पतंग लूटने दौड़ पड़ा। मेरे पीछे-पीछे तुफ़ैल भी दौड़ा और हम दोनों "बो-काटे" कहते-कहते आप के गाँव तक पहुँच गए। दूर ही कितना है, बस गन्ने के दो-चार खेत ही तो फलांगने पड़ते हैं।" जीजी ने हाथ से नापते हुए कहा,

"जब तुम्हें पता चल गया था कि यह हमारा गाँव है तो तुम लोग वापिस क्यों नहीं लौट गए?" हवालदार करनैल सिंह ने मूँछों को ताव देते हुए कहा। उसकी भयानक शक्ल देखते ही तुफ़ैल बोल पड़ा,

"नहीं जी! यह सामने के गाँव से ढोल बजने की आवाज़ आ रही थी। ढोल की आवाज़ सुनकर हमसे रहा नहीं गया। हम दोनों तमाशा देखने वहाँ चले गए। वहाँ जनाब! एक ढोलिया, ढोल बजा रहा था। और लोग भंगड़ा नाच रहे थे। बहुत ही शोर-शराबा था। कुछ लोग दारू पी कर मस्ती में नाच रहे थे। ढोल के ताल पर हम दोनों भी नाच पड़े, एक बूढ़ा नाचते-नाचते मेरे पास आया। उसने मुझे अपने कन्धों पर उठा लिया। और फिर हम सभी नाचते-गाते, नवाँ शहर पहुँचे। मैं और जीजी भी। वहाँ जब वो एक बस पर सवार होने लगे तो हमें पता चला कि वो जम्मू जा रहे थे। नहर पर बैसाखी का मेला देखने। जीजी ने भी मुझे मेला देखने के लिए कहा।

"जनाब ये तो मानता ही नहीं था। लेकिन जब मैंने इससे

कहा कि हम शाम तक वापस लौट आएँगे तब इसने भी हामी भरी।" अज़ीज़ ने तुफ़ैल की बात काटते हुए कहा,

मेरे अब्बा अक्सर कहा करते हैं कि जम्मू.....नहर पर बैसाखी का एक बहुत बड़ा मेला लगता था। और वह दो आने किराया खर्च करके एक घंटे में नहर पहुँच जाया करते थे। सारा दिन मेले की रौनक़ देखकर शाम को वापिस घर लौट आते -- हम भी एक बस में बैठ गए -- और जनाब! हमने वहाँ बैसाखी का मेला देखा। जी भर के भंगड़ा डाला। गन्ने चूसे, कुल्फ़ी खाई। मेला देखने के बाद हमने एक फिल्म भी देखी।"

"हाँ जी! झूठ वोले कौआ काटे, काले कौए से डरियो।" तुफ़ैल झट से बीच में बोल पड़ा।

"चुप करो तुफ़ैल! यह मूँछों वाला "ज़ोय" ज़ालिम फिर मारेगा।" अज़ीज़ ने तुफ़ेल के चुटकी भरते हुए कानाफूसी की। उर्दू क़ायदा में "ज़ोय" के ख़ाने में है न बिल्कुल इसी सरदार की तस्वीर।

"हाँ-हाँ! बिल्कुल इसी की तस्वीर है। जभी तो इस ज़ालिम ने हमें मारा।" तुफ़ैल ने करनैल सिंह को देखते हुए गर्दन हिलाई।

"लेकिन जम्मू जाने के लिए तुम्हारे पास पैसे कहाँ से आए?" इन्सपैक्टर रंधावा ने जाँच जारी रखते हुए पूछा।

"जीजी के पास तो कोई पैसा नहीं था। पर मेरे पास दो रुपए का अपना एक नोट था। नवाँ शहर पहुँच कर मैं जम्मू की टिकट लेने के लिए वह नोट टिकट क्लर्क को देने ही लगा था कि जीजी ने रोक दिया और कहा कि यहाँ पाकिस्तानी नोट नहीं चलते। मेरे अब्बा ने हज से मेरे लिए एक घड़ी लाई थी। हमने वह घड़ी वहाँ, एक घड़ीसाज़ को तीस रुपए में बेची तब कहीं जाकर हम जम्मू पहुँचे। हमने वहाँ मेला देखा, फिल्म देखी और फिर बस में ही बैठ कर वापिस नवाँ शहर पहुँच गए और इसी रास्ते से वापिस अपने गाँव को जा रहे थे कि इन ज़ालिमों ने हमें पकड़ लिया और बहुत पीटा।" तुफ़ैल ने सिपाहियों की ओर संकेत किया और रोने लगा।

"इन्होंने हमें छोटा देखकर मारा है। अगर मेरे अब्बा को पता चल जाए तो वह इनके टुकड़े कर दे। बड़े पहलवान बने फिरते हैं।" अज़ीज़ ने आँसू पोंछते हुए कहा।

"तेरे अब्बे को खाएँ सूर, हरामी, अब्बे का रौब दिखाता है। तेरे अब्बा की माँ की......साहिब! ये कुत्ते झूठ बोलते हैं। आप इनकी बातों का बिल्कुल विश्वास न करें। गुरु महाराज ने फ़रमाया है कि अगर कोई मुसला, तेल वाला बाजू तिलों की बोरी में डाल दे और फिर उतनी ही क़समें खाए कि जितने तिल उसके बाज़ू पर लगे हों। तब भी उसकी बात का विश्वास न करो। साहिब! ये पक्के जासूस हैं। इन्हें हैड क्वार्टर भेजना चाहिए -- खुद इन्टेरोगेशन में वह सब कुछ उगलवा लेगे।" हवालदार करनैल सिंह, इन्सपैक्टर रंधावा को सुझाव दे रहा था।

इन्सपैक्टर ने दोनों लड़कों को चुप कराया और करनैल सिंह को घूरते हुए पूछा।

"किस गुरु साहिब ने यह तिलों वाली बात कही थी?"

"यह तो मैं नहीं जानता साहिब, पर यह बात है बिल्कुल सच। हमें ग्रन्थी जी ने बताई थी। और वह कोई झूठ थोड़ी बोलेंगे।"

ऐसी गलत बातें फैलाते हुए तुम लोगों को शर्म आनी चाहिए।" इन्सपैक्टर रंधावा ने करनैल सिंह को डांटते हुए कहा। और जीप मँगवाने का हुक्म दिया। वह यह केस हैड क्वार्टर भेजने से पहले अपनी सन्तुष्टी कर लेना चाहता था।

जीप नवाँ शहर की तरफ़ दौड़ रही थी और -- अज़ीज़ और तुफ़ैल की नज़रें अपने गाँव की तरफ़ -- समतल रास्ता -- मगर कितना टेढ़ा-मेढ़ा -- हिमालय से भी मुश्किल -- नज़रें देखती रहीं। दूरी बढ़ती गई -- और जीप लक्ष्मी वॉच हाउस के सामने रुक गई।

"इन लड़कों ने तुम्हें कोई घड़ी बेची है?" इन्सपैक्टर ने पूछा।

"नहीं सरदार साहिब! मैं तो इन्हें जानता भी नहीं।"

"सच-सच बताओ, वरना मैं अभी तुम्हारी खाल उधेड़ दूँगा।" इन्सपैक्टर गरजा -- तुफ़ैल के पहचानने पर इन्सपैक्टर ने घड़ी बरामद कर ली और जीप वापिस चौकी की तरफ़ चल पड़ी।

"क्यों भई करनैल सिंह! अब इन लड़कों के साथ क्या सलूक किया जाए।" इन्सपैक्टर रंधावा ने दोनों लड़कों को अपने तम्बू की तरफ़ ले जाते हुए करनैल सिंह से पूछा।

"जो आप मुनासिब समझें साहिब।"

"क्यों भई लड़को! तुमने कुछ खाया पिया भी है या नहीं?" इन्सपैक्टर ने तुफ़ैल की कलाई पर घड़ी बाँधते हुए पूछा।

"जी नहीं! लेकिन हमें ज़ोरों की भूख लगी है।"

"अच्छा तो बताओ, क्या खाओगे।"

"जी! कुछ नहीं।"

"भई! तुम्हें तो ज़ोरों की भूख लगी हुई है। फिर इन्कार क्यों?"

दोनों एक-दूसरे की तरफ़ देखने लगे और फिर तुफ़ैल हिचकिचाते हुए बोला,

"अब्बा कहा करते हैं कि अगर काफ़िर के हाथों कुछ खाओगे तो गुनाह होता है।"

"लेकिन बेटा! क्या मैं तुम्हें काफ़िर लगता हूँ? मेरे भी तुम्हारी तरह हाथ, पाँव, नाक, मुँह है और फिर मैं भी तो उसी खुदा के आगे सर झुकाता हूँ, जिसकी तुम इबादत करते हो। बेटा हम सभी इन्सान हैं। तुम्हारे अब्बा जान को किसी ने ग़लत बताया है।" इन्सपैक्टर ने तुफ़ैल को अपनी गोद में बिठाते हुए समझाया।

"सच?"

"बिल्कुल सच।"

"फिर तो हम जी भर कर खाएँगे। हमें बहुत तेज़ भूख लगी है।" अज़ीज़ ने उछलते हुए कहा।

खाना खाने के बाद इन्सपैक्टर रंधावा ने ड्यूटी पर खड़े दो सिपाहियों को निर्देश देते हुए कहा,

"देखो भई, इन दोनों लड़कों को सीमा पार करा दो।

लेकिन इस बात का ध्यान रखना कि उनके सिपाही गश्त पर न हों। ऐसा न हो कि हम तो इन्हें छोड़ दें और वो पकड़ लें।

सिपाहियों ने सैल्यूट मारा और दोनों लड़कों को ले गए -- इन्सपैक्टर उन्हें दूर तक जाते हुए देख रहा था -- उसका चेहरा फूल की तरह खिल उठा था। उसकी आँखें ख़ुशी से चमक रही थीं। लेकिन उसके कानों में कुछ हल्की-हल्की सी आवाज़ें पड़ रही थीं,

"इन्सपैक्टर ने इन साँप के बच्चों को छोड़ कर अच्छा नहीं किया। अब इसकी ख़ैर नहीं। कल तक इसे ख़ुद पता चल जाएगा।

आवाज़ें उभरती-घटती रहीं -- और इन्सपैक्टर चुपचाप अपने तम्बू में चला गया।

अबाबील का स्वप्न

देवताओं ने जब मंगल पर भोजन पानी और वायु का सब प्रबन्ध कर लिया तो धरती का एक बंजारा अपनी सुन्दर टोकरी में रंग-बिरंगे खिलौने लेकर वहाँ बेचने के लिए निकल खड़ा हुआ। वह हवाई शटल पर बैठ गया। शटल वायुमण्डल को चीरती हुई अंतरिक्ष में प्रविष्ट हुई तथा थोड़ी देर के लिए चन्द्रमा -- पर रुकी तथा वहाँ के यात्रियों को उतार कर सुरक्षित मंगल पर पहुँच गई। मंगल वासियों ने धरती के बंजारे का भव्य स्वागत किया। वैसे तो वह आदि पुरुष का नाम युगों-युगों से सुनते आ रहे थे परन्तु उनकी सन्तान को पहली बार देखा था और देख कर प्रसन्न भी बहुत हुए थे। विशेष रूप से बंजारे की टोकरी में सुन्दर तथा विचित्र खिलौने देख कर।

बंजारे ने पहले डुगडुगी बजाई, फिर बाँसुरी के सुर सुनाए तथा भीड़ एकत्रित करके उन्हें खिलौने दिखाने लगा। वह सांकेतिक भाषा में उनसे वार्तालाप कर रहा था।

"मैं धरती से सबसे अधिक प्रिय कुछ खिलौने आपके लिए लाया हूँ। यह सब आप को निःशुल्क ही मिल जाएँगे। आप इनसे खेल कर देखें। यदि भा जाएँ तो आवश्यकता के अनुसार अत्यन्त ही कम कीमत पर आपको माल सप्लाई कर दिया जाएगा।"

फिर वह एक-एक करके खिलौने दिखाने लगा और उनका कमाल समझाने लगा।

"यह लौह अश्व है। यह अपने सामने आने वाली हर वस्तु को नष्ट कर देता है। इसके मुख से अग्नि के गोले निकलते हैं जो दूर-दूर तक विनाश लीला कर देते हैं।"

"यह अग्नि बाण है। यह अनेक प्रकार के हैं। यह सहस्रों

मीलों की यात्रा पलक झपकते ही कर सकता है और निर्धारित लक्ष्य को धूल-धूसरित कर सकता है। इसका वार कभी व्यर्थ नहीं जाता।"

"यह गगन-भेदी है। यह सुदर्शन चक्र है। यह हवाईयाँ हैं, जहाँ गिरें वहाँ विनाश ही विनाश कर देती हैं। ऐसे ही यह पवन-सिंह है, यह लौह-मानव तथा यह अणु-शक्ति से चलने वाले कुछ अन्य खिलौने।"

"परन्तु इन खिलौनों से कौन-सा खेल खेला जाता है?" सभी मंगल-वासियों ने एक स्वर में पूछा।

अपनी शक्ति दिखाने, अपनी बात मनवाने तथा अपना प्रभुत्व स्थापित करने का खेल -- इस खेल में जो तुम्हारी बात न माने वह तुम्हारा शत्रु बन जाएगा। फिर तुम उसे तथा उसके समर्थकों को इन खिलौनों से नष्ट कर के सम्पूर्ण मंगल पर राज्य कर सकते हो। यह खिलौने तुम्हारे शासक होने की चमक-दमक बन सकते हैं। तुम अपने शत्रुओं का नाश कर सकते हो -- और यदि -- इसी प्रकार के खिलौने तुम्हारे शत्रु के पास भी हों तो हमारे पास उनका तोड़ भी है। यह सब मानव-मस्तिष्क का कौशल है -- और बंजारा गर्व से गर्दन अकड़ा कर मंद-मंद मुस्काने लगा -- परन्तु बंजारे की बात सुनकर मंगल वासी बोल उठे।

"परन्तु हमारा तो कोई शत्रु नहीं है। शत्रुता हमारी परम्पराओं के विरुद्ध है। हमारे वंश के रक्त में मोह-माया, क्रोध और ईर्ष्या-द्वेष के कीटाणु नहीं होते। हमारी धरती कभी विभाजित नहीं की जा सकती। यहाँ वायु, जल तथा अन्न का विभाजन नहीं होता। प्रेम-प्यार, समानता तथा भ्रातृभाव मंगल वासियों के लिए भगवान का वरदान हैं। यहाँ की प्रत्येक वस्तु हम सबकी सांझी है। यहाँ सब मिलकर परिश्रम करते हैं। प्रेम एवं मैत्री के गीत गाते हैं। संग बैठकर खाते-पीते हैं तथा शान्ति तथा प्रेमभाव की छाया तले सो जाते हैं। यहाँ तेरे-मेरे का कोई द्वन्द्व नहीं है। शासन तथा स्वामित्व की कोई रीत नहीं है। इसलिए हमें तुम्हारे खिलौनों की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम यह सब खिलौने लेकर यहाँ से

तत्क्षण निकल जाओ। हम अपनी धरती पर घृणा तथा युद्ध की उपज उगाना नहीं चाहते। भागो यहाँ से और फिर कभी अपने दूषित पैर इस धरती पर मत डालना।"

बंजारा बड़ा चकित हुआ। उसने सभी खिलौने समेटे और अपनी धरती पर उतर आया।

अली बाबा चालीस चोर

निर्धनों, असहायों तथा आश्रितों की समय-असमय सहायता करने के कारण अलादीन का नाम सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गया, देशसेवा के कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लेने के कारण प्रशासन ने अलादीन को "योजना एवं विकास कमेटी" का सदस्य चुना था। अलादीन ने कमेटी की बैठकों में भाग लेने से पूर्व सम्पूर्ण क्षेत्र की परिस्थितियों का सही अवलोकन करने का निर्णय किया.....उसने नहा-धो कर स्वच्छ कपड़े पहने, नमाज़ अदा की और सम्पूर्ण जगत की भलाई व वृद्धि के लिए प्रार्थना करने के बाद विशुद्ध धातु का बना हुआ अपना प्राचीन काल का पारम्परिक दीपक बक्से से निकाल कर हाथ पर रगड़ा। रगड़ खाते ही दीपक में से "सुलेमान जिन्न" निकला और अलादीन के समक्ष हाथ बाँध कर खड़ा हो गया। फिर अपनी मोटी-सी गर्दन तनिक झुका कर अत्यन्त विनम्रता से बोला --

"मेरे लिए क्या आदेश है स्वामी, आपने इस वैज्ञानिक उन्नति के काल में मुझे कैसे स्मरण करने का कष्ट किया।" अलादीन ने जिन्न के साथ देश की परिस्थितियों तथा मानवी-समस्याओं पर विचार-विमर्श किया तथा उसे आदेश दिया कि वह समग्र क्षेत्र का अवलोकन करे, जनता की सही दशा तथा उसकी उन्नति एवं विकास के लिए किए जा रहे कार्यों को देखे तथा एक सप्ताह के भीतर लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत करे।

बहुत दिन बीत गए तो अलादीन ने दीपक को फिर रगड़ा तथा सुलेमान जिन्न लज्जित-सा मुँह बनाए सिर झुकाए स्वामी के समक्ष प्रकट हो गया।

"क्या आदेश है मेरे स्वामी?"

"तुम्हें मैंने क्षेत्र की उन्नति एवं विकास तथा जनता की परिस्थितियों के विषय में विस्तृत रिपोर्ट देने के लिए सात दिनों की अवधि दी थी। क्या तुमने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है। मैं विकास कमेटी की बैठक में पूरी तैयारी के साथ सम्मिलित होना चाहता हूँ।"

"मैंने अपना कार्य कर लिया है मेरे स्वामी! क्षेत्र भर की आपबीती तथा जग-बीती अपनी आँखों से देख ली है। तथा एक गुप्त रिपोर्ट श्रीमान के चिंतन-मनन और अध्ययन के लिए तैयार कर ली है। आदेश हो तो वह रिपोर्ट प्रस्तुत करूँ।"

"प्रस्तुत करो।" -- जिन्न सुलेमान ने अपनी बास्केट में से कुछ मुड़े-तुड़े कागज़ निकाले और आगे बढ़ाते हुए बोला, "श्रीमान कोई अन्य सेवा मेरे योग्य हो तो सेवक उपस्थित है।"

"नहीं! अब तुम जा सकते हो।" और यह सुनते ही जिन्न सुलेमान दृष्टि से ओझल हो गया।

अलादीन ने रिपोर्ट को ध्यानपूर्वक पढ़ा। रिपोर्ट के अनुसार कुछ चोर-उचक्के अवश्य चौधरी बन गए थे परन्तु जनता की सामूहिक रूप से दशा अत्यन्त खराब थी। विशेष रूप से दूरगामी पर्वतीय स्थानों के निवासियों की दशा तो बहुत ही दयनीय थी। अलादीन को रिपोर्ट का एक-एक अक्षर बिच्छू की भांति डंक मार रहा था। रिपोर्ट के अनुसार जनता की दशा सुधारने के लिए सरकारी योजनाएँ अति लाभकारी थीं परन्तु इन सुझावों पर काम अधिकतर पन्नों में ही होता रहा था। ग्राम विकास योजनाएँ केवल सरकारी कर्मचारियों का ही विकास कर रही थीं। निर्धनों को निर्धनता के स्तर से ऊपर उठाने के लिए दी गई सरकारी सहायता बलपूर्वक निर्धनों से हथियाई जा रही थी तथा बेचारी निर्धन जनता दिन-प्रतिदिन ऋण-जाल में जकड़ी जा रही थी। शिक्षा, सिंचाई, बिजली, सड़कों तथा बेकारों को रोजगार देने के अतिरिक्त, क्षेत्र के विकास तथा स्मृद्धि के लिए बनाई गई योजनाओं पर प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए खर्च हो रहे थे। परन्तु क्षेत्र का 90 प्रतिशत भाग अब भी हर बात में पिछड़ा था। उदाहरण के लिए बिजली की

उत्पत्ति के लिए एक बाँध एक लम्बे अंतराल से बन रहा था। अरबों रुपए खर्च किए जा चुके थे परन्तु बाँध अभी तक निर्मित नहीं हुआ था परन्तु इसे बनाने वाले इन्जीनियरों और अन्य कर्मियों की भव्य कोठियाँ अवश्य बन गई थीं। कर्त्तव्य परायणता, राष्ट्रीय चरित्र, अनुशासन जैसे शब्द जैसे कि शब्दकोश से बाहर हो चुके थे। लोग यह सारे शब्द भुला चुके थे। घोटाला, घूसखोरी तथा बेईमानी, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध और जैन सब का संयुक्त धार्मिक कर्त्तव्य बन चुका था। रंगों की रंगारंग बहारें थीं तथा चारों दिशाओं में धन बटोरने की अंतहीन दौड़ लगी हुई थी।

रिपोर्ट पढ़कर जिन्न सुलेमान की भांति ही अलादीन भी बग़लें झांकने लगा और विचार करने लगा कि सरकारी एजेन्सियाँ तो क्षेत्र का बहुत सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती रही हैं, कहीं सुलेमान धोखा तो नहीं खा गया और कहीं वह भूल से पड़ोसी देश में तो नहीं घुस गया। जहाँ का उल्लेख हमारे समाचार पत्र तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन प्रायः करते हैं। उसे संदेह हुआ तथा उसी संदेह के आधार पर उसने दीपक को पुनः रगड़ा और सुलेमान से प्रश्न किया।

"यह तुमने किस क्षेत्र की रिपोर्ट तैयार की है?"

आपके ही क्षेत्र की श्रीमान! जहाँ आप रहते हैं – अन्य किसी क्षेत्र में तो मुझे जाने की आज्ञा है न अधिकार – मैं भला वहाँ कैसे जा सकता हूँ।"

"परन्तु क्या यह रिपोर्ट बिल्कुल सही है।"

"सोलह आने सही! परन्तु आप को संदेह क्यों हुआ। मुझे मनुष्यों की भांति असत्य बोलने की लत नहीं। मैं तो जिन्न हूँ जिन्न, सच्चा और बिल्कुल सच्चा। मैं आपको अपनी हथेली पर बिठा कर पूरे क्षेत्र का चक्कर लगवा सकता हूँ। आप स्वयं अपनी आँखों से सारी वास्तविकता देख सकते हैं।"

और हुआ भी यही, अलादीन ने जिन्न सुलेमान के साथ सारे क्षेत्र का चक्कर लगाया और उसे विश्वास हो गया कि रिपोर्ट

अक्षरशः सही है।

और एक दिन जब अलादीन को विकास कमेटी की बैठक में सम्मिलित होने का न्यौता मिला तो वह पूरी तैयारी के साथ राजधानी के लिए चल दिया। सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् हाल में बैठक आरम्भ हुई। एक ओर क्षेत्र का प्रधान और कमेटी का चेयरमैन अलीबाबा एक भव्य सिंहासन पर विराजमान था तथा उसके साथ ही कमेटी के चालीस माननीय सदस्य अलग-अलग कुर्सियों पर आसीन थे। वह उसके परामर्शदाता भी थे तथा दूसरी ओर कमेटी के अन्य सदस्य बैठे थे। अलीबाबा के चालीस परामर्शदाता अलग-अलग सरकारी विभागों के बड़े अधिकारी थे और अपने-अपने विभागों के क्रियाकलापों के विषय में विस्तृत रिपोर्टें तैयार करके लाए थे।

सभा आरम्भ हुई। अलीबाबा ने सरकार की ओर से विभिन्न वर्गों में दी गई धनराशि का अवलोकन किया, विवरण पढ़ कर सुनाया। उसके पश्चात् प्रत्येक परामर्शदाता को अपने-अपने विभाग के विषय में विस्तृत सूचना देने के निर्देश दिए तथा साथ-साथ कमेटी के माननीय सदस्यों को स्पष्टीकरण किए जाने वाले प्रश्न करने की अनुकम्पा भी की। परामर्शदाता एक के पश्चात् दूसरा अपने-अपने विभाग में हो रहे कामों और व्यय की गई राशियों का उल्लेख करने लगे। हर सदस्य अपने-अपने गाँव, नगर तथा क्षेत्र के विषय में प्रश्न करने लगा। अधिकाँश सदस्य विभागों के किए जा रहे कामों पर सन्तुष्ट नहीं हो रहे थे परन्तु उन्हें बड़े सुन्दर शब्दों, संकेतों तथा हाव-भावों में चुप करा दिया गया। परन्तु अलादीन यह सब संकेत समझ न सका, सुन्दर शब्द भी उसके कण्ठ के नीचे न उतरे। उसने परामर्शदाताओं की ओर से प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को निराशापूर्ण तथा असंतोषजनक बताते हुए आंकड़ों को असत्य का मात्र ढेर बताया तथा सभाध्यक्ष अलीबाबा से माँग की कि सदस्यों को भ्रमित करने के अपराध में परामर्शदाताओं के विरुद्ध कड़ी कारवाई की जाए क्योंकि सरकारी काम के नाम पर राष्ट्रीय सम्पत्ति लूटी जा रही थी। अलादीन ने

अधिकारियों की ओर से की जाने वाली अन्धाधुंध लूट-खसूट का भी उल्लेख किया परन्तु अलादीन की आवाज़ रेगिस्तान में दी गई आवाज़ प्रमाणित हुई कि सब परामर्शदाताओं ने एक स्वर से सरकार को बदनाम करने का षड्यन्त्र बताया तथा स्वयं पर निजी आघात आंका। शोर शराबे तथा हंगामे में उनकी ओर से यह माँग भी की गई कि अलादीन को अराजकता फैलाने के अपराध में बंदी बना लिया जाए।

अलीबाबा ने बड़ी कठिनाई से अपने परामर्शदाताओं को चुप करवाया। उनसे आग्रह किया कि वह अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखें तथा सच्ची लगन तथा नेकी की भावना के साथ राष्ट्रीय उन्नति के कामों में जुटे रहें। उसने कहा,

"यह देश एक प्रजातांत्रिक देश है। यहाँ हर एक को अपनी बात कहने तथा आलोचना करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है, अतः अलादीन को भी इसी आधार पर क्षमा के योग्य समझा जाना चाहिए। उसने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा - अलादीन जी आज पहली बार कमेटी की बैठक में सम्मिलित हुए हैं। उनके भ्रम को दूर करना हमारा नैतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है कि धीरे-धीरे सब कुछ समझ जाएँगे।"

अलादीन, अलीबाबा के यह वाक्य सुनकर अत्यन्त दुखी हुआ तथा चुपचाप बैठक से उठकर अपने घर चला गया।

भविष्यवाणी

भविष्य काल में परिस्थितियाँ ऐसी हो गईं कि महर्षियों ने प्रथम बार अपने ऊपर प्रकृति का प्रकोप होते देखा जहाँ महात्मा जन रहते थे, वहाँ एक तूफान आया। बड़ा भयानक। पथरीले ओले पड़े और बालू की वर्षा हुई। महापुरुषों के भगवान महाराजाधिराज का कहना था कि प्रकृति का प्रकोप उन पर नहीं हो सकता है। उन्होंने कहा -

"हम तो आकाशीय आदेश के अधीन रहकर इस सृष्टि को चलाते हैं, हम तो आकाश के सबसे प्रिय जीव हैं -- आकाश हम पर कृपालु है। यह तूफान कीड़े-मकौड़ों के पँख निकलने के कारण आया है।"

फिर तूफ़ान फैलने लगा और महापुरुषों को अपना सब कुछ तूफान में बह जाने का भय लगने लगा। शीशों के घर चकनाचूर होने लगे।

फिर यूँ हुआ कि सारे महापुरुष तूफ़ान से बचने के लिए भविष्य काल से निकल कर भूतकाल में आ गए। वह सारे प्राचीन काल की आस में वनों, पर्वतों, रेगिस्तानों तथा घाटियों में यात्रा करने लगे ताकि अपने लिए कोई सुरक्षित स्थान ढूँढ सकें और वहाँ आश्रय ले सकें। महापुरुषों के इस काफिले का नेतृत्व भगवान अधिराज साक्षात स्वयं कर रहे थे। वह सारे सोने चाँदी के रथों पर सवार थे -- अपने चहेते परिवारों को साथ लिए उनके पीछे सुरक्षा दल के वीर जवान पैदल चल रहे थे। कवच पहने, हाथों में तीर-तुफंग, नेज़े, भाले और बरछे लिए हुए ताकि भविष्य काल के शत्रु को मृत्यु के घाट उतारा जा सके और तूफानों के भंवर से बाहर निकाला जा सके। कारवां चलता जा रहा था और भगवान

अधिराज की गिद्ध दृष्टि आश्रय स्थल की खोज में लगी थी। यात्रा थका देने वाली तथा मार्ग कष्ट देने वाला था। तेज़ धूप में रेत की यात्रा की कठिनाईयों के होते हुए भी सारा काफिला भगवान अधिाज के नेतृत्व में एक ऐसे स्थान पर जा कर रुका जहाँ कुबेर के समय का एक अति सुन्दर और पूर्ण सुरक्षित दुर्ग बना हुआ था। इस दुर्ग में कुबेर की सारी सम्पदा धरती के भीतर सुरक्षित पड़ी थी। परन्तु दुर्ग के प्रहरी के वक्ष पर लिखा था --

कागा करंग ढँढोलिया, सगला खाया मास।
ऐ दो नैनां मत छूईयो, पिर देखन की आस।।

कारवाँ के नेतृत्व कर्ता महाराजाधिराज ने दुर्ग के अन्दर प्रवेश करते ही पहला कार्य यह किया कि प्रहरी की दोनों आँखें निकाल कर खा लीं। ताकि पिर देखन की आस सदा के लिए समाप्त हो जाए। महापुरुषों का काफिला बड़ी शान से दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुआ। दुर्ग में रहने वाले लोग काठ की हांडी में भोजन पका रहे थे और एक स्वर में गा रहे थे --

रोटी मेरी काठ दी लावन मेरी भुक्ख
जिन्हां खाद्धी चोपड़ी, घने सैहूण गे दुक्ख

महापुरुषों की बड़ी आवभगत हुई। उनका भव्य स्वागत हुआ। महापुरुष बहुत प्रसन्न हुए -- फिर महापुरुषों ने विचार किया कि क्यों न दुर्ग के लोगों को भूतकाल के वास्तविक रंग में रंग दिया जाए। उन्होंने निर्णय किया कि दुर्ग के लोगों को कभी चोपड़ी नहीं खाने देंगे और उन्हें घने दुखों के पाश में नहीं फँसने देंगे अपितु उनकी अस्थियों का ईंधन जलाकर काठ की हांडी में भूख उबालेंगे और उन्हें खूब खिलाएँगे -- फिर एक दिन महाराज अधिराज ने दुर्ग के भीतर उगे हुए एक पर्वत पर चढ़ कर सब को अपने भगवान होने का प्रमाण दिया। उन्होंने लोगों को बुलाया तथा काठ की हांडी की विशेषताओं से भरी एक पुस्तक दुर्ग के लोगों को प्रदान की। सभी महापुरुषों ने मिलकर उस पुस्तक को महाराजाधिराज की शुभ-वाणी का रूप दिया। वह शुभ-वाणी सारे लोगों ने कंठ कर ली। शीघ्र ही पुस्तक के प्रभाव ने अपना

चमत्कार दिखाया। दुर्ग के सभी लोग काठ की हांडी के श्रद्धालू बन गए। वह लोग काठ की हांडी की मूर्तियाँ बनाकर भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर गए। महाराजाधिराज और सभी महापुरुष उनके अर्पण किए हुए श्रद्धा-सुमनों को अपनी झोलियों में डालते रहे। कुबेर की सम्पत्ति के ख़ज़ाने धरती के भीतर अधिक सुरक्षित होते गए। ख़ज़ानों का स्वामित्व, आधिपत्य तथा नेतृत्व महापुरुषों का भाग्य बन गया। और श्रद्धा, निष्ठा तथा आज्ञा पालन दुर्ग के लोगों का कर्त्तव्य घोषित कर दिया गया।

महापुरुषों की दयादृष्टि से दुर्ग की दीवारें ऊँची और पक्की हो चुकी हैं। अब महापुरुषों को दुर्ग पर किसी शत्रु के आक्रमण का भय नहीं रहा। किसी तूफान का खटका नहीं रहा। अब किसी बाढ़ में बह जाने की आशंका नहीं रही। लोग काठ की हांडी के पुजारी हैं -- महापुरुष निर्भय होकर -- दुर्ग के भीतर बड़ी नम्रता और दीनता से शीशों के घर बना रहे हैं। महापुरुषों के भगवान -- महाराजाधिराज का आदेश है कि उन्होंने समय को अपनी मुट्ठी में बंद कर दिया है। समय की गर्दन मरोड़ दी है। समय उनका बंदी है। अब दोबारा भविष्य काल कभी नहीं आ सकता।

दुर्ग के सारे लोग महाराजाधिराज की हर बात को पत्थर की लकीर समझते हैं। और प्राचीन काल की रीति के अनुसार वह प्रतिदिन महापुरुषों के हर आदेश के समक्ष शीश झुकाते हैं। सभी प्रसन्न हैं क्योंकि सृष्टि चल रही है।

दर्पण और सत्य

आज के समाचार-पत्र का मुख्य समाचार कल मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था -- शव -- जो एक बहुत बड़ी सभा में भाषण करके आ रहा था -- भाषण -- राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के विषय पर -- आतंकवाद से फैलते विनाश के विषय में -- भाषण बड़ा सशक्त तथा अच्छा था। तालियों से सारा हाल गूँज उठा था। प्रशंसा करते-करते लोगों के मुँह सूख गए थे। शब्दों के जादू ने सब को बाँध कर रख दिया था। ढेरों बधाईयाँ समेटे शव कार में अपने घर जा रहा था कि उस बड़े चौराहे में जीवन ने पल भर के लिए उसे झिंझोड़ा और फिर सदा के लिए मृत्यु के हाथों में फेंक दिया। शव को मरते हुए अन्य भी कई आँखों ने देखा था परन्तु वह सब अन्धी थीं इसलिए शव को कैसे बचा सकती थीं। परन्तु वहाँ एक हत्या और भी हुई थी -- हत्या -- एक आत्मा की -- परन्तु आत्मा की हत्या समाचार पत्रों का मुख्य समाचार न बन सकी -- आत्मा -- जो दूध से भरी गागरें गोकुल से शहर ले जा रही थी ताकि मीठे दूध से मलिन हृदयों को धोया जा सके। गन्दे रक्त को साफ़ किया जा सके और धमनियों में प्रेम-रस घोला जा सके। आत्मा ने जब शव को मृत्यु के हाथों में तड़पते देखा तो काँप गई और उसे बचाने के लिए तपती असभ्य हवाओं को रोकने लगी -- आग को पकड़ने लगी और अन्ततः स्वयं उसकी हत्या हो गई।

आज समाचार-पत्रों का मुख्य समाचार पढ़कर शव-यात्रा में सहस्रों अन्धे चल रहे थे। श्मशान भूमि में टेलीविजन कैमरों की आँखें खुली हुई थीं। यह तमाशा दूरदर्शन पर दिखाने के लिए कैमरे चल रहे थे। उनकी आँखों में बड़ा आकर्षण था, बड़ी शक्ति थी। वह रंग-बिरंगे विज्ञापनों को चुन-चुनकर फोकस कर रहे थे। श्रद्धावान फूल-मालाएँ लिए प्रतीक्षा में थे कि अर्थी को श्रद्धा-सुमन

अर्पण किए जा सकें। फिर कैमरों की आँखों ने देखा कि दो अर्थियाँ भिन्न-भिन्न मार्गों से श्मशान भूमि में प्रविष्ट हुईं। एक अर्थी कारों, स्कूटरों, मोटर साईकिलों के जलूस में सजा कर राजकीय सम्मान के साथ लाई जा रही थी जबकि दूसरी अर्थी को केवल चार आत्माएँ कन्धा देकर श्मशान में ला रही थीं।

शव को राजकीय सम्मान के साथ चिता पर रखा गया। फ्लैश-गनों की चकाचौंध ने सारे वातावरण को प्रकाशित कर दिया। नेतागण अर्थी पर फूल-मालाएँ रखते जा रहे थे। वह बड़े दुखी चेहरों के साथ चित्र खिंचवा रहे थे तथा श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे ताकि अगले दिन के समाचार-पत्रों के मुख्य समाचारों पर अधिकार जमा सकें -- परन्तु -- दूसरी अर्थी की ओर एक फूल भी नहीं फेंका गया। किसी भी कैमरे की आँख ने उसकी ओर नहीं देखा -- कोई भी उसके समीप नहीं गया।

चिता के अग्नि पकड़ने के साथ ही सभी अन्धे अपनी-अपनी कारों, स्कूटरों और मोटर साईकिलों पर बैठ कर गूंगे महलों में जा छिपे ताकि निर्जीव शरीरों को तपती असभ्य हवाओं से बचाया जा सके। शव चिता में जलता रहा। डोम देखता रहा। जब श्मशान भूमि से विषैली ध्वनियों वाले चमगादड़ उड़ गए तो डोम ने एक चिता और बनाई। चारों आत्माओं ने हत्या की गई आत्मा को चिता पर रखा। एक आत्मा ने चिता को अग्नि दिखाई। आग फैलने लगी। लपटों में परिवर्तित हुई और चारों आत्माएँ हत्या की गई आत्मा को जलते देखने लगीं। अग्नि की लपटों में आत्मा पर लिपटा हुआ कफन जला। आत्माएँ देखती रहीं। वह इस प्रतीक्षा में थीं कि कब चिता की राख ठण्डी हो और वह वापिस जाएँ।

फिर कुछ देर के पश्चात् राख ठण्डी हुई। चारों आत्माएँ जाने लगीं परन्तु एक ध्वनि ने उन्हें चौंका दिया -- उन्होंने पीछे मुड़ के देखा -- राख के ढेर में से आत्मा जीवित होकर बाहर निकल आई थी और हँसते-हँसते कह रही थी -

"भला आत्मा भी कभी मरी है, आत्मा सदा जीवित रहती है, आत्मा कभी नहीं मरती।"

भूख को भोजन क्या

गुलाबो की बेटी लाजो मौज मस्ती करते जब तीसरी बार पकड़ी गई तो गुलाबो बेचारी लाज से मर गई।

उसके लिए तो लाजो अब हथेली का छाला बन गई थी। एक बार फिर पूरे गाँव में लाजो की बातें होने लगीं। सारी-सारी रात गुलाबो इस सोच में डूबी रहती कि अपने गले का यह घेंघा कैसे काटा जाए। यह फटा हुआ ढोल किसके गले मढ़ा जाए। सारे गाँव में वह मुँह दिखाने के योग्य नहीं रही थी। जात बिरादरी वाले उठते-बैठते ताने कसते रहते क्योंकि लाजो ने माँ को थूक लगाकर छोड़ा था। वह सोचती कि आज यदि लाजो का बाप जीवित होता तो न यह कीचड़ उस पर उछाला जाता और न ही कोई दुर्गन्ध फैलती परन्तु गुलाबो का गामा भी कोई देवदूत न था। जब तक वह जीवित रहा "बाहर मियाँ लख हज़ारी, अन्दर बीवी क़हर की मारी" वाला हिसाब था। गामा निःसन्देह एक बढ़िया मिस्त्री था परन्तु उसकी सारी कारीगरी शराब की बोतल में घुल कर बाज़ीगरी करने लगती और गृहस्थी की गाड़ी चलाने के लिए जब भी गुलाबो पैसे माँगती तो गामा गालियों का झाड़ बाँधने के साथ गुलाबो के शरीर की चूलें भी हिला कर रख देता। फिर भी कोई ऐसी बात थी कि गुलाबो ने गामे के साथ एक खट्टा-मीठा सा सम्बन्ध अन्तिम साँस तक बनाए रखा। गामे के मरने के बाद गुलाबो ने लाजो को कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि वह अनाथ हो गई है। उसने परिस्थितियों का सामना पुरुषों की भांति किया और बड़े लाड-प्यार से लाजो को पाला। भला गाय को कभी अपने सींग भी भारी लगे हैं और फिर कहते हैं ना कि "बाप घोड़ी पर चढ़ा खोटा और माँ भीख माँगती अच्छी।" पर गुलाबो ने कभी

भीख नहीं माँगी। वह सारा-सारा दिन कलवन्ते चौधरी के कम्बल बुनने के कारख़ाने में करघी चलाती और लाजो माँ के घर आने तक गाँव के मुशटन्डों से आँखें लड़ाती रहती। एक तो बाली उम्र दूसरा कोई रोकने वाला भी नहीं। सांवले रंग की सांवली लाजो, आँखें जैसे मस्त शराबी और अंग-अंग में यौवन की तरंग। उसके चंचल स्वभाव की चंचलताएँ अपना रंग दिखाने लगीं और वह अपने अस्तित्व की अग्नि को सिर पर उठाए भागने लगी।

लाजो पहली बार कुलवन्ते चौधरी के बेटे बन्ते के साथ भागी जो उसे अमृतसर में अमृत पिलाने के बाद सातवें दिन घर ले आया। दूसरी बार वह गाँव के कम्पाउण्डर सरने बाबू के साथ चली गई। वह उसे कश्यप ऋषि की वादी में सैर कराने ले गया था और अब तीसरी बार वह दिल्ली से पकड़ी गई थी। दिल्ली उसे कालिया पहलवान ले गया था। फिल्म एक्ट्रेस बनाने और चाँदनी चौक की आऊट डोर शूटिंग में लाल पगड़ी वालों ने उसे दबोच लिया था। चौधरी रहीम बख़्श को जब लाजो के घर वापस आने और गुलाबो के बखेड़े का समाचार मिला तो वह गुलाबो के घर अपने बेटे का रिश्ता माँगने चला गया और कहने लगा "बहन! बछेरी भूखी है और भूसा सड़ा हुआ। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अल्लाह बिस्मिल्लाह।"

चौधरी रहीम बख़्श का बेटा जो उसकी सारी सम्पत्ति का स्वामी था वास्तव में उसका अपना अंश नहीं था। जभी तो चौधरी ने उसे सड़ा हुआ भूसा कहा था। करीमे ने अख़्तरी बाई की कोख से जन्म लिया था। उसकी झोली में भगवान जाने किस-किस ने अपने सिक्के डाले थे। सारा गाँव इस सत्य को जानता था यही कारण था कि करीमा तीस वर्ष का होते हुए भी अभी तक कुँवारा था। करीमे की जवानी का क्या कहना। दूध की मलाई और काहगानी बकरों के पाए खा-खा कर भी वह यौवन पर आने को सदा शरमाती रही। चौधरी ने उसको तन्दरुस्त बनाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी परन्तु सयाने कहते हैं ना कि "टटुआ खा गया बटुआ, फिर टटुए का टटुआ"। करीमा बेचारा मुँह चूही और पेट

खूही ही रहा परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि चौधरी की तन्दरुस्ती कमाल की थी। उसे देखकर तो कहना पड़ता था कि वह साठे का पाठा था। वैसे भी वह बड़े रंगीले स्वभाव का स्वामी था। उसकी मित्रता गाँव के छोटे-बड़े सब के साथ थी। वह सदा अपनी बात का आरम्भ एक मोटी परन्तु मीठी-सी गाली से करता। कश्मीरी सिल्क का कुर्ता, मुल्तानी रेश्मी लाचा, क़सूरी तिल्लेदार जूती और सिर पर पठानी कुल्लेदार पगड़ी बाँध कर जब वह पँचायत में बैठता तो प्रायः अपने पौरुष की कहानियाँ सुनाता। पति-पत्नी के झगड़ों का निर्णय सुनाते हुए वह कई बार गर्व से कहता :

"ओए! रंडी से ब्याह किया है। पच्चीस वर्ष से मेरे घर में है। क्या मजाल जो एक बार भी मेरी अनुमति के बिना घर से बाहर पैर रखा हो। है न काबू में रखी हुई" और यह बात ठीक भी थी। कोठा छोड़ने के पश्चात् अख़्तरी बाई जिस दिन से चौधरी रहीम बख़्श की पत्नी बनी थी उसके अन्य सभी सम्बन्ध टूट गए थे। केवल एक ही सम्बन्ध रह गया था। चौधरी संग प्यार का सम्बन्ध जो मरते दम तक बना रहा। चौधरी के लाख प्रयासों के बाद अख़्तरी बाई की कोख दोबारा हरी न हो सकी। वह फिर साँचे की सच्ची न बन सकी। थक हार कर चौधरी ने करीमे को अपना दत्तक पुत्र बना लिया। लाजो की करतूतों से गुलाबो बड़ी लज्जित और शर्मसार थी और जब चौधरी करीमे का रिश्ता लेकर आया तो उसने शुक्र का कलमा पढ़ा और अवसर को सही जानते हुए हाँ कर दी।

करीमे और लाजो का विवाह हो गया और बड़े ठाठ से हुआ। कहते हैं कि अख़्तरी बाई ने बारात वाले दिन अपने हाथों से चौधरी को अँगूरी पिलाई थी और कोठे की स्मृतियाँ ताज़ा करते हुए दो-चार घूँट स्वयं भी पी ली थी। वह बड़ी प्रसन्न थी। क्यों न होती। उसका जालदार कबूतर डोली घर ले आया था परन्तु वह जानती थी कि मुर्ग़े चाहे रंग-बिरंगे हो पर बांग एक सी होती है।

भूखी बछेरी सड़ा हुआ भूसा खाने लगी। भला भूख को स्वाद क्या और नींद को बिस्तर क्या। वह गर्भवती भी हुई परन्तु उसके बछेरे को दूध पीना नसीब न हुआ। यह क्रम कोई अधिक देर तक न चल सका। शीघ्र ही लाजो करीमे से उकता गई। जिसे सब्ज़ चारा चरने की लत हो, वह सड़ा हुआ भूसा भला कितने दिन तक खा सकती थी।

लाजो हब्बे दर्ज़ी के लड़के बरकत के साथ आँखें लड़ाने लगी। एक दिन चौधरी की दृष्टि पड़ी तो उसने लाजो को मारपीट कर घर से निकाल दिया। लाजो ने उसके स्वाभिमान और मान-सम्मान को ललकारा था। लाजो जिस घर की मिट्टी थी वहीं जा पहुँची। थोड़े दिनों पश्चात् जब चौधरी का क्रोध शांत हुआ तो वह लाजो को लेने आया। लाजो ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया और चौधरी को उसी प्रकार अपमानित करके घर से निकाल दिया जिस प्रकार उसे निकाला गया था। फिर कुछ अंतराल के बाद गाँव वालों ने सुना कि लाजो एक बार फिर फिल्म एक्ट्रेस बनने चली गई है कालिये पहलवान के साथ और चौधरी आज कल अपने सड़े हुए भूसे के लिए कोई दूसरी बछेरी की खोज कर रहा है।

आवारा सर्प का दंश

अपने लहू में नहाया हुआ व्यक्ति, लाल आँखों, लाल अधरों और लाल हाथ-पैर वाला व्यक्ति -- मुझे अपनी जलाई हुई आग दे गया है और यह आदेश सुना गया है कि मैं इस आग को अपने सिर पर उठाए शहरों, देहातों, वनों, रेगिस्तानों में भटकता रहूँ। सिर पर उठाई हुई यह आग, लावे के रूप में मेरे शरीर में भी घुली हुई है। मेरी हड्डियों में रची हुई है। इस आग के अलाव में केवल मेरा अस्तित्व जल रहा है, और क्यों न जले -- एक हरे-भरे बाग़ की मालिक होते हुए भी मुझे इस आग में जलने का शौक़ चर्राया हुआ था। मेरे निजी जीवन का मालिक -- दिलावर, मेरा पूरा ध्यान रखता था। वह मेरे फूलों को पानी देता, बूटे, पौधे सजाता, उन्हें हँसाता। मैं मज़े में थी। फूल प्रसन्न थे और माली भी खुशी से फूला नहीं समाता था। जीवन हँसते-खेलते व्यतीत हो रहा था। मेरी बहुत ऊँची अटारी थी बुर्जों वाली। और इन्हीं बुर्जों में से एक बुर्ज -- न जाने किस घड़ी मेरे सीने में समा गया। उस ऊँचे बुर्ज का नाम अनार-गुल था। लाल चेहरे, लाल आँखों, लाल हाथों और पैरों वाला अनार गुल -- जो अपनी जलाई हुई आग मुझे दे गया है। चौड़ी छाती, घने बाल, गठा हुआ शरीर, बिल्कुल अलिफ़ लैला की कहानियों का शहज़ादा लगता था। काफ़िर अरबों के बड़े बुत हुब्बल की भांति -- उसकी मोहनी मूरत मुझे काफ़िर बना गई। मैं अपने खुदा को भूल गई। दिलावर को भुला दिया, अपने फूलों को बिसरा दिया -- हँसता-खेलता जीवन, ऊँची अटारी, बुर्जों वाली, सब कुछ उस बुत की एक दृष्टि के साथ ही भस्म हो गया और शेष रह गया -- एक ही बुर्ज, भाग्य वाला, नसीब वाला -- अनार गुल -- मैं कुफ्र के जाल में फंस गई और अनार गुल को जन्म-जन्म का साथी समझने लगी। मैंने

अपने निरुद्देश्य जीवन का केवल एक ही उद्देश्य बना लिया कि अनार गुल को देखती रहूँ। ज़ख़्मी मुर्ग़े की तरह उसके आगे-पीछे फड़फड़ाती रहूँ -- और उसके अस्तित्व में ढल कर समाप्त हो जाऊँ। मैं सामाजिक कानून की पुरानी पुस्तक को फाड़ कर रद्द कर देना चाहती थी और खुदाई क़ानून के मुताबिक़ अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थी। उस कानून के मुताबिक़ -- जिसके कारण धरती सूर्य के चारों ओर घूमती है -- और मेरी धरती का सूर्य था अनार गुल -- मेरे कुफ्र का रचयिता। मेरा हुब्बल देवता। मुझे ऊँची अटारी वाला घर एक कब्र की भांति लगने लगा। जिसमें मैंने अपने जीवन को गाड़ रखा था। मैं अनुभव करने लगी कि दिलावर ने मेरे शरीर से, मेरी अटारी से, मेरी दौलत से शादी की है, मेरी आत्मा से नहीं। मैं सोचती यदि दिलावर की शादी मेरी आत्मा के साथ हुई होती तो अनार गुल का कहीं अस्तित्व ही न होता। इस विचार ने मेरी आत्मा को विद्रोही बना दिया। मैं अपने मन की बात मानने लगी। मैंने अपने मन की दरगाह के सारे दीपक बुझा दिए। दिलावर, बच्चे, माता-पिता, भाई-बहन सब अंधेरे में लुप्त हो गए। अब दरगाह में केवल एक ही दीपक प्रज्जवलित था। कुफ्र का दीपक -- लपटों वाला -- हुब्बल देवता।

मुझे देवता के चरणों में बैठकर आनन्द मिलता। उसके पथरीले शरीर के साथ अपना शरीर रगड़ने में आनन्द आता। अत्यन्त शांति का अनुभव होता। रब ने शरीर को आत्मा का मन्दिर बनाया है परन्तु मेरे मन्दिर का कलश बन गया -- मेरा देवता, अनारगुल -- और फिर सभी चमकती हुई वस्तुएँ मेरे लिए व्यर्थ हो गईं। मैं अपने सपनों के राजकुमार को पाकर अति प्रसन्न थी। मैंने उसे प्रेम का सागर समझ लिया और उसमें डूब गई। मेरी भूखी और प्यासी धरती तृप्त होकर खाना खाने लगी, और जी भर के पानी पीने लगी। अनार गुल के शरीर से मुझे अनार के लाल फूलों की सुगन्ध मिलती। मेरी कामनाओं की चंचल नदिया दरिया में गिरने के लिए मचलती रहती -- और नदी जब दरिया से मिल जाती है तो शान्तचित समुद्र का रूप धारण कर लेती है। रात का चन्द्रमा और दिन का उजाला -- मेरा अनार गुल, मेरे

आँगन में महकने लगा -- मुझे बीती रातों और गए दिनों का जीवन केवल व्यर्थ लगने लगा परन्तु हुब्बल देवता के संग मेरी आत्मा की बंजर भूमि उपजाऊ हो गई। और मैं अपने अतीत को भूल गई और दूर तक फैले हुए अपनी लम्बे साये को ही अपना स्वयं समझ बैठी। अनार गुल के कारण समाज के बूढ़े पेड़ की वह दृढ़ शाखा टूट गई जिस पर मैं और दिलावर बैठे थे। हम दोनों गिर पड़े। दिलावर बलुआ कुएँ में गिरा और मैं अनार गुल की गोद में। दिलावर मेरे हाथों से फूल-से बच्चे छीन कर ले गया। मुझे फूलों के अभाव का कोई दुःख नहीं हुआ। मेरे देवता ने मुझे हर वस्तु से बेपरवाह बना दिया था। मैंने हुब्बल देवता के लिए सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

परन्तु मूर्ति तो मूर्ति ही होती है -- पत्थर की, और पत्थर कभी मोम नहीं बन सकता। मैं सदा के लिए देवता के साथ बंध जाना चाहती थी लेकिन अनारगुल -- समुन्दर में उभरी हुई एक ऐसी चट्टान था जिससे तूफ़ानी लहरें जिस क़दर चाहें टकराएँ उसे कण-कण नहीं कर सकतीं। अनार गुल ने मेरे प्यार और आस्था का सम्मान नहीं किया। उसने शीघ्र ही मेरी आत्मा के काँच को खण्ड-खण्ड कर दिया। मैं बहुत तड़पी, बड़ी रोई-पीटी, पत्थर की मूर्ति से सिर टकराया और घायल हो गई। मेरे दिल की दुनिया उजड़ गई। मेरी आत्मा अनाथ हो गई -- और मैं अचेत होकर ऊँचे बुर्जों वाली अटारी में गिर पड़ी, अकेली तथा असहाय, लज्जित एवं चिंतित। मेरी अटारी के सभी बुर्ज मेरी छाती में समा गए। मैं पीड़ा से अचेत रहने लगी। मुझे मेरे कुफ्र का बदला मिल गया। मेरे पास कुछ भी तो नहीं बचा -- दिलावर, फूलों का गुच्छा, हँसता-खेलता जीवन, लाल आँखों, लाल अधरों, लाल हाथों और लाल पैरों वाला अनारगुल -- कुछ भी तो नहीं है मेरे पास। परन्तु सामाजिक कानून की पुरानी पुस्तक ने आज मुझे चारों ओर से घेर रखा है। यह पुरानी पुस्तक मैंने फाड़ना चाही थी परन्तु मेरे नर्म हाथ इसको फाड़ न सके। इसी पुस्तक के पन्नों में आज मैं घिर चुकी हूँ -- क्योंकि मेरे माथे पर अनार गुल की प्रदान की हुई आग जल रही है।

गोरी फसल के सौदागर

बरगद का काला बूढ़ा पेड़ रात के अंधेरे में अपने मन तथा बुद्धि की खिड़कियों को ताला लगा कर एक रहस्यमयी खेल में उलझ के रह जाता है और प्रतिदिन प्रातःकाल के समय फूलों से ढकी घाटी के किसी फूल की भांति सुन्दर, तपते सूर्य की शीतल किरणों से धुला उसका मुख -- हर व्यक्ति उसके स्पर्श को पाने को लालायित रहता था।

हाँ! यह वही बरगद का पेड़ है जो कभी जमा देने वाली ठंडी हवाओं में, समुन्दर की भयानक लहरों में, काले बादलों की चादर में, अपनी तेजमयी पहचान को संभाले हुए अपने चारों ओर बनी लोहे की दीवार से जा टकराया था। पिरामिड की देवमालाओं को, अन्धकार के पर्वतों को -- कण-कण करने के सघंर्ष में धरती की कठिनाईयाँ सहन करता था और अपने दृढ़ निश्चयों से धरती पर उगी हर उपज को भाया था, क्योंकि जिसकी बुद्धिमत्ता, राजनीति एवं सूझबूझ की धूम थी, अपने अस्तित्व में सम्पूर्ण, श्वास-श्वास चिंतन के कोण बनाता रहता। उसके मस्तिष्क में प्रकाशमयी गुफाओं में जाने कितने विचार छिपे रहते। और जब-जब प्रकाशमयी गुफाओं से उजली किरणें टूटे चेहरों पर पड़तीं -- उन्हें उनकी कामनाओं का नगर बसता हुआ दिखाई देता -- और फिर एक दिन -- बरगद के पेड़ ने टूटे चेहरों को शताब्दियों की प्यास बुझाने के लिए समुद्र लाकर दे दिया। उस दिन नीम के मंडवे तले बैठा वह दुःख रहित, पगला मनसूर चिल्ला उठा था, यह समुद्र.....परन्तु यह समुद्र मृगतृष्णा का है -- मृगतृष्णा का, रजनीगंधा के फूल बासी हैं -- बासी हैं -- फूल बासी हैं, छिपकली, मक्खी का शिकार कर रही है -- छिपकली -- मक्खी -- ”

उसकी आवाज़ बस्ती की तपती पवन खा गई और इस प्रकार बरगद का पेड़ उनके सपनों का खरीददार बना -- बूढ़े बरगद के पैरों के नीचे चन्द्रमा, आकाशगंगा की ऊँचाईयाँ आ गईं। ब्राह्मण्ड उसके अधिकार में हुआ। कण-कण पर उसका राज स्थापित हुआ और इस काम ने उसको उस आयु में भी ह्रष्ट-पुष्ट बना दिया। उसके भीतर छिपा यौवन उसके साथ अठखेलियाँ करने लगा -- और बूढ़े बरगद के पेड़ की छाया में पलने वाला सनोबर का वह अवयस्क वृक्ष कि जिसकी भीनी-भीनी सुगन्ध बूढ़े बरगद के अवचेतन मन में रच-बस गई है। उसके मन-मस्तिष्क पर एक ध्यानावस्था-सी छा जाती है और हाँ! यही वह साथी है कि जिसके साथ रात के अन्धकार में रहस्यमयी खेल खेला जाता है -- खेल जो खिलाड़ी के लिए शान्ति का माध्यम हो जाता है। उसकी कामनाओं का भिक्षापात्र भर जाता है। उसके दर्शन, चिंतन व दृष्टिकोण को कुछ क्षणों के लिए स्थिर कर देता है। वह अवयस्क वृक्ष, जो कच्ची शाखाओं पर उठते हुए सुगन्धित -- यौवन का आनन्द अनुभव करने लगा है, अब अपने लिए भी सुख का माध्यम चाहता है। और फिर एक दिन वह सम्बोधित हुआ :

"धूप का एक टुकड़ा -- मेरे प्रांगण में प्रतिदिन आता है, यह धूप का टुकड़ा मन्दिर के पिछवाड़े से उभरता है। अन्धी गलियों को चीरता हुआ, खुले वातावरण में मुझे पुकारता है और कहता है कि उसका प्रकाश मेरे लिए है। उसका सब कुछ मेरा है -- वह मुझ से बेला चमेली की भांति लिपट जाता है -- मेरे मन-मस्तिष्क को सहलाता है।"

अवयस्क वृक्ष सुगन्ध है, चहक रहा है। वह प्रतिदिन -- दिन के अन्धे उजाले में एकान्त में झांकता है और रंगों का नज़ारा करता है वह अंतरिक्ष के देश में भूरे पर्वतों और पीले टीलों के नीचे -- धूप के टुकड़े में समा जाता है और तिलिस्म-ए-होश-रुबा बन जाता है -- बूढ़ा बरगद अब भी हर रात अवयस्क वृक्ष के साथ एक रहस्यमयी खेल खेलता रहता है परन्तु अब सनोबर का

वृक्ष ऋतु बदल रहा है। इसमें क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तन आता-जाता है बूढ़ा बरगद यह परिवर्तन अनुभव कर रहा है। वह मौन है, उसने उसे कांच की कड़ियों में जकड़े रखा है। परन्तु धूप का स्पर्श अवयस्क वृक्ष के शरीर तथा आत्मा में एक कोहराम मचाए हुए है। वह बिलौरी पत्थरों को तोड़ना चाहता है तथा वातावरण में उड़ना चाहता है परन्तु वह जानता है कि उसकी जड़ें अभी कोमल हैं। तना कोमल है। वह बूढ़े बरगद के आसरे के बिना जी नहीं सकता। और बूढ़ा बरगद, उसके शरीर पर रेंगता रहता है -- और यह एक स्वच्छन्द पत्ता -- अवयस्क वृक्ष का भेदी, संदेश वाहक धूप के टुकड़े का, बाँसुरी हाथ में लिए एक सपेरा, यौवन मद में धूप के टुकड़े को अपनी पिटारी में बंद करने की चिंता में, जाने कब से सितारों पर कमन्द डालता रहा। उसे बाँसुरी के मस्त सुरों में ढालता रहा। उजड़ी बस्तियों में, जागते वीरानों में -- वह उसे लिए फिरता रहा। अवयस्क वृक्ष के घोंसले में बैठा मन का पंछी फड़फड़ाता रहा -- और स्वच्छन्द पत्ता -- सीपों का व्यापारी -- मोती के आनन्द के लिए मचलने लगा। उसके रक्त में गति उभरी। तिलिस्म टूटा। आवाज़ का मद्धम शोर -- आवाज़ में दब के रह गया। दरिया का पानी स्वभाव में समा गया -- धूप लौ बनी। लौ जलने लगी, पिघलने लगी। प्रतिदिन जलती रही -- पिघलती रही -- एक समझौता हुआ था गोपनीयता का, बूढ़े बरगद और सनोबर के अवयस्क वृक्ष के मध्य -- एक समझौता किया स्वच्छन्द पत्ते ने -- अब धूप का टुकड़ा उसकी प्रेत-पीड़ित चौखट के अन्दर भी आने लगा। रजनीगंधा के बासी फूल खिलने लगे। और यह त्रिकोणीय क्रम चलता रहा।

दिन के उजालों में -- इस बीच बूढ़ा बरगद, धरती पर उगी फसल के पीले बिखरे चेहरों को अपनी समझ तथा सूझबूझ से दिन-रात में अंतर करता रहा। वह जो सलीब पर चढ़ने वाले थे। उसे चन्द्रमा व आकाशगंगा की ऊँचाईयाँ देने वाले थे -- उनमें अन्ध-विश्वास की दीवारें लरज़ रही थीं। बूढ़ा बरगद अपने तेज़ दाँतों से बालू चबाते-चबाते सलीब के प्यासों की प्यास बुझाने

लगा। उसका हर पत्ता कटार बना। कच्चे रंगों के परिधान सिसकने लगे। आधी-अधूरी चाँदनी इक रोग बनने लगी। दूर क्षितिज में धुआँ-धुआँ बादल उड़ने लगे और बूढ़ा बरगद -- अपने निर्जीव अस्तित्व को आँधियों से ढाँपने लगा। पथरीली भूमि पर असाम्प्रदायिक समुदाय -- शान्ति तथा भाईचारा -- सम्बद्ध आर्थिक स्थिति और राष्ट्र गौरव के रंगहीन पत्रवाहक -- कागज़ी घोड़ों पर यात्रा करने लगे। और विद्रोही हुए वह घोड़े जो अरबी तथा तुर्की थे। समय बदला, मूल्य बदले -- मन्दिरों में, मस्जिदों में, युग के छल के उपदेश पढ़े जाने लगे -- और इस कोरी पुस्तक के पन्नों में गुम -- बूढ़े बरगद का सियाह पेड़ रात के अन्धकार में अपने मन-मस्तिष्क की शान्ति के लिए रहस्यमयी खेल खेलता रहता है सनोबर के अवयस्क वृक्ष के साथ। जो अब किनारा-किनारा दूर होता जाता है। जिसके मन पंछी अब हर धूप के टुकड़े को देखकर फड़फड़ाने लगते हैं, जो अब दूर फैली हुई बिखरी हुई, नंगी धूप को खा जाना चाहता है। अवयस्क वृक्ष के प्रांगण में अब प्रतिदिन धूप की किरणें उतरती हैं और उसे उड़न खटोले पर हिचकोले देती हैं -- अब गज़नवी में तड़प तो है पर ज़ुल्फ़-ए-अय्याज़ में ख़म न रहा। दूरी बढ़ती गई -- समझौता टूटने लगा। समझौता जो हुआ था -- गोपनीयता का, बूढ़े बरगद के सियाह पेड़ और सनोबर के अवयस्क वृक्ष के बीच और इस प्रकार अवयस्क वृक्ष तृणरहित नगरों की भीड़ में धूप की किरणों से नहाता रहा। उसके इस ढंग से बूढ़ा बरगद अपने आपको जल-तृण विहीन मरुभूमि में एकाकी अनुभव करने लगा -- उसकी आँखों में धूप की किरणें तीर बन कर चुभने लगीं। वह चारों ओर फैले अन्धकार की अग्नि में जलने लगा। अग्नि फैलती रही। लपटें भड़कती रहीं और उसके विचारों की खिड़कियाँ लपटों की लपेट में आ गईं। उसने देवमालाओं के राक्षस का रूप धारण कर लिया और अपने लौह-पंजे से अवयस्क वृक्ष को दबोच लिया। पत्ते छुरियाँ बने और उसके तन में घुस गए। अवयस्क वृक्ष जो अवयस्कता के धब्बे को अपने माथे से मिटाने के लिए प्रयासरत

था, जो अपने आप को दृढ़ समझने लगा था, उसकी जड़ों से लहू की बूँदें रिसने लगीं। लहू रिसता रहा और लपटों को शीतल करता रहा। यहाँ तक कि अग्नि -- राख का ढेर बन गई -- और फिर राख -- अवयस्क वृक्ष की हत्या पर पछताने लगी, प्रत्येक हत्यारे की भांति -- बूढ़े बरगद की रातें वीरान हो गईं। वह एक अनोखे असमंजस में रहने लगा। निराशा और पीड़ा की अंधी खाईयों में डूबने लगा। वह टूटने लगा, बिखरने लगा -- वह जो दृढ़ निश्चय के स्तम्भ की भांति उगा था -- कण-कण होने लगा। उसका वह रहस्यमयी खेल जो उसकी कामनाओं का भिक्षापात्र भरता था, अब अतीत की स्मृति बन चुका था और स्मृति उसे तड़पा के रख देती। वह भीनी-भीनी सुगन्ध जो उसके अवचेतन मन में रच-बस गई थी उसके मन-मस्तिष्क पर ध्यानावस्था-सी छाई रहती थी। वह सुगन्ध हवा में विलीन हो चुकी थी। उस सुगन्ध को फिर मुट्ठी में बंद करने के असफल संघर्ष में वह स्वयं क्षण-प्रतिक्षण हवा में विलीन होता गया। उसका आभामयी मुख पीले रंग में समाता गया। पत्ते झड़ते गए, शाखाएँ टूट गईं -- और एक दिन -- मरुभूमि में खड़ा वीरान, निराश, सूखा, पत्ता-रहित बरगद तूफ़ान की लपेट में आ गया। वह तेज़ आंधी में अपने अस्तित्व को न संभाल सका। वह गिर पड़ा -- वह समाप्त हो गया -- सदा-सदा के लिए -- और शान्ति का साधन हो गया। अन्ध-विश्वास की दीवारें तोड़ने वालों के लिए -- कच्चे रंगों के परिधान, मुस्कराने लगे, गुनगुनाने लगे कि शायद अब ऋतु परिवर्तन होगा -- और लाला के फूल खिलेंगे।

सलीब में फंसा अस्तित्व

वह एक नन्हा बादल -- जो आकाश पर लटक रहा था। मुझे देखते ही गरजने लगा। उसकी हल्की-हल्की आवाज़ मेरे कानों में पड़ने लगी। वह कह रहा था -

"जा भाग जा यहाँ से। यहाँ तूफ़ान आने वाला है। मेरा आकार बढ़ने वाला है। मैं फटने वाला हूँ और तेरी धरती पर विनाश-लीला करने वाला हूँ। क्योंकि तेरी धरती पर सभी बावन गज़िए वनमानुष बसते हैं। मैं उनका आकार घटाना चाहता हूँ और उन्हें भिन्न-भिन्न आकार के साँचों में फिट करके राजा आम्भी की समाधि पर लटकाना चाहता हूँ -- सुनो! यह गोपनीय बात सुनो, आओ -- मेरे समीप आ जाओ, आओ़ ना, लेकिन तुम मेरे समीप कैसे आ सकते हो। तुम तो धरती पर हो -- और मैं एक बादल -- सहस्रों गैलन भारी पानी लिए -- आकाश पर लटक रहा हूँ -- अच्छा चलो! वायरलेस सेट के माध्यम से वार्तालाप का क्रम जारी रखते हैं। तुम वायरलेस सेट का स्विच ऑन करो और मेरी बात ध्यान से सुनो -- हाँ तो मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि मैं बादल बनने से पहले तुम्हारी धरती का एक प्रसिद्ध प्लेनेट था -- तुम्हारी धरती मेरी धुरी के चारों ओर घूमने लगी थी। तुम्हारी धरती के मटियाले कण मुझे देखकर गर्मी पकड़ने लगे थे और रेंगने लगे थे। मेरे अस्तित्व ने उनको एक अज्ञात शक्ति प्रदान की थी। मैं उन कणों को जगत के प्राणियों की योनि में लाने के लिए वैज्ञानिक प्रयोग करने लगा था -- इसलिए मैं एक ऐसा इन्जेक्शन बनाने में मग्न हुआ जो कणों के मनुष्य योनि में आने के पश्चात् उन्हें इतनी भारी शक्ति प्रदान कर दे कि फिर कोई उनका लिंग-परिवर्तन न कर सके -- मेरा यह काम

तुम्हारी धरती के ऊँचे टीलों पर रहने वाले बावन गज़िये वनमानुषों को एक आँख न भाया -- उन्होंने मुझे मेरे अन्न-भंडार में आन दबोचा। वह मुझे बंदी बना कर ले गए -- और मुझे एक जर्जर मकान के बुर्ज पर टंगे हुए नरभक्षी न्यायालय में प्रस्तुत किया। मुझ पर अपराध लगाया गया कि मैं शैतान हूँ, नास्तिक हूँ, मक्कार सुक़रात का उत्तराधिकारी हूँ और प्रकृति की व्यवस्था में हस्तक्षेप करता हूँ -- मैंने अपराधी होने से इन्कार किया -- परन्तु मेरे इन्कार से क्या होता। उन्होंने मुझे विष का प्याला दिया, फाँसी का फंदा दिया। मैंने विष के प्याले को चूमा। फाँसी के फंदे को गले लगाया -- और इस प्रकार मेरी हत्या कर दी गई -- उस दिन सूर्य नहीं निकला, चाँद भी नहीं। उस दिन तुम्हारी धरती का चक्कर काटना भी बंद रहा। चारों ओर अन्धकार फैल गया -- अति गहन धुआँदार अन्धकार। आकाश काला हो गया -- परन्तु कोई बिजली नहीं कड़की -- हाँ आवाज़ों का एक आर्तनाद हुआ। भला वनमानुष आवाज़ों की कब परवाह करते हैं। उन्होंने आवाज़ों के वन में आग लगा दी। पेड़ काट डाले। वन सूख गया -- और देखने में मेरा लहू पानी हो गया -- परन्तु मैं मिटा नहीं। मैंने बादल की योनि में जन्म लिया और स्वयं को आकाश पर लटका लिया ताकि तुम्हारी धरती के वनमानुषों पर प्रकोप बन कर बरस सकूँ --

फिर ऋतु परिवर्तित हुई। सूर्य का तपता गोला धरती पर उतर आया। पेड़ों के पत्ते लाल हो गए, शहर, कस्बे, गाँव, दरिया, मकान, झोंपड़ियाँ, खेत, चिमनियाँ -- सब पर तपते सूर्य का रंग छा गया। कणों ने अपनी-अपनी छातियों पर क्रॉस के चिन्ह खुदवा दिए। वह सलीबें उठाए मेरे वध-स्थल के चारों ओर खड़े हो गए। उनके तपते चेहरों से अग्नि टपकने लगी। आँखें फैल गईं और तेज़ किरचें बन गईं -- परन्तु किरचों का चूर्ण बना दिया गया --

परन्तु अब -- अब मैं आकाश पर लटका हुआ बादल फैल चुका हूँ। मेरा आकार बढ़ गया है। मुझमें लाखों-करोड़ों गैलन भारी पानी जमा हो चुका है -- मैं फटने वाला हूँ और तुम्हारी धरती पर विनाश करने वाला हूँ। क्योंकि तुम्हारी धरती पर सभी

बावन गज़िए वनमानुष बसते हैं। मैं उनका आकार घटाना चाहता हूँ। इसलिए तू भाग जा -- भाग जा -- भाग जा --"

आवाज़ फैलती है और फिर सहसा कट जाती है। मैं थरथराती दृष्टि से आकाश की ओर देखता हूँ। मेरा वायरलेस सेट ख़राब हो चुका है -- एक भूकम्प आता है। बादल फटता है। आग का दरिया बहता है। धरती सूर्य देवता से आश्रय माँगती है। और मेरे कानों में वह आवाज़ गूंज रही है कि भाग जा यहाँ से -- भाग जा! -- भाग जा -- भाग जा -- मैं सोच रहा हूँ कि धरती से भाग कर कहाँ जाऊँ -- शायद पाताल में परन्तु पाताल के द्वार तो बंद हैं -- और आदेश है कि पाताल के द्वार प्रलय के दिन खुलेंगे -- फिर -- मैं -- क्या करूँ -- कहाँ जाऊँ। सोचता हूँ क्यों न बादल के भारी पानी में समा जाऊँ -- आग के दरिया में डूब जाऊँ -- ताकि -- किसी नई योनि में जन्म ले सकूँ -- मैं क्या करूँ -- कहाँ जाऊँ --

शत्रु कौन

"हँस के लिया था पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिन्दोस्तान।"

"चाहे मारो अपनी जान, मिट के रहेगा पाकिस्तान।"

"यदि भारत ने हमारे किसी क्षेत्र पर अधिकार करने का साहस किया तो हम पूरी तरह लड़ाई छेड़ देंगे। पाक सेना के शेर जवान -- शत्रु को मिटाने के लिए पूरी तरह तैयार हैं।"

"यदि पाकिस्तान ने भारत के साथ युद्ध छेड़ने का दुस्साहस किया तो यह उसके घर में लड़ा जाएगा और उसका समूल विनाश कर दिया जाएगा।"

नेताओं के यह वकतव्य -- आजकल पाक और भारत के प्रिंट तथा इलॅक्ट्रानिक मीडिया की बड़ी सुर्खियाँ बन गए हैं, नेताओं के इन भाषणों से दोनों ओर जंग का उन्माद फैल चुका है। जहाँ जाईए -- जिधर जाईए -- जंग ही की बातें सुनाई देती हैं। हमारी सेनाएँ शत्रु सेनाओं के आमने-सामने खड़ी हैं। सीमावर्ती गाँव ख़ाली कराए जा रहे हैं। ब्लैक आऊट के अभ्यास किए जा रहे हैं। देश का बच्चा-बच्चा शत्रु को मिटा देने की शपथ ले रहा है।

आज दीवाली है। हम वालंटियर कोर के कुछ साथी मिठाई बाँटने सीमा पर गए हुए हैं। गड़खाल, चकरोई और मरथन की सीमावर्ती चौकियों से होते हुए हम सुचेतगढ़ पहुँचे। हमने देखा कि हमारी पिकेट उनकी चौकी से कुछ ही फुट की दूरी पर है और सीमा सुरक्षा बल के जवानों के बिल्कुल सामने सतलुज रेंजिज़ के सैनिक खड़े हैं।

"ओ काफ़रा -- ओए काफ़रा" -- पार से किसी ने आवाज़ दी -- आज दीवाली है, मिठाई नहीं खिलाओगे?"

"ओए मुसले -- तुम लोगों ने हमें मिठाई खिलाने के योग्य रखा ही कहाँ है, तुम्हारे सेना अधिकारी तो आए दिन जंग की

धमकियाँ दे रहे हैं।"

"रहने दो यार, रहने दो -- कम कोई भी नहीं है -- फिर हम तो ठहरे हुकम के गुलाम। ख़ैर छोड़ो इन बातों को -- तुम हमें मिठाई खिलाते हो या नहीं? -- और वह हँस पड़ा।

"हाँ भाई! क्यों नहीं खिलाएँगे -- अभी मँगवाते हैं।"

"हाँ देखो यार! केले ज़रूर मँगवा लेना।" -- वह अपनी चौकी की ओर जाते हुए बोला।

"सूबेदार साहिब! कौन था यह?" मैंने पूछा।

"यार यह पाकिस्तानी चौकीं का इन्चार्ज है -- विभाजन से पहले हम एक ही गाँव में रहते थे। बहुत प्यारा आदमी है -- यार है अपना -- हर ईद को हमें मिठाई और कीनू खिलाता है। आजकल थोड़ी सख़्ती हो गई है नहीं तो हम तो इकट्ठे वॉलीबाल भी खेलते हैं।"

हमारे देखते ही देखते चौकी इन्चार्ज ने सैनिकों से चंदा इकट्ठा किया और एक सिपाही को केले और मिठाई खरीदने शहर भेज दिया। एक-आध घंटे के उपरान्त वह सिपाही शहर से पलट आया।

"ओए मुख़तारे -- आओ भई आओ -- खा लो मिठाई।"

"क्या ले आए हो मिठाई?"

"हाँ-हाँ! परन्तु मैं खुद ही बाँटूंगा।"

"नहीं रछपाले -- ऐसा संभव नहीं, तुम तो जानते ही हो। आजकल सख़्त आर्डर हैं -- पर तुम केले और मिठाई लेकर गेट तक आ सकते हो।"

रछपाल मिठाई और केलों से लदी टोकरी लेकर गेट तक गया। दोनों बड़े तपाक से गले मिले। मैंने देखा कि वह नहीं मिल रहे थे बल्कि उनकी सभ्यता गले मिल रही थी। उनके दिल गले मिल रहे थे। वह दिल जो एक ही मिट्टी से बने हैं, दोनों की आँखों से रावी और चिनाब बहने लगे। मुख़तारे ने भी कीनुओं का टोकरा रछपाल को पकड़ा दिया और फिर दोनों अपने-अपने देश की सीमा के अन्दर आ गए। उस सीमा के अन्दर जहाँ से दूर -- बहुत दूर -- शहरों में बैठ कर -- देश के नेता शत्रु को समाप्त करने के नारे लगा रहे हैं --

हाथी अढ़ाई लाख का

कहते हैं कि जीवित हाथी लाख का तथा मृत सवा लाख का परन्तु जिस हाथी की आपबीती मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ वह हमारे किसी राजनेता की भाँति सफ़ेद नस्ल का हाथी नहीं है जो अपने निजी स्वार्थ के लिए लूटमार मचाने और देश का बेड़ा ग़र्क़ करने के बावजूद भी बड़ा महँगा बिकता है। हमारी गाथा का हीरो एक सीधा-सादा अर्थात् साधारण प्रकार का हाथी है जिसका रंग काला मटियाला, पँखे जैसे कान, एक मोटी सूंड, एक पूँछ, चार मोटी-मोटी टाँगें, दो छोटी आँखें, कुछ दाँत खाने के और दो दाँत दिखाने के अर्थात् बिल्कुल असली और विशुद्ध द्रावड़ी नस्ल का हाथी। इस हाथी ने दक्षिणी भारत के जंगलों में जन्म लिया। इसके माँ-बाप, दादे-परदादे और लकड़दादे सभी दक्षिणी भारत के जंगलों में ही पैदा हुए और उन्हीं जंगलों में घास, पत्ते, जड़ी-बूटियाँ और फल खाकर जवान हुए और स्वच्छन्द जीवन व्यतीत कर इस नश्वर संसार से चले गए। इस हाथी का थोड़ा सा अतीत बताने का अर्थ पाठकों को बड़ी विनम्रता के साथ यह जानकारी देना है कि यह हाथी शुद्ध भारतीय है। अफ्रीक़ा, चीन अथवा जापान से नहीं आया। यह किसी अन्य देश का भी घुसपैठिया नहीं है। यह विशुद्ध भारतीय है और भारतीय सँस्कृति में ही पला-बढ़ा है। भारत माता के सुपर मैनों और भारत की अखण्डता के रखवालों से निवेदन है कि वह इस हाथी के भारतीय होने पर तनिक भी संदेह न करें। इसके परिवार का पंजीकरण जंगल के बन्दोबस्ती रिकार्ड में सुरक्षित है। स्वतंत्रता के बाद वन्य-प्राणियों की वोटर लिस्टों में इसके माता-पिता का नाम सूचीबद्ध चला आ रहा है परन्तु सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से जंगल में प्रजातन्त्र चलाने के लिए

और अपनी पसन्द का शासन चुनने के लिए इसको कभी वोट डालने का अवसर प्रदान नहीं किया गया क्योंकि अल्पायु में ही यह मासूम मानवों के दानवी जाल में फँस गया और उनके दिखाए हुए सब्ज़ बाग़ में चारा चरने लगा। इस सब्ज़ बाग़ का नाम था "बंजारा सर्कस"। प्रत्यक्ष रूप में वह एक चमक-दमक वाली सर्कस थी परन्तु भीतर से एक घुड़शाला, जिस पर वाटर प्रूफ तिरपाल का एक बड़ा तम्बू लगा हुआ था। घुड़शाला में इस हाथी के अतिरिक्त दो भालू, तीन लंगूर, चार बंदर, पाँच तोते, छः कबूतर, एक शुतरमुर्ग, एक शेरनी, दो शेर, कुछ बतख़ें तथा अपने भविष्य से निराश कुछ कलाकार एक-साथ दाना-पानी चरते थे और प्रभु के गुण गाते थे। इस घुड़शाला में रहने वाले सभी कलाकारों की आकांक्षाओं के कच्चे बर्तन प्रायः टूटते रहते थे क्योंकि पैवन्द लगे तम्बू में कच्चे बर्तनों का टूटना उनका प्रारब्ध था। हमारा हाथी भी बन्जारा सर्कस के सब्ज़ बाग़ में क़ैद होकर घर से बेघर हो गया और शहरों के रंग-बिरंगे और सभ्य जीवन में दर-बदर फिरने लगा। इस सर्कस के मालिक क़ादिरयार ने हाथी का नाम राजू रखा था। राजू महावत के सिखाए गए करतब दिखा कर लोगों की दिलचस्पी का सामान बन गया और क़ादिरयार के लिए कमाई का साधन।

हमारे हाथी की दुःख भरी कहानी तब शुरू हुई जब क़ादिरयार की सर्कस ने जम्मू के समीप और पाकिस्तानी सीमा के बिल्कुल सामने मौज़ा अरनिया में अपना डेरा जमाया। हुआ ऐसा कि एक दिन कड़कती दोपहर के समय राजू अपने महावत के निर्देशन में खेतों में हरा चारा खा रहा था। और जंगल राज में फैली बुराईयों के विषय में सोच रहा था कि गाँव के कुछ नटखट बालक उसे तंग करने लगे। राजू को बड़ा क्रोध आया। उसे शायद जीवन में पहली बार क्रोध आया था अन्यथा वह बेचारा सदा काम, क्रोध तथा मोहमाया में संयम बरतता था। क्रोध को पी जाने के लिए वह दौड़ने लगा। वह दौड़ता रहा। महावत उसके पीछे-पीछे भागता रहा। उसने हाथी को रोकने का बड़ा प्रयास

किया। उसे समझाया कि आगे न जा। आगे पाकिस्तान की पाक सरज़मीन है। वहाँ जाने से सीमा का उल्लंघन होगा और सीमा के उल्लंघन पर तू पकड़ा जाएगा। तुझे कोड़े खाने पड़ेंगे परन्तु हाथी बेचारा देशीय सीमाओं तथा उसके उल्लंघनों को क्या समझता। वह क्रोध में अपनी छाया सहित पाकिस्तानी सीमा पार कर गया। राजू पाकिस्तानी सीमा के अन्दर दौड़ता जा रहा था और महावत उसे अपनी सीमा पर खड़ा बड़ी दीनता के साथ दृष्टि से ओझल होता देख रहा था परन्तु महावत ने हाथी को अपने हृदय से ओझल नहीं होने दिया और तत्क्षण बन्जारा सर्कस के संचालक क़ादरयार को बीती कहानी सुना डाली तथा राजू को वापस भारत माता की गोद में लाने का मार्ग खोजने का सुझाव दिया। क़ादिरयार घबराहट में सरपट दौड़ता हुआ सीमा सुरक्षा बल के चौकी अफ़्सर के पास गया और छाती पीटते और विलाप करते हुए कहने लगा :

"इन्स्पेक्टर साहिब! दुहाई है दुहाई! मेरी मदद करें नहीं तो मैं बरबाद हो जाऊँगा। मेरे कलाकार भूखे मर जाएँगे हुज़ूर! कुछ करें और राजू को वापिस लाएँ।"

"तुम्हारे हाथी ने सीमा पार क्यों की? वह पाकिस्तान में क्या लेने चला गया। डिफेंस ऑफ इण्डिया और पाकिस्तानी सीमा क़ानून के अनुसार उसने गम्भीर अपराध किया है। जिसमें उसे सात साल तक की सज़ा हो सकती है।"

"इन्स्पैक्टर साहिब! आप पहले उसे वापिस लाने की कोई तरकीब ढूँढें। फिर चाहे जितनी मरज़ी सज़ा दें।

"तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे हाथी का नाम क्या है? तुम दोनों कहाँ के रहने वाले हो और क्या काम करते हो?"

"सरकार मेरा नाम क़ादिरयार है और मेरे हाथी का नाम राजू है यानि राज मुहम्मद। मैं बन्जारा सर्कस का मालिक हूँ और राजू मेरी सर्कस का सबसे महँगा और बढ़िया कलाकार है। यह लोगों को अपने करतब दिखाता है। राजू और कुछ अन्य पशु तथा मानव कलाकारों की बदौलत ही मेरी सर्कस चलती है। और चलती सर्कस के कारण हम सबकी रोटी, कपड़े की समस्या हल होती है। हम दोनों

विशुद्ध भारतीय हैं। आतंकवादी बिल्कुल नहीं हैं।"

"क़ादिरयार का नाम सुनकर मुझे पूरण भगत का किस्सा स्मरण हो आया। क्या कमाल शे'र कहे हैं क़ादिरयार ने....."

"हुजूर! क्या आप शायरी भी करते हैं?" क़ादिरयार ने पूछा।

"बिल्कुल नहीं" चौकी अफ़्सर ने कहा, फिर पूछने लगा।

"अच्छा तुम यह बताओ कि तुम्हारे हाथी का नाम राज मुहम्मद कैसे हो सकता है?"

"जनाब! उसी प्रकार जैसे मेरा नाम क़ादिरयार हो सकता है। मैंने जीवन बख़्श के घर जन्म लिया और क़ादिरयार बन गया। राजू को मैं दक्षिणी भारत के जंगलों से पकड़ कर लाया था इसलिए वह राज मुहम्मद बन गया। यदि मैं किसी आत्मा राम के घर पैदा होता तो मेरा नाम केदार नाथ होता और हाथी का नाम राज नाथ। है ना ठीक बात।"

"हाँ हाँ, ठीक है। यह बताओ कि राज मुहम्मद पाकिस्तानी जासूस तो नहीं है?"

"बादशाह सलामत! आप क्या फ़रमा रहे हैं? हाथी जासूस कैसे हो सकता है। भला मनुष्यों के होते हुए पशुओं को क्या पड़ी है कि वह जासूसी करें। देश को बेचने का काम तो राष्ट्रीय बगुले भगतों ने अपने ज़िम्मे लिया हुआ है।

"ठीक है, ठीक है। हम राजू को किसी भी दशा में वापिस लाने का प्रयास करेंगे। तुम चिंता न करो।" इन्स्पेक्टर ने भली-भांति पूछताछ करने और सन्तुष्ट हो जाने के उपरान्त कहा। उसने अपना वायरलेस सेट खोला और पाकिस्तानी सीमा चौकी के अपने ही समान ओहदेदार से सम्पर्क किया।

"हेलो! हेलो! आप कौन साहिब बोल रहे हैं?"

"मैं पाक रेंजिज़ का सूबेदार मेजर गुलज़माँ ख़ान बोल रहा हूँ। आप कौन साहिब हैं?"

"मैं आपका पड़ोसी और माँ जाया, बिल्कुल सामने वाली भारतीय सीमा चौकी का इन्चार्ज इन्स्पेक्टर बलाकी शाह बोल रहा हूँ।"

"लाला जी नमस्ते।"

"नमस्ते जी नमस्ते! हमारा भी प्रेम भरा सलाम क़बूल करें।"

"हाँ तो बताएँ क्या हुक्म है? धमकियों, जवाबी धमकियों और जंगी बुख़ार के माहौल में आपने हमें कैसे याद किया।"

"ख़ान साहिब! हमारे एक ग़रीब नागरिक का कष्ट दूर करें।"

"पर लाला जी, मैं कोई हकीम या डॉक्टर नहीं हूँ। फिर मैं कैसे.....?"

"ख़ान जी! बात ऐसी है कि हमारे एक तुच्छ नागरिक क़ादिरयार की सर्कस का हाथी भूल से सीमा पार करके आप की ओर चला गया है। उस पागल को सीमा के उल्लंघन करने या न करने की कोई समझ नहीं है। ठीक पशुओं, पक्षियों, दरियाओं, नदी-नालों की भांति, हैवानों और जानवरों की तरह। जिस प्रकार हम हिन्दोस्तानी और पाकिस्तानी गाय-भैंसें एक दूसरे को शिष्टाचार के नाते वापिस कर देते हैं बिल्कुल उसी प्रकार पुराने मैत्रीभाव के नाते, हाथी को खोज कर हमारे हवाले कर दें। बड़ा करम होगा, कृपा और मेहरबानी होगी।"

"अच्छा तो यह कष्ट है आपके शहरी को लेकिन कड़े सुरक्षा प्रबन्धों के होते हुए आपका हाथी सीमा पार कैसे कर सकता है। सीमा तो आजकल केवल मुजाहिद और आपकी भाषा में आतंकवादी या उग्रवादी ही आर-पार करते हैं और अब तो यह करमां वाली सीमा राजनेताओं की धमकियों के अनुसार आर-पार के निर्णायक युद्ध की प्रतीक्षा कर रही है ताकि सीमा के दोनों ओर रहने वाली भाग्यहीन जनता एक बार फिर लहू उगले और तबाह हो। ख़ैर छोड़िए इन व्यर्थ बातों को। आपकी ओर से कोई हाथी हमारे इलाक़े में नहीं आया है। आपके सिपाहियों की भांति हमारे सिपाही भी बड़ी चौकसी से सीमा की निगरानी कर रहे हैं।"

"क़ादिरयार! पाकिस्तानी चौकी अफ़सर का कहना है कि हाथी उनकी ओर नहीं गया है। इसलिए तुम यहाँ सरकण्डों के पीछे या झाड़ियों में ढूँढो।"

"मेरी सरकार! क्या बात करते हैं आप। वह पाकिस्तानी इलाक़े में ही गया है। मैंने ख़ुद अपनी आँखों से उसे सीमा पार

करते देखा है। मैं सच कहता हूँ। आप पाकिस्तानी अफ़्सर पर अपना निजी असर-रसूख़ इस्तेमाल करें। मैं उसे चाय-पानी पिलाने के लिए भी तैयार हूँ परन्तु आपको अपने परमात्मा का वास्ता है, मेरे ख़ुदा का वास्ता है, मेरा हाथी मुझे वापिस दिला दें।"

हेलो! हेलो! ख़ान साहिब! हाथी आपकी ओर ही गया है। हमारे पास पक्का सबूत है। आप मेहरबानी फ़रमाएँ और अपने जवानों को आदेश दें कि वह हाथी को ढूँढ कर पकड़ लाएँ। इस हाथी का मालिक बड़ा ग़रीब है। जन्म से ही अनाथ है। वैसे भी आपका ही मुस्लिम भाई है। कर दें इस पर कृपा-दृष्टि। आपको अपने अल्लाह की क़सम है" वायरलेस पर बात करने के उपरान्त बलाकी शाह क़ादिरयार को सांत्वना देने लगा परन्तु क़ादिरयार निराशा और आशा से सीमा की ओर देखे जा रहा था। एक लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त पाकिस्तानी रेंजिज़ के जवान हाथी को बेड़ियों में जकड़ कर सीमा के पास लाए और उसे शीशम के एक मज़बूत पेड़ के साथ बाँध दिया। दूर से हाथी को देखकर क़ादियार बहुत ख़ुश हुआ और दौड़ा-दौड़ा अपने चौकी अफ़्सर बलाकी शाह को बुलाने चला गया। बलाकी शाह ने वायरलेस सेट पर पाकिस्तानी रेंजिज़ के अफ़्सर गुलज़मां ख़ान से फिर सम्पर्क स्थापित किया।

"बलाकी शाह जी! आपका हाथी तो मिल गया है परन्तु यह आपको तब मिलेगा जब आप सवा लाख की रक़म हमारे हवाले कर दोगे ताकि यह रक़म हम सरकारी ख़ज़ाने में जमा करवा सकें।"

"ख़ान साहिब सवा लाख रुपए किस बात के। यह तो अंधेरगर्दी है?"

"लाला जी! बात ढंग से करें। आपके हाथी ने हमारे गाँव की स्कूली इमारत तोड़ दी है और हमारे इन्जीनियर ने नुक़्सान का अनुमान सवा लाख रुपए लगाया है। चार कमरों की पक्की बिल्डिंग लगभग खण्डहर बन चुकी है।"

"ख़ान साहिब! यह गरीब आदमी इतनी बड़ी रक़म कहाँ से लाएगा। आप थोड़ा बड़े दिल से काम लें और कुछ ले-दे कर फ़ैसला कर दें। क़ादिरयार पाँच हज़ार रुपए तक देने को राज़ी है।

कहिए क्या ख़्याल है। कर लूँ बात पक्की?"

"नहीं-नहीं लाला जी ऐसी बात न करें। सीमा पर लगी इन कांटेदार तारों के भी कान होते हैं। आजकल यह बातें हमें रास नहीं आतीं। आपका इरादा हमें कहीं "एहतसाब अदालत" में फँसाने का तो नहीं है। आप तो जानते हैं कि आजकल सारा मामला फौजी भाईयों के हाथ में है। इसलिए मैं कुछ नहीं कर सकता।"

दोनों की बातें सुनकर क़ादिरयार बेहोश हो गया। उसके माथे से ठंडा पसीना और मुँह से झाग निकल रही थी। बलाकी शाह ने उसके मुँह पर पानी छिड़का। पँखे से हवा दी। पाँव की मालिश की और उसे होश में लाने के लिए आधा पूरण भगत सुना डाला। जब क़ादिरयार की चेतना लौटी तो बलाकी शाह ने उसे दिल्ली जाने का सुझाव दिया। और समझाया कि वह दिल्ली में रक्षा मंत्रालय में जाए। वहाँ बड़े प्रशासकों से मिले ताकि वह उच्च स्तर पर पाकिस्तानी सरकार के साथ यह मामला उठाएँ और अपने प्रभाव का उपयोग करके हाथी वापिस ला सकें।

क़ादिरयार टूट चुका था। वह चिंतित अवस्था में अपनी सर्कस में आया। उसने अपने परामर्शदाताओं से परामर्श किया और शाम को जेहलम एक्सप्रैस में बैठ गया, जिसने उसे ठीक सुब्ह दस बजे नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर उतार दिया। यहाँ से उसने तिपहिया पकड़ा और सीधा रक्षा मंत्रालय पहुँचा जहाँ एक चपरासी साहिब को ख़ुश करने के बाद वह सम्बन्धित प्रशासक के पास अपने आवेदन पत्र सहित प्रस्तुत हो गया। आवेदन पर सरसरी दृष्टि डालने के उपरान्त सेक्रेटरी साहिब ने क़ादिरयार से उसकी दुख भरी गाथा सुनी। फिर आवेदन पर आवश्यक कार्रवाई करने का आदेश दिया। वह सम्बन्धित ब्रांच में भेज दी। सात दिनों तक क़ादिरयार दफ़्तरी कार्रवाई में गुम रहा। आठवें दिन वह रक्षा मंत्री से मिलने में सफल हो गया। उसने मंत्री जी को रो-रो कर अपनी आपबीती सुनाई। मंत्री जी को जाने क़ादिरयार की बेकसी की कौन सी अदा भायी कि उन्होंने फ़ाईल मँगवाई और अपनी ओर से एक पत्र पाकिस्तानी रक्षामंत्री को लिखा और इस बात पर

बल दिया कि वह भारतीय हाथी को वापिस करके उन्हें धन्यवाद करने का अवसर प्रदान करें। एक महीने के उपरान्त पाकिस्तान सरकार का उत्तर आया लिखा था :

"भारतीय हाथी ने हमें बहुत परेशान किया। जब आपके अधिकारियों ने स्कूल की इमारत का मुआवज़ा नहीं दिया तो हाथी को लाहौर के चिड़ियाघर में भेज दिया गया। पकड़े गए भारतीय हाथी का समाचार जब पाकिस्तानी समाचारपत्रों में छपा तो पूरा लाहौर शहर उसे देखने के लिए उमड़ पड़ा और पाकिस्तानी आतिथ्य की गरिमा रखते हुए लोगों ने बड़े प्यार से हाथी को इतने किन्नू खिलाए कि उसके अन्दर सर्दी जम गई और उसे अधरंग मार गया। हाथी का इलाज करवाया गया। पाकिस्तानी डॉक्टरों की सहायता के लिए ऑस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के दो विशेषज्ञों को बुलाया गया। समय पर किए इलाज से हाथी तो ठीक हो गया परन्तु हमारी सरकार का सवा लाख रुपया हाथी की बीमारी पर लग गया। इस तरह आपका हाथी अढ़ाई लाख का हो गया। विवरण इस प्रकार है :

स्कूल की टूटी इमारत का अनुमान : सवा लाख

हाथी की बीमारी के इलाज पर खर्चा : सवा लाख। कुल अढ़ाई लाख।

इसलिए आपसे निवेदन किया जाता है कि शीघ्र से शीघ्र अढ़ाई लाख रुपए का ड्राफ़्ट हबीब बैंक ऑफ पाकिस्तान के नाम भिजवा दें और अपना हाथी ले जाएँ। यह पाकिस्तानी सरकार का अन्तिम निर्णय है और इसमें किसी तीसरे मध्यस्थ का हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं होगा।"

पत्र की प्रतिलिपि क़ादिरयार के हवाले कर दी गई। पत्र पढ़ते ही क़ादियार को भी अधरंग मार गया और सुना है कि आजकल वह दिल्ली के किसी ख़ैराती अस्पताल में अपनी अन्तिम साँसें ले रहा है।

प्रत्येक कथा–रचना में कुछ न कुछ अनूठा और अद्वितीय रचने वाले ख़ालिद हुसैन ने अपनी चुंबकीय क़िस्सागोई, सुरमई उजाला बिखेरती भाशा के विन्यास, चरित्रों के चयन और उनके मार्मिक चरित्रांकन और उसके सामाजिक–साँस्कृतिक परिवेष को बारीकी से बुनने की विघा और षैली के कारण अपना एक विषिश्ट स्थान बना लिया है। उनकी अनेक कहानियाँ रोचकता की सीमाओं को लाँघकर हमारे सामने रूपक के रूप में खड़ी हो जाती हैं। और यह कहानीकार यथार्थ का अपने सृजन में निरूपण करते हुए जब उसकी जटिलताओं से उलझता है तब न केवल वह अपने पात्रों के अस्तित्व में सांकेतिक अर्थ भरता है बल्कि उन्हें एक रूपक का चरित्र भी बना डालता है।

अग्नि षेखर (डॉ0)

Chetna Parkashan
Punjabi Bhawan, Ludhiana-141001

ISBN 935112124-0
9 789351 121244

Ghar Mein Hai Bairaag

₹ 350/-